अध्यात्म भजन गंगा

प्रकाशक -

श्री दि. जैन स्वाध्याय मण्डल, कानपुर

श्री दि. जैन स्वाध्याय मण्डल
कानपुर का प्रथम पुष्प

प्रथमावृत्ति ५०००
माघ शुक्ला ११, सोमवार
दिनाक ९ फरवरी १९८७
(आध्यात्मिक कविवर बनारसीदासजी की
४०० वीं जन्म-जयन्ती के अवसर पर)

लागत मूल्य से कम : **सात रुपये मात्र**

प्राप्ति स्थान
१. श्री दि. जैन स्वाध्याय मण्डल (रजि.)
४८/८९, जनरल गज, पचकूचा, कानपुर (उ प्र)
२ पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट
ए-४, बापूनगर, जयपुर , ३०२०१५ (राज)
३ श्री कुन्दकुन्द-कहान स्मृति प्रकाशन ट्रस्ट
ज्ञानानन्द निवास, किला अन्दर, विदिशा (म.प्र)

मुद्रण व्यवस्था
राकेश जैन शास्त्री
प्रिन्टिग हाउस, बैसाखिया मार्केट, गुडगज,
इतवारी, नागपुर – ४४० ००२

प्रकाशकीय

पूज्य गुरुदेव श्री कानजी स्वामी द्वारा प्रतिपादित आध्यात्मिक रहस्यो से प्रभावित होकर आध्यात्मिक तत्व को आत्मसात करने के निमित्त कानपुर मे एक स्वाध्याय मण्डल की स्थापना कुछ समय पूर्व की गई थी । जिसका नाम **श्री दि जैन स्वाध्याय मण्डल, कानपुर** रखा गया था।

अपने अल्प समय के जीवनकाल मे ही इस मण्डल ने अनेक रचनात्मक गतिविधियो का प्रारम्भ किया । जिनमे विद्वान मनीषियो का सत्समागम, प्रवचन व सत्साहित्य विक्रय तो पहले से ही गतिशील है । अब सत्साहित्य प्रकाशन का महान कार्य भी अपने हाथ मे लिया है।

श्री दि जैन स्वाध्याय मण्डल, कानपुर का यह प्रथम पुष्प "**अध्यात्म भजन गंगा**" प्रकाशित करते हुए हमे अपार प्रसन्नता हो रही है।

प्राचीन ज्ञानी महापुरुषो ने अनुभव की कलम को आत्मा मे डूबो-डूबोकर जिस काव्य जगत का सृजन किया, वह प्रत्येक आत्मार्थी/मुमुक्षु को शुद्धात्मा तक पहुँचाने मे बडा सम्बल/सहायक जान पडता है। हमारा सबका यह महान सौभाग्य ही है है कि आत्मानुभवी विद्वानोका स्वानुभव प्रसूत एक-एक शब्द काल के गर्त मे कवलित न होकर शास्त्र के रूप मे पूज्य हो गया है।

इन्ही आध्यात्मिक भजनो के प्रति आदरणीय पण्डित ज्ञानचन्दजी की रुचि प्रारम्भ से ही रही है। यही कारण है कि प्राचीन व अर्वाचीन आध्यात्मिक भजनो का अपूर्व सकलन तैयार होकर "अध्यात्म भजन गगा" प्रवाहित हो गई। एतदर्थ मै उनका तो आभारी हूँ ही, साथ ही उनके होनहार सुपुत्रद्वय विनोद 'चिन्मय' शास्त्री, जैनदर्शनाचार्य व मुकेश 'तन्मय' शास्त्री का भी आभारी हूँ, जिन्होने इसमे पूर्ण सहयोग प्रदान किया है।

इसी के साथ आभारी हूँ मै पण्डित राकेशकुमार शास्त्री जैनदर्शनाचार्य, एम.ए., नागपुरवालो का, जिन्होने अपने व्यस्त समय मे से भी समय निकाल कर सुन्दर शुद्ध प्रेस कापी तैयार की और स्वय की देख-रेख मे पुस्तक का शुद्ध, सुन्दर, साफ मुद्रण कराया।

इसे हमारा सौभाग्य ही कहेगे कि माघ शुक्ला ११, सोमवार ९ फरवरी १९८७ को एक आध्यात्मिक काव्य प्रतिभा के धनी कविवर पण्डित बनारसीदासजी की ४०० वी जन्म जयती के मगल अवसर पर उनके काव्य, पद, भजनो से ही प्रारम्भ होकर यह "अध्यात्म भजन गगा" प्रवाहित हो रही है।

अन्त मे इसी मगल भावना के साथ विराम लेता हूँ कि समस्त लोक इस "अध्यात्म भजन गगा' मे डुबकी लगाकर चैतन्य के शातरस मे सदा-सदा के लिए मग्न हो जावे।

— सन्तोष कुमार जैन, सर्राफ

मत्री, श्री दि जैन स्वाध्याय मण्डल, कानपुर

अपनी बात

श्रमण सस्कृति के सुन्दरतम इतिहास की एक लम्बी परम्परा रही है। जिसमे अनेक कवि, लेखक, विद्वान, मनीषी और ज्ञानी-ध्यानी महापुरुषो ने प्राणीमात्र के हित के लिए अनवरत अथक् साधना से अन्वेषित रत्नो को करुणार्द्र होकर खुले दिल से परोसा है।

श्रुतपरम्परा का प्रारभ आचार्य भूतबलि-पुष्पदत से प्रारभ होकर आचार्य कुन्दकुन्द व अमृतचन्द्र से होकर आते-आते काफी समृद्ध हो गया था। इसमे सदेह नही कि पिछले दो-तीन सौ वर्षो मे अनुभवी विद्वान मनीषियो ने जिस सहज सुगम भाषा मे पुरातन वीतरागी महर्षियो का हार्द प्राणीमात्र के सामने रखा है, उससे एक अपूर्व क्राति हुई है।

श्रीयुत कविवर बनारसीदास, भूधरदास, द्यानतराय, बुधजन, दौलतराम, भागचन्द आदि महान उद्भट विद्वान उसी श्रृखला की एक-एक कडी है जिन्होने सासारिक वैभव की क्षणिक माया को चुनौती देकर "**सादा जीवन—उच्च विचार**" को जीवन का अभिन्न अग बनाते हुये सपूर्ण जीवन माँ सरस्वती (जिनवाणी) के चरणो मे अर्पण कर दिया ।

साहित्य की गद्य और पद्य दोनो ही विधाओ मे उन्होने अध्यात्म को उत्कीर्ण किया है। चूकि मानव की प्रकृति सगीत प्रिय होने से तथा स्मृति मे भी आसानी होने से सीमित क्षमता होने पर भी गद्य की अपेक्षा पद्य अधिक रुचिकर रहा है।

अध्यात्म की मस्ती मे मस्त रहनेवाले ये गृहस्थ ज्ञानी निर्भय होकर मोहनृप की सेना पर विजय पाने के लिए सिह गर्जना करते है— "**अब हम अमर भये न मरेंगे**" कितनी वजनी है यह गर्जना, जिसके आगे आधुनिक फिल्मी गीतो और फिल्मी धुनो पर

आधारित धार्मिक गीतो की आवाज दबकर रह जाती है।

आध्यात्मिक काव्यो की महत्ता इसी से आकी जा सकती है कि सहस्त्रो बार भी उनका वाचन/मनन/चिंतवन करने पर भी मन थकता नही , वरन् उससे एक अपूर्व मानसिक शांति प्राप्त होती है।

आध्यात्मदृष्टा पूज्य श्री कानजी स्वामी के योग से जब अध्यात्मिक दुनियाँ मे मेरा मगल प्रवेश हुआ तो अनेक वीतरागी ऋषि मुनियो द्वारा रचित सत्साहित्य को पढने के साथ-साथ ज्ञानी गृहस्थ पुरुषो की काव्य चेतना ने भी अत्यधिक प्रभावित किया। फिर क्या था, जब व्याख्यान का विशिष्ट उपक्रम प्रारभ हुआ तो व्याख्यान मे भी काव्य चेतना के स्वर सहज मे फूट पडे।

मुमुक्षु समाज मे भी आध्यात्मिक रुचि बढने के साथ-साथ इन आध्यात्मिक भजनो के प्रति भी रुचि बढी है।

प्रस्तुत पुस्तक के पूर्व "अध्यात्म भजन सग्रह" का सकलन भी किया था, जो सीमित समय मे समाप्त हो गया और माग निरन्तर बनी रही। चूँकि मुझे भी आध्यात्मिक भजनो से अगाध स्नेह रहा है और समाज मे भी इसके प्रति विशेष उत्साह दिखा, अत सहज ही "**अध्यात्म भजन गंगा**" प्रवाहित हो गई है।

प्रस्तुत पुस्तक मे आप देखेगे कि प्राचीन आध्यात्मिक कवियो की प्रमुखता से उनके पूर्ववर्ती काल क्रमानुसार उनकी अध्यात्म गर्भित रचनाओ को स्थान दिया गया है। रचनाओ के साथ-साथ उन सक्षिप्त जीवन परिचय भी दिये गये है, इनके अतिरिक्त विविध प्राचीन एव आधुनिक कवियो की आध्यात्मिक रचनाओ का समावेश करके पुस्तक को जनसामान्य के लिए उपयोगी बनाने का प्रयास किया गया है।

आशा है, पाठकगण "**अध्यात्म भजन गंगा**" मे स्नान कर अमृता मुक्ति को शीघ्र वरण करेगे- इसी पवित्र भावना के साथ।

— पण्डित ज्ञानचन्द जैन
ज्ञानानन्द निवास, किला अन्दर, विदिशा (म प्र)

वर्णानुक्रमानुसार अनुक्रमणिका

कविवर भागचद (९९ - ११९

आधुनिक कवि १६८ २०२

भक्तिपरक २०३ २३९

सक्षिप्त परिचय

कविवर बनारसीदास

(विक्रम सवत् १६४३ - १७०१)

अध्यात्म और काव्य दोनो क्षेत्रो मे सर्वोच्च प्रतिष्ठा प्राप्त महाकवि पण्डित बनारसीदासजी सत्रहवी शताब्दी के रससिद्ध कवि और आत्मानुभवी महापुरुष थे। आपका जन्म जौनपुर के श्रीमाल वश मे लाला खरगसेन के यहाँ वि स १६४३ मे माघ सुदी एकादशी शनिवार को हुआ था।

आपने अपने जीवन मे जितने उतार-चढाव देखे, उतने शायद ही किसी महापुरुष के जीवन मे आये हो — पुण्य और पाप का ऐसा सयोग अन्यत्र विरल है।

काव्य प्रतिभा तो आपको जन्म से ही प्राप्त थी। १४ वर्ष की उम्र मे ही आप उच्चकोटि की कविता करने लगे थे, प्रारभ मे श्रृगारिक कविताओ मे मग्न रहे, किन्तु बाद मे वि स १६८० मे ३७ वर्ष की अवस्था मे आपके धार्मिक जीवन मे एक नई क्रान्ति आई और उसमे भी अनेक उतार-चढाव आये— स्वच्छदी हुए, सम्हल गये और फिर स्याद्वाद का यथार्थ परिज्ञान होने पर कविराज का चित्त स्थिर और शात हो गया। क्योकि वे जो पाना चाहते थे, उन्हे वह मिल गया था।

कविवर बनारसीदासजी की उपलब्ध पद्य रचनाऐ चार है। १ बनारसी विलास २ नाम माला ३ अर्द्धकथानक और ४ नाटक समयसार। इसके अतिरिक्त उनकी 'परमार्थ वचनिका' और 'उपादान-निमित्त की चिट्ठी' नामक दो अत्यत गभीर एव मार्मिक गद्य रचनाऐ भी उपलब्ध है।

कविवर का देहोत्सर्ग काल तो अविदित ही है, किन्तु तत्सबध मे एक किवदन्ति प्रसिद्ध है कि अन्तकाल मे उनका कठ अवरूद्ध हो गया था, अत वे बोल नही सकते थे, पर वे ध्यानमग्न और चिन्तनरत अवश्य थे। उससमय समीपस्थ लोगो मे इसप्रकार की चर्चा होने लगी कि कवि के प्राण माया व कुटुम्बियो मे अटके है, उनकी इस आशका के निवारणार्थ उन्होने अपने जीवन का अन्तिम छन्द निम्नप्रकार से लिखा था —

ज्ञान कुतक्का हाथ, मारि अरि मोहना,
प्रगटचो रूप स्वरूप, अनत सु सोहना।
जा परजै को अन्त, सत्य करि मानना,
चले 'बनारसीदास', फेर नहिं आवना ।।

श्री १०८ उपाध्याय परमेष्ठी

कविवर पण्डित बनारसीदास

हम बैठे अपनी मौन सौं .....

हम बैठे अपनी मौन सौ।।टेक।।
दिन दस के मेहमान जगत जन, बोलि विगारै कौन सौ ।।१।।
गये विलाय भरम के बादर, परमारथ-पथ-पौन सौ ।
अब अन्तर गति भई हमारी, परचे राधा रौन सौ ।।२।।
प्रगटी सुधापान की महिमा, मन नहिं लागै बौन सौ ।
छिन न सुहाय और रस फीके, रुचि साहिब के लौन सौ ।।३।।
रहे अघाय पाय सुख सपति, को निकसै निज भौन सौ ।
सहज भाव सदगुरु की सगति, सुरझै आवागौन सौ ।।४।।

दुविधा कब जैहै या मन की.....

दुविधा कब जैहै या मन की।।टेक।।
कब निजनाथ निरजन सुमिरो, तज सेवा जन-जन की ।।१।।
कब रुचि सौ पीवौ दृग चातक, बूद अखयपद धन की ।
कब सुभ ध्यान धरौ समता गहि, करू न ममता तन की ।।२।।
कब घट अन्तर रहै निरन्तर, दृढता सुगुरु वचन की ।
कब सुख लहौ भेद परमारथ, मिटै धारना धन की ।।३।।
कब घर छॉडि होहु एकाकी, लिये लालसा वन की ।
ऐसी दशा होय कब मेरी, हौ बलि बलि वा छिन की ।।४।।

रे मन! कर सदा सन्तोष.....

रे मन ! कर सदा सन्तोष, जातै मिटत सब दुख दोष।।टेक।।
बढत परिग्रह मोह बाढत, अधिक तृषना होति।
बहुत ईधन जरत जैंसे, अगनि ऊची जोति।।१।।
लोभ लालच मूढ जन सो, कहत कचन दान।
फिरत आरत नहिं विचारत, धरम धन की हान।।२।।
नारकिन के पॉय सेवत, सकुचि मानत सक।
ज्ञान करि बूझै 'बनारसी' को नृपति को रक।।३।।

विराजै 'रामायण' घटमाहिं.....

विराजै 'रामायण' घटमाहिं।
मरमी होय मरम सो जाने, मूरख मानै नाहिं।।टेक।।
आतम 'राम' ज्ञान गुन 'लछमन', 'सीता' सुमति समेत।
शुभोपयोग 'वानरदल' मडित, वर विवेक 'रण खेत'।।१।।
ध्यान 'धनुष टकार' शोर सुनि, गई विषय दिति भाग।
भई भस्म मिथ्यामत 'लका', उठी धारणा 'आग'।।२।।
जरे अज्ञान भाव 'राक्षसकुल', लरे निकाछित 'सूर'।
जझे राग-द्वेष सेनापति, ससै 'गढ' चकचूर।।३।।
बिलखत 'कुम्भकरण' भव विभ्रम, पुलकित मन 'दरयाव'।
र्थाकत उदार वीर 'महिरावण', सेतुबध सम भाव।।४।।
मूर्छित 'मदोदरी' दुराशा, सजग चरन 'हनुमान'।
घटी चतुर्गति परणति 'सेना', छुटे छपक गुण 'बान'।।५।।
निरखि सकति गुन 'चक्र सुदर्शन' उदय 'विभीषण' दान।
फिरै 'कबंध' मही 'रावण' की, प्राण भाव शिरहीन।।६।।
इह विधि सकल साधु घट, अन्तर होय सहज 'सग्राम'।
यह विवहार दृष्टि 'रामायण' केवल निश्चय राम।।७।।

जगत में सो देवन को देव.....

जगत मे सो देवन को देव।।टेक।।
जासु चरन परसै इन्द्रादिक, होय मुकति स्वयमेव।।१।।
ज़ो न छुधित, न तृषित, न भयाकुल, इन्द्री विषय न बेव।
जंनम न होय, जरा नहिं व्यापै, मिटी मरन की टेव।।२।।
जाकै नहिं विषाद, नहिं बिस्मय, नहिं आठो अहमेव।
राग विरोध मोह नहिं जाके, नहिं निद्रा परसेव।।३।।
नहिं तन रोग, न श्रम, नहिं चिता, दोष अठारह भेव।
मिटे सहज जाके ता प्रभु की, करत 'बनारसि' सेव।।४।।

वा दिन को कर सोच जिय मन में.....

वा दिन को कर सोच जिय मन मे।
बनज किया व्यापारी तूने, टाडा लादा भारी।।टेक।।
ओछी पूजी जूआ खेला, आखिर बाजी हारी।
आखिर बाजी हारी, करले चलने की तय्यारी।।
इक दिन डेरा होयगा वन मे, वा दिन को कर सोच जिय मन मे।।१।।
झूठै नैना उलफत बाधी, किसका सोना किसकी चादी।
इक दिन पवन चलेगी आधी, किसकी बीबी किसकी बादी।।
नाहक चित्त लगावे धन मे, वा दिन को कर सोच जिय मन मे।।२।।
मिट्टी सेती मिट्टी मिलियो, पानी से पानी।
मूरख सेती मूरख मिलियौ, ज्ञानी से ज्ञानी।।
यह मिट्टी है तेरे तन मे, वा दिन को कर सोच जिय मन मे।।३।।
कहत 'बनारसि' सुनि भवि प्राणी, यह पद है निरवाना।
जीवन मरन किया सो नाही, सिर पर काल निशाना।।
सूझ पडेगी बुढापेपन मे, वा दिन को कर सोच जिय मन मे।।४।।

मूलन बेटा जायो रे साधो.....

मूलन बेटा जायो रे साधो, जानै खोज कुटुम्ब सब खायो रे।।टेक।।
जन्मत माता ममता खाई, मोह लोभ दोई भाई।
काम क्रोध दोई काका खाये, खाई तृषना दाई।।१।।
पापी पाप परोसी खायो, अशुभ करम दोइ माया।
मान नगर को राजा खायो, फैल परो सब गामा।।२।।
दुरमति दादी खाई दादो, मुख देखत ही मूओ।
मगलाचार बधाये बाजे, जब यो बालक हूओ।।३।।
नाम धरचो बालक को भोदू, रूप बरन कछु नाही।
नाम धरते पाडे खाये, कहत 'बनारसि' भाई।।४।।

भोंदू भाई! देखि हिये की आंखैं.....

भोदू भाई! देखि हिये की आखै ।
जै करषै अपनी सुख सपति, भ्रम की सपति नाखै।।टेक।।
जे आखै अमृतरस बरसै, परखै केवलि वानी ।
जिन्ह आखिन विलोकि परमारथ, होहिं कृतारथ प्रानी ।।१।।
जिन आंखिन्ह मै दशा केवलि की, कर्म लेप नहिं लागै ।
जिन आखिन के प्रगट होत घट, अलख निरजन लागै ।।२।।
जिन आखिन सो निरखि भेद गुन, ज्ञानी ज्ञान विचारै ।
जिन आंखिन सौ लखि स्वरूप मुनि, ध्यान धारणा धारै ।।३।।
जिन आखिन के जगे जगत के, लगै काज सब झूठे ।
जिन सौ गमन होइ शिव सनमुख, विषय-विकार अपूठे ।।४।।
जिन आखिन मे प्रभा परम की, पर सहाय नहि लेखै ।
जे समाधि सौ तकै अखडित, ढकै न पलक निमेखै ।।५।।
जिन आखिन की ज्योति प्रगटि कै, इन आखिन मै भासै ।
तब इनहूं की मिटै विषमता, समता रस परगासै ।।६।।
जे आखै पूरन स्वरूप धरि, लोकालोक लखावै ।
अब यह वह सब विकलप तजिकै, निरविकलप पद पावै ।।७।।

चेतन उलटी चाल चले.....

चेतन उलटी चाल चले।।टेक।।
जड सगत तै जडता व्यापी निज गुन सकल टले ।।१।।
हित सो विरचि ठगनि सो रचि, मोह पिशाच छले ।
हसि हसि फद सवारि आप ही, मेलत आप गले ।।२।।
आये निकसि निगोद सिंधु ते, फिर तिह पथ चले ।
कैसे परगट होय आग जो, दबी पहार तले ।।३।।
भूले भव भ्रम बीचि, 'बनारसी' तुम सुरज्ञान भले ।
धर शुभ ध्यान ज्ञान नौका चढि, बैठे ते निकले ।।४।।

भोंदू भाई! समुझ सबद यह मेरा .....

भोंदू भाई! समुझ सबद यह मेरा ।
जो तू देखै इन आखिन सौं. तामै कछू न तेरा।।टेक।।
ए आखै भ्रम ही सौं उपजी, भ्रम ही के रस पागी ।
जहँ जहँ भ्रम तहँ तहँ इनको श्रम, तू इन ही कौ रागी ।।१।।
ए आखैं दोउ रची चाम की, चामहि चाम विलोवै ।
ताकी ओट मोह निद्रा जुत, सुपन रूप तू जोवै ।।२।।
इन आँखिन कौ कौन भरोसौ, एक विनसे छिन माही ।
है इनको पुदगल सौं परचै, तू तो पुद्गल नाही ।।३।।
पराधीन वल इन आँखिन कौ, विनु प्रकाश न सूझे ।
सो परकाश अगनि रवि शशि को, तू अपनौ कर बूझे ।।४।।
खुले पलक ए कछु इक देखहि, मुदे पलक नहिं सोऊ ।
कबहूँ जाहि होंहि फिर कबहूँ, भ्रामक आखै दोऊ ।।५।।
जगम काय पाय एक प्रगटै, नहिं थावर के साथी ।
तू तो मान इन्हे अपने दृग, भयौ भीम को हाथी ।।६।।
तेरे दृग मुद्रित घट-अन्तर, अन्ध रूप तू डोलै ।
कै तो सहज खुलै वे आखै, कै गुरु सगति खोलै ।।७।।

चेतन तू तिहुकाल अकेला.....

चेतन तू तिहुकाल अकेला ।।टेक।।
नदी नाव सजोग मिले ज्यो, त्यो कुटुव का मेला ।।१।।
यह ससार असार रूप सब, ज्यो पटपेखन खेला ।
सुख सम्पति शरीर जल बुद बुद, विनसत नाही वेला ।।२।।
मोह मगन आतम गुन भूलत, परि तोहि गल जेला ।
मै मै करत चहूँ गति डोलत, बोलत जैसे छेला ।।३।।
कहत 'बनारसि' मिथ्यामत तज, होइ सुगुरु का चेला ।
तास वचन परतीत आन जिय, होइ सहज सुरझेला ।।४।।

रंग भयो जिन द्वार.....

रग भयो जिन द्वार, चलो सखी खेलन होरी।।टेक।।
सुमत सखी सब मिलकर आओ, कुमति ने देवो निकार।
केशर चन्दन और अगर्जा, समताभाव धुलाय चलो।।१।।
दया मिठाई, तप बहु मेवा, सित ताम्बूल चबाय।
आठ करम की डोरी रची है, ध्यान अग्नि सु जलाय।।२।।
गुरु के वचन मृदग बजत है, ज्ञान क्षमा डफ ताल।
कहत 'बनारसी' या होरी खेली, मुक्तिपुरी को राय।।३।।

देखो भाई महाविकल संसारी.....

देखो भाई महाविकल ससारी।
दुखित अनादि मोह के कारन, राग-द्वेष भ्रम भारी।।टेक।।
हिसारभ करत सुख समझै, मृषा बोलि चतुराई।
परधन हरत समर्थ कहावै, परिग्रह बढत बड़ाई।।१।।
वचन राख काया दृढ राखै, मिटै न मन चपलाई।
यातै होत और की औरै, शुभ करनी दुख दाई।।२।।
जोगासन करि कर्म निरोधै, आतम दृष्टि न जागै।
कथनी कथत महत कहावै, ममता मूल न त्यागै।।३।।
आगम वेद सिद्धान्त पाठ सुनि, हिये आठ मद आनै।
जाति लाभ कुल बल तप विद्या, प्रभुता रूप बखानै।।४।।
जड सौ राचि परम पद साधै, आतम शक्ति न सूझै।
बिना विवेक विचार दरब के, गुण परजाय न बूझै।।५।।
जस वाले जस सुनि संतोषै, तप वाले तन सोषैं।
गुन वाले परगुन को दोषै, मतवाले मत पोषै।।६।।
गुरु उपदेश सहज उदयागति, मोह विकलता छूटै।
कहत 'बनारसि' है करुनारसि, अलख अखय निधि लूटै।।७।।

मेरा मनका प्यारा जो मिले...

मेरा मन का प्यारा जो मिले, मेरा सहज सनेही जो मिलै।
अवधि अजोध्या आतमराम, सीता सुमति करै परणाम।।टेक।।
उपज्यो कत मिलन को चाव, समता सखी सो कहै इह भाव।
मै विरहिन पिय के आधीन, यो तलफो ज्यो जल बिन मीन।।१।।
बाहिर देखूं तो पिय दूर, घट देखे घट मे भरपूर।
घटमहि गुप्त रहै निरधार, वचन अगोचर मन के पार।।२।।
अलख अमूरति वर्णन कोय, कवधो पिय को दर्शन होय।
सुगम सुपथ निकट है ठौर, अतर आड विरह की दौर।।३।।
जउ देखो पिय की उनहार, तन मन सबस डारो वार।
होहुँ मगन मै दरशन पाय, ज्यो दरिया में बूँद समाय।।४।।
पिय को मिलो अपनपो खोय, ओला गल पाणी ज्यो होय।
मै जग ढूँढ फिरी सब ठोर, पिय के पटतर रूप न ओर।।५।।
पिय जगनायक पिय जगसार, पिय की महिमा अगम अपार।
पिय सुमिरत सब दुख मिटजाहि, भोर निरख ज्यो चोर पलाहि।।६।।
भयभजन पिय को गुनवाद, गदगजन ज्यो के हरिनाद।
भागइ भरम करत पियध्यान, फटइ तिमिर ज्यो ऊगत भान।।७।।
दोष दुरह देखत पिय ओर, नाग डरइ ज्यो बोलत मोर।
बसो सदा मै पिय के गाउ, पिय तज और कहाँ मै जाउँ।।८।।
जो पिय-जाति जाति मम सोइ, जातहि जात मिलै सब कोइ।
पिय मोरे घट मै पियमाहि, जलतरग ज्यो द्विविधा नाहि।।९।।
पिय मो करता मै करतूति, पिय ज्ञानी मै ज्ञानविभूति।
पिय सुखसागर मै सुखसीव, पिय शिवमन्दिर मै शिवनीव।।१०।।
पिय ब्रह्मा मै सरस्वति नाम, पिय माधव मो कमला नाम।
पिय शकर मै देवि भवानि, पिय जिनवर मै केवलबानि।।११।।
पिय भोगी मै भुक्तिविशेष, पिय जोगी मै मुद्रा भेष।
पिय मो रसिया मै रसरीति, पिय ब्योहारिया मै परतीति।।१२।।

जहॉ पिय साधक तहॉ मै सिद्ध, जहॉ पिय ठाकुर तहॉ मै रिद्ध।
जहॉ पिय राजा तहॉ मै नीति, जहँ पिय जोद्धा तहॉ मै जीति।।१३।।
पिय गुणग्राहक मै गुणपति, पिय बहुनायक मै बहुभॉति।
जहँ पिय तहँ मै पिय के सग, ज्यो शशि हरि मे ज्योति अभग।।१४।।
पिय सुमिरन पिय को गुणगान, यह परमारथ पथ निदान।
कहइ व्यवहार बनारसि नाव चेतन सुमति सटी इकठाव।।१५।।

ऐसैं यों प्रभु पाइये, सुन पंडित प्रानी.....

ऐसै यो प्रभु पाइये, सुन पडित प्रानी।

यो मथि माखन काढिये, दधि मेल मथानी।।टेक।।
यो रसलीन रसायनी, रसरीति अराधै।
यो घट मे परमारथी, परमारथ साधै।।१।।
ौसे वैद्य विथा लहै, गुण दोष विचारै।
ासे पडित पिड की, रचना निरवारै।।२।।
पड स्वरूप अचेत है, प्रभुरूप न कोई।
ाानै मानै रवि रहै, घट व्यापक सोई।।३।।
ेतन लच्छन जीव है, जड लच्छन काया।
ृचल लच्छन चित्त है, भ्रम लच्छन माया।।४।।
ाच्छन भेद विलोकिये, सुविलच्छन वेदै।
ात्ता-सरूप हिये धरै, भ्रमरूप उछेदै।।५।।
ज्यो रज सोधै न्यारिया, धन सौ मनकीलै।
यो मुनिकर्म विपाक मे, अपने रस झीलै।।६।।
भाप लखै जब आपको, दुविधा पद मेटै।
ेवक साहिब एक है, तब को किहि भेटै।।७।।

ऐसैं क्यों प्रभु पाइये, सुन मूरख प्रानी.....

ऐसै क्यो प्रभु पाइये, सुन मूरख प्रानी ।
जैसे निरख मरीचिका, मृग मानत पानी ।।टेक।।
ज्यो पकवान चुरैल का, विषयारस त्यो ही ।
ताके लालच तू फिरै, भ्रम भूलत यो ही ।।१।।
देह अपावन खेह की, अपनो करि मानी ।
भाषा मनसा करम को, ते निज कर जानी ।।२।।
नाव कहावति लोक की, सो तो नही भूलै ।
जाति जगत की कल्पना, तामै तू झूलै ।।३।।
माटी भूमि पहार की, तुह सपति सूझै ।
प्रगट पहेली मोह की, तू तउ न बूझै ।।४।।
तै कबहूँ निज गुन विषै, निज दृष्टि न दीनी ।
पराधीन परवस्तु सो अपनायत कीनी ।।५।।
ज्यो मृगनाभि सुवास सो, ढूढत बन दौरे ।
त्यो तुझ मे तेरा धनी, तू खोजत औरे ।।६।।
करता भरता भोगता, घट सो घट माही ।
ज्ञान बिना सद्गुरू बिना, तू समझत नाही ।।७।।

या चेतन की सब सुधि गई.....

या चेतन की सब सुधि गई, व्यापत मोहि विकलता गई।।टेक।।
है जड रूप अपावन देह, तासौ राखै परम सनेह ।।१।।
आइ मिले जन स्वारथ बध, तिनहि कुटुम्ब कहै जा बध ।
आप अकेला जनमै मरै, सकल लोक की ममता धरै ।।२।।
होत विभूति दान के दिये, यह परपच विचारै हिये ।
भरमत फिरै न पावइ ठौर, ठानै मूढ और की और ।।३।।
बध हेत को करै जु खेद, जानै नही मोक्ष को भेद ।
मिटै सहज ससार निवास, तब सुख लहै 'बनारसीदास' ।।४।।

मगन ह्वै आराधो साधो .....

मगन ह्वै आराधो साधो अलख पुरुष प्रभु ऐसा।
जहा जहा जिस रस सौ राचै, तहा तहा तिस भेसा।।टेक।।
सहज प्रवान प्रवान रूप मे, ससै मे ससैसा।
धरै चपलता चपल कहावै, लै विधान मे लैसा।।१।।
उद्यम करत उद्यमी कहिये, उदय सरुप उदैसा।
व्यवहारी व्यवहार करम मे, निहचै मे निहचैसा।।२।।
पूरण दशा धरे सम्पूरण, नय विचार मे तैसा।
दरवित सदा अखै सुखसागर, भावित उतपति खैसा।।३।।
नाही कहत होई नाही सा, है कहिये तो है सा।
एक अनेक रूप है वरता, कहौ कहा लौ कैसा।।४।।
वह अपार ज्यौ रतन अमोलिक बुद्धि विवेक ज्यौ ऐसा।
कल्पित वचन विलास 'बनारसि' वह जैसे का तैसा।।५।।

भेद विज्ञान जग्यो जिन्हके घट .....

भेद विज्ञान जग्यो जिन्हकै घट शीतल चित्त भयो जिमि चन्दन।
केलि करे शिवमारग मे जगमाही जिनेसुर के लघुनदन।।१।।
सत्यस्वरूप सदा जिन्हके, प्रगटचो अवदात मिथ्यात निकदन।।२।।
शातदशा तिनकी पहिचानि, करे जोरि बनारसि वदन।।३।।

चेतन रूप अनुप अमूरत .....

चेतनरूप अनूप अमूरत, सिद्ध समान सदा पद मेरो।।टेक।।
मोह महातम आतम अग कियो, परसग महातम घेरो।।१।।
ज्ञानकला उपजी अब मोहि, कहूँ गुण नाटक आगम केरो।।२।।
जासु प्रसाद सधे शिव मारग वेगि मिटे भववास बसेरो।।३।।

उपादान निजगुण जहाँ .....

उपादान निजगुण जहाँ, तहाँ निमित्त पर होय।
भेदज्ञान परवान विधि, विरषा बूझे कोय।।

संक्षिप्त परिचय

कविवर द्यानतराय

(विक्रम सवत १७३३ - १७८३)

आध्यात्मिक काव्य धरोहर के एक अनमोल रत्न कविवर द्यानतराय उन महाकवियो मे से एक है, जिनके द्वारा रचित पूजा, पद, भजन आदि अनेक रचनाओ को समाज मे सर्वाधिक पढा और सुना जाता है।

आत्मानुभवी महाकवि का जन्म सवत १७३३ मे आगरा में हुआ, आपके बाबा वीरदास और पिता श्री श्यामदास थे।

हिन्दी साहित्य के प्रकाड विद्वान होने के साथ ही आपकी काव्य रचना मे भी विशेष रुचि थी। आपके द्वारा रचित 'धर्म विलास' मे आपकी प्राय सभी रचनाओ का सग्रह है। करीब ३० वर्ष मे कवि ने इसे पूर्ण किया था। इसमे उनके ३०० से अधिक पद, विभिन्न पूजा-पाठ और ४५ अन्य छोटी-बडी रचनाओ का सुदर समावेश है। सभी रचनाये एक से एक सुन्दर तथा उत्तम भावो के साथ गुम्फित है। कवि के प्रत्येक पद का भाव, शब्द चयन एव वर्णन शैली किसी भी प्रकार से कम नही।

आपकी सभी रचनाओ मे विशेष तौर पर पदो मे आध्यात्मिक निर्झर बहता हुआ स्पष्ट परिलक्षित होता है। प्राय सभी रचनाओ मे आत्मानुभूति की अमिट छाप प्रत्येक आत्मार्थी को आत्मानुभूति की प्रेरणा देती है।

अब हम अमर भये न मरेंगे.....

अब हम अमर भये न मरैगे।।टेक।।
तन कारन मिथ्यात दियो तज, क्यो करि देह धरैगे।।१।।
उपजै मरै कालतै प्रानी, तातै काल हरैगे।
राग दोष जग बध करत है, इनको नाश करैगे।।२।।
देह विनाशी मै अविनाशी, भेदज्ञान पकरैगे।
नासी जासी हम थिरवासी, चोखे हो निखरैगे।।३।।
मरे अनन्ती बार बिन समुझै, अब सब दुख बिसरैगे।
'द्यानत' निपट निकट दो अक्षर, बिन सुमरै सुमरैगे।।४।।

ज्ञान, आतम जान रे जान.....

आतम जान, जान रे जान ।।टेक।।
जीवन की इच्छा करै, कबहुं न मागै काल।
सोई जान्यो जीव है, सुख चाहै दुख टाल।।१।।
नैन बैन मे कौन है, कौन सुनत है बात।
देखत क्यो नही आप मे, जाकी चेतन जात।।२।।
बाहिर ढूढे दूर है, अन्तर निपट नजीक।
ढूढनवाला कौन है, सोई जानो ठीक।।३।।
तीन भवन मे देखिया, आतम सम नहि कोय।
'द्यानत' जे अनुभव करै, तिनकौ शिवसुख होय।।४।।

देखे सुखी सम्यक्वान.....

देखे सुखी सम्यक्वान।
सुख-दुख को दुखरुप विचारै, धारै अनुभव ज्ञान।।टेक।।
नरक सात मे के दुख भोगै, इन्द्र लखै तिन मान।
भीख माग कै उदर भरै न, करै चक्री को ध्यान।।१।।
तीर्थकर पद को नहि चावे, जपि उदय अप्रमान।
कुष्ट आदि बहु व्याधि दहत न, चहत मकरध्वज थान।।२।।
आधि व्याधि निरबाध अनाकुल, चेतन जोति पुमान।
'द्यानत' मगन सदा तिहि माही, नाही खेद निदान।।३।।

भाई! आतम अनुभव करना रे.....

भाई! आतम अनुभव करना रे ।।टेक।।
जबलौ भेद-ज्ञान नहि उपजै, जनम-मरन दु ख भरना रे ।।१।।
आतम पढ नवतत्व बखानै, व्रत तप सजम धरना रे।
आतम-ज्ञान बिना नहि कारज, जोनी सकट परना रे ।।२।।
सकल ग्रन्थ दीपक है भाई, मिथ्यातम के हरना रे।
कहा करै ते अन्ध पुरुष को, जिन्हैं उपजना मरना रे ।।३।।
'द्यानत' जे भवि सुख चाहत है, तिनको यह अनुसरना रे।
सोऽह ये दो अक्षर जप कै, भव-जल पार उतरना रे ।।४।।

मैं निज आतम कब ध्याऊँगा.....

मै निज आतम कब ध्याऊँगा।।टेक।।
रागादिक परिनाम त्याग कै, समता सौ लौ लाऊँगा।।१।।
मन-वच-काय जोग थिर करकै, ज्ञान-समाधि लगाऊँगा।
कबधौ क्षिपकश्रेणि चढि ध्याऊँ, चारित मोह नशाऊँगा।।२।।
चारो करम घातिया खन करि, परमातम पद पाऊँगा।
ज्ञान दरश सुख बल भण्डारा, चार अघाति नसाऊँगा।।३।।
परम निरजन सिद्ध शुद्धपद, परमानन्द कहाऊँगा।
'द्यानत' यह सम्पति जब पाऊँ, बहुरि न जग मे आऊँगा।।४।।

अरहन्त सुमर मन बावरे.....

अरहन्त सुमर मन बावरे।।टेक।
ख्याति लाभ पूजा तजि भाई, अन्तर प्रभु लौ लाव रे।।१।।
नरभव पाय अकारथ खोवै, विषय भोग जु बढाव रे।
प्राण गये पछितैहै मनुवा, छिन-छिन छीजै आव रे।।२।।
युवती तन-धन सुत-मित परिजन, गज तुरग रथ चाव रे।
यह ससार सुपन की माया, ऑख मीच दिखराव रे।।३।।
ध्याय-ध्याय रे अब है अवसर, आतम मगल गाव रे।
'द्यानत' बहुत कहाँ लौ कहिये, और न कछु उपाव रे।।४।।

धिक! धिक! जीवन समकित बिना....

धिक्! धिक्! जीवन समकित बिना।।टेक।।
दान शील व्रत तप श्रुत पूजा, आतम हेत न एक गिना ।।१।।
ज्यो बिनु कन्त कामिनी शोभा, अंबुज बिनु सरवर सूना ।
जैसे बिना एकडे बिन्दी, त्यो समकित बिन सरव गुना ।।२।।
जैसे भूप बिना सब सेना, नीव बिना मन्दिर चुनना ।
जैसे चन्द बिहूनी रजनी, इन्हे आदि जानो निपुना ।।३।।
देव जिनेन्द्र, साधु गुरु करुना, धर्मराग व्योहार भना ।
निहचै देव धरम गुरु आतम, द्यानत गहि मन वचन तना ।।४।।

मगन रहु रे! शुद्धातम में.....

मगन रहु रे! शुद्धतम मे मगन रहु रे।।टेक।।
राग दोष पर को उत्पात, निहचै शुद्ध चेतना जात।
विधि निषेध को खेद निवारि, आप-आप में आप निहारि।।१।।
बध मोक्ष विकलप करि दूर, आनन्द कन्द चिदातम सूर।
दरसन ज्ञान चरन समुदाय, 'द्यानत' ये ही मोक्ष उपाय।।२।।

जीवा ! शूं कहिये तनैं भाई.....

जीवा! शू कहिये तनैं भाई।।टेक।।
पोता नू रूप अनूप तजी नैं, शा माटै विषयी थाई ।।१।।
इन्द्रीना विषय विषथकी, मोटा ज्ञान नू अमृत गाई ।
अमृत छोडीनैं विषय विष पीधा, साता तो नथी पाई ।।२।।
नरक निगोदना दुख सह आव्यो, बली तिहनैं मग धाई ।
एहवी बात रूडी न छै, तमनैं तीन भवन ना राई ।।३।।
लाख बातनी बात ए छै, मूकीनै विषय-कषाई ।
'द्यानत' ते वारै सुख लाधौ, एम गुरु समझाई ।।४।।

हम लागे आतमराम सों

हम लागे आतमराम सो।
विनाशीक पुद्गल की छाया, को न रमै धनवान सो।।टेक।।
समता सुख घट मे परगास्यो, कौन काज है काम सो।
दुविधा-भाव जलाजुलि दीनौ, मेल भयो निज आतम सो।।१।।
भेदज्ञान करि निज परि देख्यौ, कौन बिलोकै चाम सो।
उरै परै की बात न भावै, लौ लाई गुणग्राम सो।।२।।
विकलपभाव रक सब भाजे, झरि चेतन अभिराम सो।
'द्यानत' आतम अनुभव करिके, छूटै भव दु खधाम सो।।३।।

हम न किसी के कोई न हमारा

हम न किसी के कोई न हमारा, झूठा है जग का व्योहारा।
तन सबधी सब परवारा, सो तन हमने जाना न्यारा।।टेक।।
पुण्योदय सुख का बढवारा, पापोदय दु.ख होत अपारा।
पाप-पुण्य दोऊ ससारा, मै हू यह सब देखनहारा।।१।।
मै तिहुँजग तिहुँकाल अकेला, परसजोग भया बहुमेला।
थिति पूरी करि खिर-खिर जाही, मेरे हर्ष-शोक कछु नाही।।२।।
राग भावतै सज्जन मानै, दोष भावतैं दुर्जन जानै।
राग-दोष दोऊ मम नाही, 'द्यानत' मै चेतनपद माही।।३।।

रे मन ! भज-भज दीनदयाल

रे मन ! भज-भज दीनदयाल।
जाके नाम लेत इक छिन मै, कटै कोटि अघजाल।।टेक।।
परम ब्रह्म परमेश्वर स्वामी, देखै होत निहाल।
सुमरन करत परम सुख पावत, सेवत भाजै काल।।१।।
इन्द्र फनिन्द चक्रधर गावैं, जाको नाम रसाल।
जाको नाम ज्ञान परकासै, नाशै मिथ्याजाल।।२।।
जाके नाम समान नही कछु, ऊरध मध्य पताल।
सोई नाम जपो नित 'द्यानत', छाडि विषय विकराल।।३।।

परमगुरु बरसत ज्ञान झरी.....

परमगुरु बरसत ज्ञान झरी ।।टेक।।
हरषि-हरषि बहु गरजि-गरजि कै, मिथ्या तपन हरी ।।१।।
सरधा भूमि सुहावनि लागै, सशय बेल हरी ।
भविजन मन सरवर भरि उमडे, समुझि पवन सियरी ।।२।।
स्यादवाद मत बिजली चमके, परमत शिखर परी ।
चातक मोर साधु श्रावक के, हृदय सुभक्ति भरी ।।३।।
जप तप परमानन्द बढ्यो है, सुसमय नीव धरी ।
'द्यानत' पावन पावस आयो, थिरता शुद्ध करी ।।४।।

गुरु समान दाता नहिं कोई.....

गुरु समान दाता नहि कोई ।।टेक।।
भानु प्रकाश न नाशत जाको, सो अंधियारा डारै खोई ।।१।।
मेघ समान सबन पै बरसै, कछु इच्छा जाके नहि होई ।
नरक पशू गति आग माहि तैं, सुरग मुकत सुख थापै सोई ।।२।।
तीन लोक मन्दिर मे जानौ, दीपकसम परकाशक लोई ।
दीप तलै अधियार भर्यो है, अन्तर बाहिर विमल है जोई ।।३।।
तारन-तरन जिहाज सुगुरु है, सब कुटुम्ब डोवै जगतोई ।
'द्यानत' निशिदिन निरमल मन मे, राखो गुरु-पद पकज दोई ।।४।।

आपा प्रभु जाना मैं जाना.....

आपा प्रभु जाना मै जाना ।।टेक।।
परमेसुर यह मै इस सेवक, ऐसो भर्म पलाना ।।१।।
जो परमेसुर सो मम मूरति, जो मम सो भगवाना ।
मरमी होय सोइ तो जानै, जानै नाही आना ।।२।।
जाकौ ध्यान धरत है मुनिगन, पावत है निरवाना ।
अर्हत् सिद्ध सूरि गुरु मुनिपद, आतमरूप बखाना ।।३।।
जो निगोद मे सो मुझ माही, सोई है शिवथाना ।
'द्यानत' निहचै रञ्च फेर नहि, जानै सो मतिवाना ।।४।।

जिया तैं आतमहित नहि कीना.....

जिया तै आतमहित नहिं कीना।
रामा रामा धन धन कीना, नरभव फल नहिं लीना।।टेक।।
जप तप करके लोक रिझाये, प्रभुता के रस भीना।
अन्तर्गत परनाम न सोधे, एकौ गरज सरी ना।।१।।
बैठि सभा मे बहु उपदेशे, आप भये परवीना।
ममता डोरी तोरी नाही, उत्तम तै भये हीना।।२।।
"द्यानत" मन वच काय लायके, निज अनुभव चित्त दीना।
अनुभव धारा ध्यान विचारा, मदर कलश नवीना।।३।।

नहिं ऐसो जनम बारम्बार.....

नहि ऐसो जनम बारम्बार।
कठिन-कठिन लह्यो मनुष भव, विषय भजि मतिहार।।टेक।।
पाय चिन्तामन रतन शठ, छिपत उदधि मझार।
अन्धे हाथ बटेर आई, तजत ताहि गवार।।१।।
कबहुँ नरक तिरयञ्च कबहुँ, कबहुँ सुरग विहार।
जगत माहि चिरकाल भ्रमियो, दुर्लभ नर अवतार।।२।।
पाय अमृत पाय धोवै, कहत सुगुरु पुकार।
तजो विषय कषाय 'द्यानत', ज्यो लहो भवपार।।३।।

तू तो समझ-समझ रे! भाई.....

तू तो समझ-समझ रे! भाई।
निशि दिन विषय भोग लपकाना, धरम वचन न सुहाई।।टेक।।
कर मनका लै आसान मारचो, बाहिज लोक रिझाई।
कहा भयो बक ध्यान धरे तै, जो मन थिर न रहाई।।१।।
मास-मास उपवास किये तै, काया बहुत सुखाई।
क्रोध मान छल लोभ न जीत्यो, कारज कौन सराई।।२।।
मन-वच-काय जोग थिर करकै, त्यागो विषय कषाई।
'द्यानत' सुरग मोख सुखदाई, सद्गुरु सीख बताई।।३।।

री! मेरे घट ज्ञान घना मम छायो.....

री! मेरी घट ज्ञान घना मम छायो ।
शुद्धभाव बादल मिल आये, सूरज मोह छिपायो ।।टेक।।
अनहद घोर घोर गरजत है, भ्रम आताप मिटायो ।
समता चपला चमकनि लागी, अनुभव-सुख झर लायो ।।१।।
सत्ता भूमि बीज समकित को, शिवपद खेत उपायो ।
उद्धत भाव सरोवर दीसै, मोर सुमन हरषायो ।।२।।
भव-प्रदेश तै बहु दिन पीछै, चेतन पिय घर आयो ।
'द्यानत' सुमति कहै सखियनसो, यह पावस मोहि भायो ।।३।।

दुनियाँ मतलब की गरजी.....

दुनियाँ मतलब की गरजी, अब मोहे जान पडी ।।टेक।।
हरे वृक्ष पै पछी बैठा, रटता नाम हरी ।
प्रात भये पछी उड चाले, जग की रीति खरी ।।१।।
जब लग बैल वहै बनिया का, तब लग चाह घनी ।
थके बैल को कोई न पूछै, फिरता गली गली ।।२।।
सत्त बाध सत्ती उठ चाली, मोह के फन्द पडी ।
'द्यानत' कहै प्रभू नहि सुमर्यो, मुरदा संग जली ।।३।।

प्राणीलाल! धरम अगाऊ धारौ.....

प्राणी लाल! धरम अगाऊ धारौ ।
जबलौं धन जोवन हैं तेरे, दान शील न विसारौ ।।टेक।।
जबलौ करपद दिढ है तेरे, पूजा तीरथ सारौ ।
जीभ नैन जबलो हैं नीके, प्रभु गुन गाय तिहारौ ।।१।।
आसन श्रवण सबल है तोलौं, ध्यान शब्द सुनि धारौ ।
जरा न आवै गद न सतावै, संजम पर उपकारौ ।।२।।
देह शिथिल मति विकल न तौलो, तप गहि तत्त्वविचारो ।
अन्त समाधि पोत चढि अपनो, 'द्यानत' आतम तारो ।।३।।

जगत में सम्यक् उत्तम भाई !.....

जगत मे सम्यक् उत्तम भाई ! ।।टेक।।
सम्यक् सहित प्रधान नरक मे, धिक् शठ सुरगति पाई।।१।।
श्रावकव्रत मुनिव्रत जे पालै, ममता बुद्धि अधिकाई।
तिनतै अधिक असजम चारी, जिन आतम लव आई।।२।।
पञ्च परावर्तन तै कीनै, बहुत बार दुखदाई।
लख चौरासी स्वाग धरि नाच्यौ, ज्ञानकला नहि आई।।३।।
सम्यक् बिन तिहुँ जग दुखदाई, जह भावै तह जाई।
'द्यानत' सम्यक् आतम अनुभव, सद्गुरु सीख बताई।।४।।

भाई ! अब मैं ऐसा जाना.....

भाई ! अब मै ऐसा जाना।।टेक।।
पुद्गल दरब अचेत भिन्न है, मेरा चेतन बाना।।१।।
कलप अनन्त सहत दुख बीते, दुख कौ सुख कर माना।
सुख-दुख दोऊ कर्म अवस्था, मै कर्मन तै आना।।२।।
जहा भोर थी तहा भई निशि, निशि की ठौर बिहाना।
भूल मिटी जिन पद पहिचाना, परमानन्द निधाना।।३।।
गूगे का गुड खाय कहैं किमि, यद्यपि स्वाद पिछाना।
'द्यानत' जिन देख्या ते जानै, आत्मज्ञान विज्ञाना।।४।।

भाई ! ज्ञानी सोई कहिए.....

भाई ! ज्ञानी सोई कहिये।।टेक।।
करम उदय सुख-दुख भोगे तै, राग विरोध न लहिये।।१।।
कोऊ ज्ञान क्रिया तै कोई, शिवमारग बतलावै।
नय निहचै व्यवहार साधिकै, दोऊ चित्त रिझावै।।२।।
कोऊ कहै जीव छिनभगुर, कोई नित्य बखानै।
परजय दरवित नय परमानै, दोऊ समता आनै।।३।।
कोई कहै उदय है सोई, कोई उद्यम बोलै।
'द्यानत' स्यादवाद सु तुला मे, दोनो बाते तौलै।।४।।

धनि-धनि ते मुनि गिरिवनवासी.....

धनि-धनि ते मुनि गिरिवनवासी।।टेक।।
मार-मार जग जार जार ते, द्वादस व्रत तप अभ्यासी।।१।।
कौडी लाल पास नहिं जाके, जिन छेदी आसापासी।
आतम-आतम पर-पर जानै, द्वादश तीन प्रकृति नासी।।२।।
जा दु ख देख दु:खी सब जग ह्वै, सो दु.ख लख सुख ह्वै तासी।
जाको सब जग सुख मानत है, सो सुख जान्यो दु खरासी।।३।।
बाहिज भेष कहत अन्तर गुण, सत्य मधुर हित मित भासी।
'द्यानत' ते शिवपथ पथिक है, पाव परत पातक जासी।।४।।

अज्ञानीजन ! समझत क्यों नहिं वानी...

अज्ञानीजन ! समझत क्यो नहि वानी।।टेक।।
स्याद्वाद अकित सुखदाय, भाखी केवलज्ञानी।।१।।
जास लखैं निरमल पद पावै, कुमति कुगति की हानी।
उदय भया जिहमे परगासी, तिहि जाना सरधानी।।२।।
जामे देव धरम गुरु वरने, तीनौ मुकति निसानी।
निश्चय देव धरम गुरु आतम, जानत विरला प्रानी।।३।।
या जगमाहि तुझे तारन को, कारन नाव बखानी।
'द्यानत' सो गहिये निहचै सैं, हूजे ज्यो शिवथानी।।४।।

बसि, ससार में मैं पायो दु:ख अपार.....

बसि, ससार मे मै पायो दु ख अपार।।टेक।।
मिथ्याभाव हिये धर्यो, नहि जानो सम्यक् चार।।१।।
काल अनादिहि हौ रुल्यौ हो, नरक निगोद मझार।
सुरनर पद बहुत धरे पद, पद प्रति आतम धार।।२।।
जिनको फल दु खपुञ्ज है हो, ते जाने सुखकार।
भ्रम मद पीय विकल भयो नहि, गह्यो सत्य व्योहार।।३।।
जिनवाणी जानी नही हो, कुगति विनाशन हार।
'द्यानत' अब सरधा करी, दुख मेटि लह्यो सुखसार।।४।।

भाई! ज्ञान का राह.....

भाई! ज्ञान का राह सुहेला रे।।टेक।।
दरव न चहिये, देह न दहिये, जोग भोग न नवेला रे।।१।।
लडना नाही, मरना नाही, करना बेला तेला रे।
पढना नाही, गढना नाही, नाचन गावन मेला रे।।२।।
न्हाना नाही, खाना नाही, नाहि कमाना धेला रे।
चलना नाही, जलना नाही, गलना नाही देला रे।।३।।
जो चित चाहै, सो नित दाहै, चाह दूर करि खेला रे।
'द्यानत' यामे कौन कठिनता, बे-परवाह अकेला रे।।४।।

आतम अनुभव कीजे हो.....

आतम अनुभव कीजे हो।।टेक।।
जनम जरा अरु मरन नाशकै, अनत काल लौ जीजै हो।।१।।
देव-धरम-गुरु की सरधा करि, कुगुरु आदि तज दीजै हो।
छहौ दरब नव तत्त्व परख कै, चेतन सार गहीजै हो।।२।।
दरब-करम नोकरम भिन्न करि, सूक्षम दृष्टि धरीजै हो।
भावकरम तै भिन्न जानि कै, बुधि विलास न मरीजै हो।।३।।
आप-आप जानै सो अनुभव, 'द्यानत' शिव का दीजै हो।
और उपाय बन्यो नहि बनि है, करै सो दक्ष कहीजै हो।।४।।

कर रे! कर रे! कर रे! तू आतम हित.....

कर रे! कर रे! कर रे! तू आतम हित कर रे।।टेक।।
काल अनन्त गयो जग भमतै, भव-भव के दुख हर रे।।१।।
लाख कोटि भव तपस्या करतै, जीतो कर्म तेरी जर रे।
स्वास-उस्वास माहि सो नासै, जब अनुभव चित धर रे।।२।।
काहे कष्ट सहै वन माही, राग-दोष परिहर रे।
काज होय समभाव बिना नहि, भावो पचि-पचि मर रे।।३।।
लाख सीख की सीख एक यह, आतम-निज पर-पर रे।
कोटि ग्रन्थ को सार यही है, 'द्यानत' लख भव तर रे।।४।।

अब हम आतम को पहिचान्यौ.....

अब हम आतम को पहिचान्यौ।
जब ही सेती मोह सुभट बल, छिनक एक मे भान्यौ।।टेक।।
राग विरोध विभाव भजे झर, ममता भाव पलान्यौ।
दरशन ज्ञान चरन में चेतन, भेद रहित परवान्यौ।।१।।
जिहि देखै हम अवर न देख्यो, देख्यो सो सरधान्यौ।
ताकौ कहो कहैं कैसे करि, जा जानै जिम जान्यौ ।२।।
पूरब भाव सुपनवत देखे, अपनो अनुभव तान्यौ।
'द्यानत' ता अनुभव स्वादत ही, जनम सफल करि मान्यौ।।३।।

कर कर आतमहित रे प्राणी.....

कर कर आतमहित रे प्रानी।
जिन परिनामनि बध होत है, सो परणति तज दु खदानी।।टेक।
कौन पुरुष तुम कहां रहत हौ, किहि की संगति रति मानी।
जे परजाय प्रगट पुद्गलमय, ते तैं क्यो अपनी जानी।।१।।
चेतन जोति झलकत तुझ माहीं, अनुपम सो तैं विसरानी।
जाकी पटतर लगत आन नहि, दीप रतन शशि सूरानी।।२।।
आप मे आप लखो अपनो पद, 'द्यानत' करि तन मन वानी।
परमेश्वर पद आप पाइये, यौं भाषैं केवलज्ञानी।।३।।

धनि ते साधु रहत वनमाहीं .....

धनि ते साधु रहत वनमाही।
शत्रु-मित्र सुख-दु.ख सम जानैं, दिरसन देखत पाल पलाहीं।।टेक।।
अट्ठाईस मूलगुण धारै, मन वच काय चपलता नाहीं।
ग्रीषम शैल शिखा हिम तटिनी, पावस बरखा अधिक सहाही।।१।।
क्रोध मान छल लोभ न जानै, राग-दोष नाही उनपाही।
अमल अखडित चिद्गुण मडित, ब्रह्मज्ञान मे लीन रहाही।।२।।
तेई साधु लहै केवल पद, आठ काठ दह शिवपुरी जाही।
'द्यानत' भवि तिनके गुण गावैं, पावै शिवसुख दुःख नसाही।।३।।

रे जिय! काहे क्रोध करै.....

रे जिय! काहे क्रोध करै ।।टेक।।
देख के अविवेक प्रानी, क्यो न विवेक धरै ।।१।।
जिसे जैसी उदय आवै, सो क्रिया आचरै ।
सहज तू अपनो बिगारै,जाय दुर्गम परै ।।२।।
होय सगति गुन सबनि को, सरब जग उच्चरै ।
तुम भले कर भले सबको, बुरे लखि मति जरै ।।३।।
वैद्य परविष हर सकत नही, आप भाखि को मरै ।
बहु कषाय निगोद-वासा, 'द्यानत' क्षमा धरै ।।४।।

मन ! मेरे राग भाव निवार.....

मन ! मेरे राग भाव निवार।।टेक।।
राग चिक्कनतै लागत है, कर्मधूलि अपार ।।१।।
राग आस्रव मूल है, वैराग्य सवर धार ।
जिन न जान्यो भेद यह, वह गयो नरभव हार ।।२।।
दान पूजा शील जप तप, भाव विविध प्रकार ।
राग बिन शिव सुख करत है, राग तै ससार ।।३।।
वीतराग कहा कियो,यह बात प्रगट निहार ।
सोई करसुखहेत 'द्यानत' शुद्ध अनुभव सार ।।४।।

कहिवे को मन सूरमा.....

कहिवे को मन सूरमा, करवे को काचा ।।टेक।।
विषय छुडावै और पै, आपन अति माचा ।।१।।
मिश्री-मिश्री के कहै, मुह होय न मीठा ।
नीम कहैं मुख कटु हुआ, कहु सुना न दीठा ।।२।।
कहनेवाले बहुत है, करने को कोई ।
कथनी लोक रिझावनी, करनी हित होई ।।३।।
कोटि जनम कथनी कथै, करनी बिनु दुखिया ।
कथनी बिनु करनी करै, 'द्यानत' सो सुखिया ।।४।।

जो तैं आतम हित नहीं कीना.....

जो तै आतम हित नही कीना।।टेक।।

रामा रामा धन धन काजै नर भव फल नहि लीना।।१।।
जप तप करि कै लोक रिझाये प्रभुता के रस भीना।
अतरगति परनमन (न) सोधे एकौ गरज सरीना।।२।।
बैठि सभा मे बहु उपदेशे आप भए परवीना।
ममता डोरी तोरी नाही उत्तम तै भए हीना।।३।।
'द्यानत' मन वच काय लगा कै जिन अनुभौ चितदीना।
अनुभौ धारा ध्यान विचारा मदर कलस नवीना।।४।।

अब हम आतम को पहचाना....

अब हम आतम को पहचाना।।टेक।।

जैसा सिद्धक्षेत्र मे राजत, तैसा घट मे जाना।।१।।
देहादिक परद्रव्य न मेरे, मेरा चेतन बाना।।२।।
'द्यानत' जो जानै सो स्याना, नहिं जाने सो दीवाना।।३।।

आतम जानो रे भाई.....

आतम जानो रे भाई।।टेक।।

जैसी उज्वल आरसी रे, तैसी आतम जोत।
काया-करमनसौ जुदी रे, सबको करै उदोत।।१।।
शयनदशा जागृतदशा रे, दोनो विकलप रूप।
निरविकलप शुद्धातम रे, चिदानन्द चिद्रूप।।२।।
तन वच सेती भिन्न कर रे, मनसो निज लव लाय।
आप-आप जब अनुभवै रे, तहा न मन-वच-काय।।३।।
छहौ दरब नव तत्त्व तै रे, न्यारो आतम राम।
'द्यानत' जे अनुभव करै रे, ते पावै शिवधाम।।४।।

मोहि कब ऐसा दिन आय है.....

मोहि कब ऐसा दिन आय है।
सकल विभाव अभाव होहिगे, विकलपता मिट जाय है।।टेक।।
यह परमातम यह मम आतम, भेदबुद्धि न रहाय है।
औरनि की का बात चलावै, भेदविज्ञान पलाय है।।१।।
जानै आप आप मै आपो, सो व्यवहार बिलाय है।
नय परमान निखेपन माही, एक न औसर पाय है।।२।।
दरसन ज्ञान चरन के विकलप, कहो कहा ठहराय है।
'द्यानत' चेतन चेतन ह्वै है, पुद्गल पुद्गल थाय है।।३।।

रे मन ! काहे को सोचत अति भारी.....

रे मन ! काहे को सोचत अति भारी।
पूरब करमन की थिति बाधी, सो तो टरत न टारी।।टेक।।
सब दरवनि की तीन काल की, विधि न्यारी की न्यारी।
केवलज्ञान विषै प्रतिभासी, सो सो ह्वै है सारी।।१।।
सोच किये बहु बध वढत है, उपजत है दुख ख्वारी।
चिन्ता चिता समान बखानी, बुद्धि करत है कारी।।२।।
रोग सोग उपजत चिन्ता तै, कहौ कौन गुनवारी।
'द्यानत' अनुभव करि शिव पहुचे, जिन चिन्ता सब जारी।।३।।

गलता नमता कब आवैगा.....

गलता नमता कब आवैगा।
राग-दोप परणति मिट जैहै, तब जियरा सुख पावैगा।।टेक।।
मै' ही ज्ञाता ज्ञान ज्ञेय मै, तीनो भेद मिटावैगा।
करता-किरिया-करम भेद मिटि, एक दरब लो लावैगा।।१।।
निहचै अमल मलिन व्यौहारी, दोनो पक्ष नसावैगा।
भेद गुण गुणी को नहि ह्वै है, गुरु सिख कौन कहावैगा।।२।।
'द्यानत' साधक साधि एक करि, दुविधा दूर बहावैगा।
वचनभेद कहवत सब मिटकै, ज्यो का त्यो ठहरावैगा।।३।।

सो ज्ञाता मेरे मन माना.....

सो ज्ञाता मेरे मन माना, जिन निज-निज पर-पर जाना।।टेक।।
छहो दरव तैं भिन्न जान कै, नव तत्वनि तै आना।
ताको देखै ताको जानैं, ताही के रस साना।।१।।
कर्म शुभाशुभ जो आवत हैं, सो तो पर पहिचाना।
तीन भवन को राज न चाहै, यद्यपि गाठ दरब बहु ना।।२।।
अखय अनन्ती सम्पति विलसै, भव तन भोग मगन ना।
'द्यानत' ता ऊपर बलिहारी, सोई 'जीवन-मुकत' भना।।३।।

जिनके हिरदै प्रभु नाम नहीं.....

जिनके हिरदै प्रभु नाम नहीं, तिन नर अवतार लिया न लिया।।टेक।।
दान बिना घर-वास बास, कै लोभ मलीन धिया न धिया।।१।।
मदिरापान कियो घट अन्तर, जलमल सोधि पिया न पिया।
आन प्रान के मांस भखे तैं, करुना भाव हिया न हिया।।२।।
रूपवान गुनखान वानि शुभ, शील विहीन तिया न तिया।
कीरतवन्त मृतक जीवत हैं, अपजसवन्त जिया न जिया।।३।।
धाम माहि कछु दाम न आये, बहु व्योपार किया न किया।
'द्यानत' एक विवेक किये बिन, दान अनेक दिया न दिया।।४।।

जानत क्यों नहिं रे.....

जानत क्यो नहि रे, हे नर ! आतम ज्ञानी।।टेक।।
राग-दोष पुद्गल की सगति, निहचै शुद्ध निशानी।।१।।
जाय नरक पशु नर खर गति मे, ये परजाय विरानी।
सिद्धस्वरूप सदा अविनाशी, जानत बिरला प्रानी।।२।।
कियो न काहू हरै न कोई, गुरु-सिख कौन कहानी।
जनम-मरन मलरहित अमल है, कीच बिना ज्यो पानी।।३।।
सार पदारथ है तिहुँ जग मे, नहि क्रोधी नहि मानी।
'द्यानत' सो घटमाहि विराजै, लख हूजै शिवथानी।।४।।

आतमरूप अनुपम है.....

आतमरूप अनुपम है, घटमाहि विराजै हो।
जाके सुमरन जाप सो, भव-भव के दुख भाजै हो।।टेक।।
केवल दरशान ज्ञान मे, थिरतापद छाजै हो।
उपमा को तिहुँ लोक मे, कोउ वस्तु न राजै हो।।१।।
सहै परीषह भार जो, जु महाव्रत साजे हो।
ज्ञान बिना शिव ना लहै, बहुकर्म उपाजै हो।।२।।
तिहुँ लोक तिहुँ काल मे, नाहि और इलाजै हो।
'द्यानत' ताको जानिये, जिन स्वारथ काजै हो।।३।।

हो भविजन ज्ञान सरोवर सोई.....

हो भविजन ज्ञान सरोवर सोई।
भूमि छिमा करुना मरजादा, समरस जल जह होई।।टेक।।
परहति लहर हरख जलचर बहु, नय पकति परकारी।
सम्यक् कमल अष्ट दल गुण है, सुमन भवर अधिकारी।।१।।
सजम शील आदि पल्लव है, कमला सुमति निवासी।
सुजस सुवास कमल परिचयतै, परसत भ्रम तम नासी।।२।।
भवमल जात न्हवात भविजन को, होत परमसुख साता।
'द्यानत' यह सर और न जानैं जानै बिरला ज्ञाता।।३।।

✓जीव! तैं मूढ़पना कित पायो.....

जीव! तै मूढपना कित पायो।
सब जग स्वारथ को चाहत है, स्वारथ तोहि न भायो।।टेक।।
अशुचि अचेत दुष्ट तन माही, कहा जान विरमायो।
परम अतीन्द्रिय निजसुख हरिकै, विषय रोग लपटायो।।१।।
चेतन नाम भयो जड काहे, अपनो नाम गमायो।
तीन लोक को राज छाडिकै, भीख माग न लजायो।।२।।
मूढपना मिथ्या जब छूटै, तब तू सन्त कहायो।
'द्यानत' सुख अनन्त शिव-विलसो, यो सद्गुरु बतलायो।।३।।

साधो छोडौ विषै विकारी.....

साधो छोडौ विषै विकारी, जातैं तोहि महादुख कारी।
जौ जैन धरम कौ ध्यावै सो आतमीक सुख पावै।।टेक।।
गज फरस विषै दुख पाया, रस मीन गध अलि पाया।
लखि दीप सलभ हित कीना, मृग नाद सुनत जिय दीना।।१।।
ये एक एक दुखदाई, तू पच रमत है भाई।
ऐ कौने सीख बताई, तुम्हरे मन कैसै आई।।२।।
इन माहि लोभ अधिकाई, यह लोभ कुगति कौ भाई।
सो कुगति मांहि दुख भारी, तू त्यागि विषै मतिधारी।।३।।
ए सेवत सुख से लागै, फिर अन्त प्राण कौ त्यागै।
तातै एक विषफल कहिये, तिन कौं कैसे करि गहिये।।४।।
तब लौ विषय रस भावै, जब लौ अनुभौ नहिं आवै।
जिन अमृत पान नहिं कीना, तिन और रस भवि चित दीना।।५।।
अब चहत कहा लौ कहिये, कारज कहि चुप है रहिये।
यह लाख बात की एकै, मति गहौ विषै का टेकै।।६।।
जौ तजै विषै की आसा, 'द्यानत' पावै सिववासा।
यह सतगुरु सीख बताई, काहूँ विरलै के जिय आई।।७।।

हमारो कारज कैसै होइ .....

हमारो कारज कैसै होइ ।।टेक।।
कारण पच मुकति के, तिन मे के है दोय।।१।।
हीन सघनन लघु आऊषा, अलप मनीषा जोइ।
कच्चै भाव न सधै साली, सब जग देख्यौ होइ।।२।।
इन्द्री पचसु विषयनि दोरै, मानै कहचा न कोइ।
साधारन चिरकाल वस्यौ मै, धरम बिना फिर सोइ।।३।।
चिंता बडी न कछु बन आवै, अब सब चिंता खोई।
'द्यानत' एक शुद्ध निज पद लखि, आप मे आप समोई।।४।।

ग्यान बिना दुख पाया रे भाई.....

ग्यान बिना दुख पाया रे, भाई।।टेक।।
भौ दस आठउ श्वास सास मैं, साधारन लपटाया रे।।१।।
काल अनन्त यहा तोहि बीते, जब भई मद कषाया रे।
तब तू निकसि निगोद सिधु तैं, थावर होय न सारा रे।।२।।
क्रम क्रम निकसि भयौ विकलत्रय, सो दुख जात न गाया रे।
भूख प्यास परवस सही पशुगति, बार अनेक बिकाया रे।।३।।
नरक माहि छेदन भेदन बहु, पुतरी अगनि जलाया रे।
सीत तपत दुरगध रोग दुख, जानै श्री जिनराया रे।।४।।
भ्रमत भ्रमत ससार महावन, कबहुँ देव कहाया रे।
लखि पर विभव सह्यौ दुख भारी, मरन समै बिललाया रे।।५।।
पाप नरक पशु पुन्य सुरग वसि, काल अनन्त गमाया रे।
पाप पुन्य जब भए बराबर, तब कहुँ नर भौ जाया रे।।६।।
नीच भयौ फिरि गरभ पड्यौ, फिरि जनमत काल सताया रे।
तरुन पनौ तू धरम न चेतौ, तन धन सुत लौ लाया रे।।७।।
दरव लिंग धरि धरि मरि मरि तू, फिर फिर जग भज आया रे।
'द्यानत' सरधा जु गहि मुनिव्रत, अमर होय तजि काया रे।।८।।

हमारो कारज ऐसे होइ.....

हमारो कारज ऐसे होइ।।टेक।।
आतम आतम पर पर जानै, तीनौ संसै खोइ।।१।।
अत समाधि मरन करि तन तजि, हौहि सक्र सुर लोइ।
विविध भोग उपभोग भोगवै, धरम तना फल सोइ।।२।।
पूरी आऊ विदेह भूप ह्वै, राज सपदा भोइ।
कारण पच लहै गहै दुद्धर, पच महाव्रत जोइ।।३।।
तीन जोग थिर सहै परीसह, आठ करम मल धोइ।
'द्यानत' सुख अनन्त सिव विलसै, जनमै मरै न कोइ।।४।।

जिन नाम सुमर मन! बावरे.....

जिन नाम सुमर मन! बावरे, कहा इत-उत भटकै ।।टेक।।
विषय प्रगट विष बेल है, इनमें जिन अटकै ।।१।।
दुर्लभ नरभव पाय के, नग सो मत पटकै ।
फिर पीछै पछतायगो, औसर जब सटकै ।।२।।
एक घरी है सफल जो, प्रभु गुन रस गटकै ।
कोटि वरष जीयो वृथा, जो थोथा फटकै ।।३।।
'द्यानत' उत्तम भजन है, लीजै मन रटकै ।
भव-भव के पातक सबै, जै है तो कटवै ।।४।।

चेतन खेलै होरी.....

चेतन खेलै होरी।।टेक।।
सत्ता भूमि छिमा वसन्त मे, समता प्रान प्रिया सग गोरी।।१।।
मन को कलश प्रेम को पानी, तामे करुना केसर घोरी।
ज्ञान-ध्यान पिचकारी भरि-भरि, आपमे छारै होरा होरी।।२।।
गुरु के वचन मृदग बजत है, नय दोनो डफ ताल टकोरी।
संजम अतर विमल व्रत चोवा, भाव गुलाल भरै भर झोरी।।३।।
धरम मिठाई तप बहु मेवा, समरस आनन्द अमल कटोरी।
'द्यानत' सुमति कहै सखियन सो, चिरजीवो यह जुग-जुग जोरी।।४।।

कारज एक ब्रह्म ही सेती.....

कारज एक ब्रह्म ही सेती।।टेक।।
अग सग नहि बाहिरभूत सब, धन दारा सामग्री तेती।।१।।
सोल सुरग नव ग्रैवेयक मे दु ख, सुखित सात मे ततका वेति
जा शिवकारन मुनिगन ध्यावै, सो तेरे घट आनन्द खेती।।२।।
दान शील जप तप व्रत पूजा, अफल ज्ञान बिन किरिया केती।
पञ्च दरब तोतै नित न्यारे, न्यारी राग-दोष विधि जेती।।३।।
तू अविनाशी जयपरकासी, 'द्यानत' भासी सुकलावेती।
तजौ लाल! मन के विकल्प सब, अनु व मगन सुविद्या एती।।४।।

कलि में ग्रन्थ बड़े उपगारी.....

कलि मे ग्रन्थ बडे उपगारी ।
देव-शास्त्र-गुरु सम्यक् सरधा, तीनो जिन तै धारी ।।टेक।।
तीन बरस वसु मास पद्र दिन, चौथा काल रहा था ।
परम पूज्य महावीर स्वामी तब, शिवपुर राज लहा था ।।१।।
केवलि तीन, पॉच श्रुतकेवलि, पीछै गुरुनि विचारी ।
अग पूर्व अब न है, न रहेगे, बात लिखी थिरकारी ।।२।।
भविहित कारन धर्म विचारन, आचारजो बनाये ।
बहुतानि तिनकी टीका कीनी, अद्भुत अरथ समाये ।।३।।
केवलि-श्रुतकेवलि यहॅ नाही, मुनिगन प्रगट न सूझे ।
दोऊ केवलि आज यही है, इनही को मुनि बूझे ।।४।।
बुद्धि प्रगट करि आप बॉचिये, पूजा वदन कीजे ।
दरब खरचि लिखवाय सुधाय, सुपंडित जन को दीजे ।।५।।
पढते सुनते चरचा करते, है सदेह जु कोई ।
आगम माफिक ठीक करै है, देख्यो केवलि सोई ।।६।।
तुच्छ बुद्धि कछु अरथ जानिकै, मनसो विंग उठाये ।
अवैधिज्ञानी श्रुतज्ञानी मानो, सीमधर मिलि आये ।।७।।
ये तो आचारज है सॉचे, ये आचारज झूठे ।
तिनिके ग्रन्थ पढे नित बदै, सरधा ग्रन्थ अपूठे ।।८।।
सॉच झूठ तुम क्यो कर जानो, झूठ जान क्यो पूजो ।
खोट निकाल शुद्ध कर राखो, अवर बनाओ दूजो ।।९।।
कौन सहामी बात चलावै, पूछै आनमती तो ।
ग्रन्थ लिख्यो तुम क्यो नहिं मानो, जवाब कहा कहि जीतो ।।१०।।
जैनी जैनग्रन्थ के निंदक, हुडासर्पिनी जोरा ।
'द्यानत' आप जानि चुप रहिये, जग मे जीवन थोरा ।।११।।

संक्षिप्त परिचय

कविवर भूधरदास

(विक्रम सवत १७५७ - १८०६)

हिन्दी और सस्कृत दोनो पर ही समान रूप से अधिकार रखनेवाले काव्य जगत के एक महान नक्षत्र कविवर भूधरदास का जन्म खण्डेलवाल जैन जाति मे आगरा मे हुआ था।

अध्यात्म जगत मे अपनी एक विशिष्ट छाप रखने वाले कविवर की अब तक तीन रचनाये उपलब्ध हो चुकी हैं –

जैन शतक, पार्श्व पुराण एव पदसग्रह। पार्श्वपुराण को हिन्दी के महाकाव्यो की कोटि मे रखा जा सकता है। इसमे २३ वे तीर्थंकर भगवान पार्श्वनाथ के महान् जीवन-चरित्र का सुन्दरतम वर्णन दृष्टव्य है। यह पुराण काव्य और प्रसाद गुण से युक्त है।

कविवर के रचित ६८ पद प्राप्त हो चुके है, प्राय सभी पदो मे कवि ने अध्यात्म की ऊँची उडान भरी है। अनुभव परक, वैराग्य प्रेरक और विविध आध्यात्मिक भावो से आपूर्ण आपके पदो का अनेक बार पाठन करने पर भी पुन पाठन की इच्छा उद्भूत हुए बिना नही रहती है।

अब मेरे समकित सावन आयो .....

अब मेरे समकित सावन आयो ।
बीति कुरीति मिथ्यामति ग्रीषम, पावस सहज सुहायो ।।टेक।।
अनुभव दामिनि दमकन लागी सुरति घटा घन छायो ।
बोलै विमल विवेक पपीहा, सुमति सहुगिनि भायो ।।१।।
गुरु धुनि गरज सुनत सुख उपजै, मोर सुमन विहसायो ।
साधक भाव अकुर उठे बहु, जित तित हरष सवायो ।।२।।
भूल धूल कहिं भूल न सूझत, समरस जल भर लायो ।
'भूधर' को निकसै अब बाहिर, निज निरचू घर पायो ।।३।।

भगवन्त भजन क्यों भूला रे .....

भगवन्त भजन क्यो भूला रे ।
यह ससार रैन का सुपना, तन धन वारि बबूला रे ।।टेक।।
इस जोवन का कौन भरोसा, पावक मे तृण पूला रे ।
काल कुदार लिये सिर ठाडा, क्या समझै मन फूला रे ।।१।।
स्वारथ साधै पाव पाव तू, परमारथ को लूला रे ।
कहु कैसे सुख पावे प्राणी, काम करै दुख मूला रे ।।२।।
मोह पिशाच छल्यो मति मारै, निज कर कन्ध वसूला रे ।
भज श्री राजमतीवर 'भूधर', दो दुरमति सिर धूला रे ।।३।।

जगत जन जूवा हारि चले .....

जगत जन जूवा हारि चले ।
काम कुटिल सग बाजी माडी, उन करि कपट छले ।।टेक।।
चार कषायमयी जह चौपरि, पासे जोग रले ।
इत सरवस उत कामिनी कौडी, इह विधि झटक चले ।।१।।
कूर खिलार विचार न कीन्हो, ह्वै है ख्वार भले ।
बिना विवेक मनोरथ काके, 'भूधर' सफल फले ।।२।।

भाई ! अन्तर उज्ज्वल करना रे .....

भाई ! अन्तर उज्ज्वल करना रे ।।टेक।।
कपट कृपान तजै नहि तबलौ, करनी काज न सरना रे ।।१।।
जप तप तीरथ यज्ञ व्रतादिक, आगम अर्थ उचरना रे ।
विषय-कषाय कीच नहिं धोयो, यो ही पचि-पचि मरना रे ।।२।।
बाहिर भेष क्रिया उर शुचि सो, किये पार उतरना रे ।
नाही है सब लोक रजना, ऐसे वेदन वरना रे ।।३।।
कामादिक मन सौ मन मैला, भजन किये क्या तिरना रे ।
'भूधर' नीलवसन पर कैसै, केसर रग उछरना रे ।।४।।

मन हंस ! हमारी लै शिक्षा हितकारी .....

मन हंस! हमारी लै शिक्षा हितकारी।।टेक।।
श्री भगवान चरन पिंजरे वसि, तजि विषयनि की यारी ।।१।।
कुमति कागली सौ मति राचो, ना वह जात तिहारी ।
कीजै प्रीत सुमति हसी सौ, बुध हंसन की प्यारी ।।२।।
काहे को सोवत भव झीलर, दु:खजल पूरित खारी ।
निजबल पख पसारि उडो किन, हो शिव सरवर चारी ।।३।।
गुरु के वचन विमल मोती चुन, क्यो निजवान विसारी ।
ह्वै है सुखी सीख सुधि राखे, 'भूधर' भूलैं ख्वारी ।।४।।

देखो भाई ! आतम देव विराजै .....

देखो भाई ! आतम देव विराजै।।टेक।।
इस ही हूठ हाथ देवल मे, केवल रूपी राजै ।।१।।
अमल उदास जोतिमय जाकी, मुद्रा मजुल छाजै ।
मुनि जन पूजन अचल अविनाशी, गुण बरनत बुधि लाजै ।।२।।
पर सजोग अमल प्रतिभासत, निज गुण मूल न त्याजै ।
जैसे फटिक पाखान हेत सो, स्याम अरु दुति साजै ।।३।।
सोऽह पद ममता सो ध्यावत, घट ही मे प्रभु पाजै ।
'भूधर' निकट निवास जासु को, गुरु बिन भरम न भाजै ।।४।।

अज्ञानी पाप धतूरा न बोय .....

अज्ञानी पाप धतूरा न वोय।।टेक।।

फल चाखन की वार भरै दृग, मर है मूरख रोय ।।१।।
किंचित् विषयनि के सुख कारण, दुर्लभ देह न खोय ।
ऐसा अवसर फिर न मिलैगा, मोह नीद मत सोय ।।२।।
इस विरिया मैं धर्म-कल्प-तरु, सीचत स्याने लोय ।
तू विष बोवन लागत तो सम, और अभागा कोय ।।३।।
जे जग मे दुखदायक वेरस, इस ही के फल सोय ।
यो मन 'भूधर' जानिकै भाई, फिर क्यो भोदू होय ।।४।।

सुन ज्ञानी प्राणी, श्रीगुरु सीख .....

सुन ज्ञानी प्राणी, श्रीगुरु सीख सयानी।।टेक।।

नरभव पाय विषय मति सेवो, ये दुरगति अगवानी ।।१।।
यह भव कुल यह तेरी महिमा, फिर समझी जिनवाणी ।
इस अवसर मे यह चपलाई, कौन समझ उर आनी ।।२।।
चन्दन काठ कनक के भाजन, भरि गगा का पानी ।
तिल खलि राधत मदमती जो, तुझ क्या रीस बिरानी ।।३।।
'भूधर' जो कथनी सो करनी, यह बुधि है सुखदानी ।
ज्यो मशालची आप न देखै, सो मति करै कहानी ।।४।।

सो मत सांचो है मन मेरे .....

सो मत साचो है मन मेरे।।टेक।।

जो अनादि सर्वज्ञप्ररूपित, रागादिक बिन जे रे ।।१।।
पुरुष प्रमान-प्रमान वचन तिस, कलपित जान अने रे ।
राग दोष दूषित तिन वायक, साचे है हित तेरे ।।२।।
देव अदोष धर्म हिंसा बिन, लोभ बिना गुरु वे रे ।
आदि अन्त अविरोधी आगम, चार रतन जह ये रे ।।३।।
जगर भरचो पाखण्ड परख बिन, खाइ खता बहुतेरे ।
'भूधर' करि निज सुबुधि कसौटी, धर्म कनक कसि ले रे ।।४।।

अहो दोऊ रंग भरे खेलत होरी.....

अहो दोऊ रग भरे खेलत होरी, अलख अमूरति की जोरी।।टेक।।
इतमै आतम राम रगीले, उतमै सुबुद्धि किसोरी।
या कै ज्ञान सखा सग सुन्दर, बाकै सग समता गोरी।।१।।
सुचि मन सलिल दया रस केसरि, उदै कलस मे घोरी।
सुधी समझि सरल पिचकारि, सखिय प्यारी भरि भरि छोरी।।२।।
सत-गुरु सीख तान धर पद की, गावत होरा होरी।
पूरव बध अबीर उडावत, दान गुलाल भर झोरी।।३।।
'भूधर' आजि बडे भागिन, सुमति सुहागिन मोरी।
सो ही नारि सुलछिनी जग मे, जासौ पति नै रति जोरी।।४।।

पानी में मीन पियासी.....

पानी मे मीन पियासी, मोहे रह रह आवे हॉसी रे।।टेक।।
ज्ञान बिना भव बन मे भटक्यो, कित जमुना कित काशी रे ।।१।।
जैसे हिरण नाभि किस्तूरी, वन वन फिरत उदासी रे ।।२।।
'भूधर' भरम जाल को त्यागो, मिट जाये जम की फासी रे ।।३।।

होरी खेलूंगी घर आए चिदानंद.....

होरी खेलूगी घर आए चिदानद।।टेक।।
शिशर मिथ्यात गई अब, आइ काल की लब्धि वसत ।।१।।
पीय सग खेलनि कौ, हम सइये तरसी काल अनन्त
भाग जग्यो अब फाग रचानौ, आयौ विरह को अत ।।२।।
सरधा गागरि मे रुचि रूपी, केसर घोरि तुरन्त
आनन्द नीर उमग पिचकारी, छोड़ूगी नीकी भंत ।।३।।
आज वियोग कुमति सौतनि कौ, मेरे हरष अनत
'भूधर' धनि एही दिन दुर्लभ, सुमति राखी विहसत ।।४।।

ऐसो श्रावक कुल तुम पाय

ऐसो श्रावक कुल तुम पाय, वृथा क्यों खोवत हो ।।टेक।।
कठिन-कठिन कर नरभव पाई, तुम लेखी आसान।
धर्म विसारि विषय में राचौ, मानी न गुरु की आन ।।१।।
चक्री एक मतंगज पायो, तापर ईंधन ढोयो।
बिना विवेक बिना मति ही को, पाय सुधा पग धोयो ।।२।।
काहू शठ चिन्तामणि पायो, मरम न जानो ताय।
बायस देखि उदधि में फैंक्यो, फिर पीछे पछताय ।।३।।
सात व्यसन आठों मद त्यागो, करुना चित्त विचारो।
तीन रतन हिरदै में धारो, आवागमन निवारो ।।४।।
'भूधरदास' कहत भविजन सो, चेतन अब तो सम्हारो।
प्रभु को नाम तरन-तारन जपि, कर्म फन्द निरवारो ।।५।।

वे मुनिचर कब मिलि हैं उपकारी

वे मुनिवर कब मिलि हैं उपकारी ।।टेक।।
साधु दिगम्बर नगन निरम्बर, संवर भूषण धारी ।।१।।
कंचन काच बराबर जिनके, ज्यों रिपु त्यों हितकारी।
महल मसान मरन अरु जीवन, सम गरिमा अरु गारी ।।२।।
सम्यग्ज्ञान प्रधान पवन बल, तप पावक परजारी।
सेवत जीव सुवर्ण सदा जे, काय-कारिमा टारी ।।३।।
जोरि जुगल कर 'भूधर' विनवे, तिन पद धोक हमारी।
भाग उदय दरसन जब पाऊँ, ता दिन की बलिहारी ।।४।।

हे नर! निपट गवार

हे नर ! निपट गवार, गरव नहि कीजै रे ।।टेक।।
झूठी काया झूठी माया, छाया ज्यो लखि लीजे रे ।
कै छिन साझ सुहागुरु जोवन, कै दिन जग मे जीजे रे ।।१।।
वेगा चेत विलम्ब तजो नर, बध बढै थिति छीजै रे ।
'भूधर' पलपल हो है भारो, ज्यो-ज्यो कमरी भीजै रे ।।२।।

गरब नहिं कीजे रे.....

गरब नहि कीजे रे, ऐ नर निपट गँवार।।टेक।।
झूठी काया झूठी माया, छाया ज्यो लखि लीजे रे।
कै छिन साँझ सुहागरु जोवन, कै दिन जग मे जीजेरे।।१।।
बेगा चेत विलम्ब तजो नर, वध बढै तिथि छीजे रे।
'भूधर' पल पल हो है भारी, ज्यो ज्यो कमरी भीजे रे।।२।।

सुनि ठगनी माया, तैं सब जग ठग खाया .....

सुनि ठगनी माया, तै सब जग ठग खाया।
टुक विश्वास किया जिन तेरा, सो मूरख पिछताया।।टेक।।
आपा तनक दिखाय बीज ज्यो, मूढमती ललचाया।
करि मद अध धर्म हर लीनौ, अन्त नरक पहुँचाया।।१।।
केते कथ किये तै कुलटा, तो भी मन न अघाया।
किस ही सौ नहि प्रीति निबाही, वह तजि और लुभाया।।२।।
'भूधर' छलत फिरै यह सबको, भोदू करि जग पाया।
जो इस ठगनी को ठग बैठे, मै तिसको सिर नाया।।३।।

देख्या बीच जहान में .....

देख्या बीच जहान मे।
कोई अजब तमासा जोर, तमासा सुपने का सा।।टेक।।
एकौ के घर मगल गावै, पूरी मन की आसा।
एक वियोग भरे बहु रोवै, भरि-भरि नैन निरासा।।१।।
तेज तुरङगूनि पै चढि चलते, पहिरै मलमल खासा।
रङ्क भये नागे अति डोलै, ना कोइ देय दिलासा।।२।।
तरकै राज तखत पर बैठा, था खुशवक्त खुलासा।
ठीक दुपहरी मुद्दत आई, जगल कीना वासा।।३।।
तन धन अथिर निहायत जग मे, पानी माहि पतासा।
'भूधर' इनका गरब करै जे, धिक तिनका जनमासा।।४।।

रखता नहीं तन की खबर·····

रखता नहीं तन की खबर अनहद बाजा बाजिया।
घट बीच मण्डल बाजता, बाहिर सुना तो क्या हुआ।।टेक।।
जोगी तो जंगम सेवडा, बहु लाल कपडे पहिरना।
उस रंग से महरम नहीं, कपड़े रंगे तो क्या हुआ।।१।।
काजी किताबें खोलता, नसीहत बतावे और को।
अपना अमल कीन्हा नहीं, कामिल हुआ तो क्या हुआ।।२।।
पोथी के पाना बाचना, घर-घर कथा कहता फिरे।
निज ब्रम्ह को चीन्हा नहीं, ब्राम्हण हुआ तो क्या हुआ।।३।।
गाजा अफीम भाग है दारू शराब पोशना।
प्याला न पिया पेम का, अमली हुआ तो क्या हुआ।।४।।
शतरंज चोपर गंजफा, बहु खेल खेलें है सभी।
बाजी न खेली प्रेम की, जुआरी हुआ तो क्या हुआ।।५।।
'भूधर' बनाई विनती, श्रोता सुनो सब कान दे।
गुरु का वचन माना नहीं, श्रोता हुआ तो क्या हुआ।।६।।

जग में श्रद्धानी जीव 'जीवन मुकत' हैगे····

जग मे श्रद्धानी जीव 'जीवन मुक्त' हैंगे।।टेक।।
देव गुरु साचे मानें, साचो धर्म हिये आनें।
ग्रन्थ ते ही साचे जानें, जे जिन उकत हैंगे।।१।।
जीवन की दया पालैं झूठ तजि चोरी टालैं।
पर-नारी भालैं नैन, जिनके लुकत हैंगे।।२।।
जीय मैं सन्तोष धारैं, हियै समता विचारैं।
आगे को न बन्ध पारैं, पाछेसो चुकत हैंगे।।३।।
बाहिज क्रिया आराधैं, अन्दर सरूप साधैं।
'भूधर' ते मुक्त लाधैं, कहूँ न रुकत हैंगे।।४।।

ते गुरु मेरे मन बसो.....

ते गुरु मेरे मन बसो, जे भवजलधि जिहाज।
आप तिरहिं पर तारही, ऐसे श्री ऋषिराज।।टेक।।
मोह महारिपु जानि कैं, छाड्यो सब घरबार।
होय दिगम्बर बन बसे, आतम शुद्ध विचार।।१।।
रोग उरग-विल वपु गिण्यो, भोग भुजग समान।
कदलीतरु ससार है, त्याग्यो सब यह जान।।२।।
रत्नत्रय निधि उर धरै, अरु निरग्रथ त्रिकाल।
मार्यो कामखवीस को, स्वामी परमदयाल।।३।।
पच महाव्रत आदरै, पाचो समिति समेत।
तीन गुपति पालै सदा, अजर अमर पदहेत।।४।।
धर्म धरै दशलाछनी, भावैं भावना सार।
सहै परीषह बीस द्वै, चारित-रतन-भँडार।।५।।
जेठ तपै रवि आकरो, सूखै सरवर नीर।
शैल-शिखर मुनि तप तपै, दाझै नगन शरीर।।६।।
पावस रैन डरावनी, बरसै जलधर धार।
तरुतल निवसै तब यती, बाजै झझा व्यार।।७।।
शीत पडै कपि-मद गलै, दाहै सब वनराय।
ताल तरगनिके तटै, ठाडे ध्यान लगाय।।८।।
इह विधि दुद्धर तप तपै, तीनो काल मँझार।
लागे सहज सरूप मे, तन सौ ममत निवार।। ९ ।।
पूरव भोग न चिंतवै, आगम वाछै नाहिं।
चहुगति के दुख सौ डरै, सुरति लगी शिवमाहि।।१०।।
रग महल मे पौढ ते, कोमल सेज बिछाय।
ते पच्छिम निशि भूमि मे, सोवे सवरिकाय।।११।।
गज चढि चलते गरव सौ, सेना सजि चतुरग।
निरखि निरखि पग वे धरै, पालै करुणा अग।।१२।।

वे गुरु चरण जहा धरै, जग मै तीरथ जेह।
सो रज मम मस्तक चढो, 'भूधर' मागै एह।।१३।।

आया रे बुढ़ापो मानी .....

आया रे बुढापो मानी, सुधि बुधि बिसरानी।।टेक।।
श्रवन की शक्ति घटी, चाल चालै अटपटी।
देह लटी भूख घटी, लोचन झरत पानी।।१।।
दॉतन की पक्ति टूटी, हाडन की सधि छूटी।
काया की नगरि लूटी, जात नहि पहिचानी।।२।।
बालो ने वरन फेरा, रोग ने शरीर घेरा।
पुत्र हू न आवे नेरा, औरो की कहा कहानी।।३।।
'भूधर' समुझि अब, स्वहित करैगो कब।
यह गति ह्वै है जब, तब पछितैहै प्राणी।।४।।

ऐसी समझ के सिर धूल .....

ऐसी समझ के सिर धूल।।टेक।।
धरम उपजन हेत हिसा, आचरै अघमूल।।१।।
छके मत-मद पान पीके, रहे मन मे फूल।
आम चाखन चहै भोदू, बोय पेड बबूल।।२।।
देव रागी लालची गुरु, सेय सुखहित भूल।
धर्म नग की परख नाही, भ्रम हिडोले झूल।।३।।
लाभ कारन रतन विराजै, परख को नहि सूल।
करत इहि विधि वणिज 'भूधर', विनस जै है मूल।।४।।

संक्षिप्त परिचय

कविवर बुधजन

(विक्रम सवत १८३० - १८९५)

काव्य मे अध्यात्म को विशुद्ध रूप से व्यक्त करनेवाले कविवर बुधजन का पूर्व नाम विरधीचद था। आपका जन्म जयपुर मे खण्डेलवाल जाति तथा बज गोत्र मे हुआ था ।

आपका साहित्यिक जीवन सवत् १८५४ से प्रारभ हुआ, जबकि आपने "छहढाला" की रचना की – यह आपकी विशिष्ट कृति है।

इसी से प्रेरणा पाकर कविवर दौलतरामजी ने नवीन छहढाला की रचना की थी । पडित दौलतरामजी ने अपनी छहढाला के अन्त मे आपको बडे सम्मान के साथ याद किया है –

इक नव वसु इक वर्ष की, तीज शुक्ल बैसाख ।
करचो तत्त्व-उपदेश यह, लखि 'बुधजन' की भाख।।

अब तक आपकी १७ रचनाये उपलब्ध हो चुकी है। तत्वार्थ बोध, बुधजन सतसई, सबोध पचासिका, पचास्तिकाय भाषा, बुधजन विलास एव योगसार भाषा आदि आपकी प्रमुख रचनाये है। 'बुधजन सतसई' एक उत्कृष्ट रचना है, जिसमे अध्यात्म के साथ अन्य अनेक विषयो पर भावपूर्ण वर्णन मिलता है। 'बुधजन विलास' मे इनकी स्फुट रचनाओ एव पदो का सग्रह मिलता है – यह एक मुक्तक सग्रह है, जिसे पढकर प्रत्येक पात्र पाठक आत्मदर्शन का प्रयास करता है।

कविवर के अब तक २६५ पद प्राप्त हो चुके है। पदो के अध्ययन से ज्ञात होता है कि वे अध्यात्म के ज्ञाता तो थे ही, साथ ही आपकी काव्यप्रतिभा भी उच्चकोटि की थी।

हमकौं कछू भय ना रे.....

हमकौ कछू भय ना रे, जान लियौ संसार।।टेक।
जो निगोद मे सो ही मुझमे, सो ही मोख मँझार।
निश्चय भेद कछू भी नाही, भेद गिनै ससार।।१।।
परवश ह्वै आपा विसारिकै, राग-दोष कौ धार।
जीवत-मरत अनादि काल तै, यौ ही है उरझार।।२।।
जाकरि जैसै जाहि समय मे, जो होतब्ब जा द्वार।
सो बनि है टरि है कछु नाही, करि लीनौ निरधार।।३।।
अगनि जरावै पानी बोवै, बिछुरत मिलत अपार।
सो पुद्गलरूपी मै 'बुधजन' सबकौ जाननहार।।४।।

ज्ञानी! थारी रीति रौ अचंभौ मोनैं आवै.....

ज्ञानी! थारी रीति रौ अचभौ मोनै आवै।।टेक।।
भूलि सकति निज-परवश ह्वै क्यौ, जनम-जनम दुख पावै।।१।।
क्रोध लोभ मद माया करि करि, आपौ आप फँसावै।
फल भोगन की बेर होय तब, भोगत क्यौ पिछतावै।।२।।
पाप काज करि धन कौ चाहे, धर्म विषै मे बतावै।
'बुधजन' नीति अनीति बनाई, साँचौ सौ बतरावै।।३।।

सारद ! तुम परसाद तैं,.....

सारद ! तुम परसाद तै, आनन्द उर आया।
ज्यौ तिरसातुर जीव कौ, अमृत जल पाया।।टेक।।
नय परमान निखेप तै, तत्वार्थ बताया।
भाजी भूलि मिथ्यात की, निज निधि दरसाया।।१।।
विधिना मोहि अनादि तै, चहुगति भरमाया।
ता हरिवै की विधि सबै, मुझ माहि बताया।।२।।
गुन अनन्त मति अलप तै, मोपै जात न गाया।
प्रचुर कृपा लखि रावरी, 'बुधजन' हरषाया।।३।।

निजपुर में आज मची रे होरी.....

निजपुर मे आज मची रे होरी।।टेक।।
उमँगि चिदानन्दजी इत आये, इत आई सुमती गोरी।।१।।
लोकलाज कुलकानि गमाई, ज्ञान गुलाल भरी झोरी।
समकित केसर रग बनायो, चारित की पिचुकी छोरी।।२।।
गावत अजपा गान मनोहर, अनहद झरसौ वरस्यो री।
देखन आये 'बुधजन' भीगे, निरख्यौ ख्याल अनोखो री।।३।।

बाबा ! मैं न काहू का,.....

बावा ! मै न काहू का, कोई नही मेरा रे।।टेक।।
सुर नर नारक तिरयक गति मे, मोको करमन घेरा रे।।१।।
मात पिता सुत तिय कुल परिजन, मोह गहल उरझेरा रे।
तन धन वसन भवन जड न्यारे, हूँ चिन्मूरति न्यारा रे।।२।।
मुझ विभाव जडकर्म रचत है, करमन हमको फेरा रे।
विभाव चक्र तजि धारि सुभावा, अव आनन्दघन हेरा रे।।३।।
खरच खेद नहिं अनुभव करते, निरखि चिदानन्द तेरा रे।
जप तप व्रत श्रुत सार यही है, 'बुधजन' कर न अबेरा रे।।४।।

चेतन ! खेल सुमति संग होरी.....

चेतन ! खेल सुमति सग होरी।।टेक।।
तोरि आन की प्रीति सयाने, भली बनी या जौरी।।१।।
डगर डगर डोले है यौ ही, आव आपनी पौरी।
निज रस फगुवा क्यौ नहिं बाटो, नातर ख्वारी तोरी।।२।।
छार कषाय त्यागी या गहि लै, समकित केशर घोरी।
मिथ्या पाथर डारि धारि लै, निज गुलाल की झोरी।।३।।
खोटे भेष धरै डोलत है, दुख पावै बुधि भोरी।
'बुधजन' अपना भेष सुधारो, ज्यौ विलसो शिवगोरी।।४।।

उत्तम नरभव पायकै, मति भूलै.....

उत्तम नरभव पायकै, मति भूलै रे रामा।।टेक।।
कीट पशु का तन जब पाया, तब तू रहचा निकामा।
अब नरदेही पाय सयाने, क्यौ न भजै प्रभु नामा।।१।।
सुरपति याकी चाह करत उर, कब पाऊ नरजामा।
ऐसा रतन पायकै भाई, क्यौ खोवत बिनकामा।।२।।
धन जोबन तन सुन्दर पाया, मगन भया लखि भामा।
काल अचानक झटक खायगा, परे रहैगे ठामा।।३।।
अपने स्वामी के पदपकज, करो हिये विसरामा।
मैटि कपट भ्रम अपना 'बुधजन', ज्यौ पावो शिवधामा।।४।।

ऐसा ध्यान लगावो.....

ऐसा ध्यान लगावो भव्य जासौ, सुरग-मुक्ति फल पावोजी।।टेक।।
जामै बध परै नाहि आगै, पिछले बध हटावोजी।।१।।
इष्ट-अनिष्ट कल्पना छोडो, सुख-दुख एक हि भावोजी।
परवस्तुनि सो ममत निवारो, निज आतम लौ ल्यावोजी।।२।।
मलिन देह की सगति छूटै, जामन-मरन मिटावोजी।
शुद्ध चिदानद 'बुधजन' ह्वै कै, शिवपुर वास बसावोजी।।३।।

मेरा सांई तौ मोमैं नाहीं न्यारा,.....

मेरा साई तौ मोमै नाही न्यारा, जानै सो जाननहारा।
पहले खेद सह्यौ बिन जानैं, अब सुख अपरपारा।।टेक।।
अनत-चतुष्टय धारक ज्ञायक, गुन परजै द्रब सारा।
जैसा राजत गधकुटी मे, तैसा मुझमे म्हारा।।१।।
हित अनहित मम पर विकलप तै, करम बध भये भारा।
ताहि उदय गति गति सुख-दुख मे, भाव किये दुखकारा।।२।।
काल लब्धि जिन आगम सेती, सशय भरम विदारा।
'बुधजन' जान करावन करता, हौहि एक हमारा।।३।।

सम्यग्ज्ञान बिना तेरो जनम अकारथ.....

सम्यग्ज्ञान बिना तेरो जनम अकारथ जाय।।टेक।।
अपने सुख मे मगन रहत नहिं, पर की लेत बलाय।
सीख सुगुरु की एक न मानै, भवभव मै दुख पाय।।१।।
ज्यौ कपि आप काठ लीला करि, प्रान तजै बिललाय।
ज्यौ निज मुख करि जाल मकरिया, आप मरै उलझाय।।२।।
कठिन कमायो सब धन ज्वारी, छिन मे देत गमाय।
जैसे रतन पाय के भोदू, बिलखे आप गमाय।।३।।
देव-शास्त्र-गुरु को निहचै करि, मिथ्यामत मति ध्याय।
सुरपति बाछा राखत याकी, ऐसी नर परजाय।।४।।

भवदधि-तारक नवका जगमाहीं जिनवान.....

भवदधि-तारक नवका जगमाही जिनवान।।टेक।।
नय प्रमान पतवारी जाके, खेवट आतम ध्यान।।१।।
मन वच तन सुध जे भवि धारत, ते पहुचत शिवथान।
परत अथाह मिथ्यात भँवर ते, जे नहिं गहत अजान।।२।।
बिन अक्षर जिनमुख तै निकसी, परी वरनजुत कान।
हितदायक 'बुधजन' को गनधर, गूथे ग्रन्थ महान।।३।।

मैं देखा आतमरामा.....

मै देखा आतमरामा।।टेक।।
रूप फरस रस गध तै न्यारा, दरस-ज्ञान-गुनधामा।
नित्य निरजन जाकै नाही, क्रोध लोभ मद कामा।।१।।
भूख-प्यास सुख-दुख नहिं जाकै, नाहिं वन पुर गामा।
नहिं साहिब नहिं चाकर भाई, नही तात नहि मामा।।२।।
भूलि अनादि थकी जग भटकत, लै पुद्गल का जामा।
'बुधजन' सगति जिनगुरु की तै, मै पाया मुझ ठामा।।३।।

और ठौर क्यों हेरत प्यारा.....

और ठौर क्यो हेरत प्यारा, तेरे हि घट मे जाननहारा।।टेक।।
चलन हलन थल वास एकता, जात्यान्तर तै न्यारा न्यारा।।१।।
मोह उदय रागी-द्वेषी ह्वै, क्रोधादिक का सरजन हारा।
भ्रमत फिरत चारौ गति भीतर, जनम-मरन भोगत दुख भारा।।२।।
गुरु उपदेश लखै पद आपा, तबहिं विभाव करै परिहारा।
ह्वै एकाकी 'बुधजन' निश्चल, पावै शिवपुर सुखद अपारा।।३।।

काल अचानक ही ले जायेगा.....

काल अचानक ही ले जायेगा, गाफिल होकर रहना क्या रे।।टेक।।
छिन हू तोकू नाहिं बचावै, तौ सुभटन का रखना क्या रे ।।१।।
रच सबाद करिन के काजै, नरकन मे दुख भरना क्या रे ।
कुलजन पथिकनि के हित काजै, जगत जाल मे परना क्या रे ।।२।।
इद्रादिक कोउ नाहिं बचैया, और लोक का शरना क्या रे ।
निश्चय हुआ जगत मे मरना, कष्ट परै तब डरना क्या रे ।।३।।
अपना ध्यान करत खिर जावै, तौ करमनि का हरना क्या रे ।
अब हित करि आरत तजि 'बुधजन', जन्म-जन्म मे जरना क्या रे ।।४।।

या नित चितवो उठिकै भोर.....

या नित चितवो उठिकै भोर।।टेक।।
मै हूँ कौन कहा तै आयो, कौन हमारी ठौर ।।१।।
दीसत कौन, कौन यह चितवत, कौन करत है शोर ।
ईश्वर कौन, कौन है सेवक, कौन करे झकझोर ।।२।।
उपजत कौन मरै को भाई, कौन डरे लखि घोर ।
गया नही आवत कछु नाही, परिपूरन सब ओर ।।३।।
और और मै और रूप ह्वै, परनतिकरि लइ और ।
स्वाग धरै डोलौ याही तै, तेरी 'बुधजन' भोर ।।४।।

तोकौं सुख नहि होगा लोभीड़ा.....

तोकौ सुख नहिं होगा लोभीडा! क्यौ भूल्या रे परभावन मे ।।टेक।।
किसी भांति कहूँ का धन आवै, डोलत है इन दावन मे ।।१।।
ब्याह करू सुत जस जग गावै, लग्यौ रहै या भावन मे।
दरव परिनमत अपनी गौत, तू क्यो रहित उपायन मे ।।२।।
सुख तो है सतोष करन मे, नाही चाह वढावन मे।
कै सुख है 'बुधजन' की सगति, कै सुख शिवपद पावन मे ।।३।।

नरभव पाय फेरि दुख भरना.....

नरभव पाय फेरि दुख भरना, ऐसा काज न करना हो।।टेक।।
नाहक ममत ठानि पुद्गल सौ, करमजाल क्यौ परना हो।।१।।
यह तो जड तू ज्ञान अरूपी, तिल तुष ज्यौ गुरु वरना हो।
राग-दोष तजि भजि समता कौ, कर्म साथ के हरना हो।।२।।
यो भव पाय विषय-सुख सेना, गज चढि ईधन ढोना हो।
'वुधजन' समुझि सेय जिनवर पद, ज्यौ भवसागर तरना हो।।३।।

हो मनाजी, थारी वानी बुरी छै.....

हो मना जी, थारी वानी बुरी छै, दुखदाई।।टेक।।
निज कारिज मै नेकु न लागत, परसौ प्रीति लगाइ।।१।।
या सुभाव सौ अति दुख पायो, सो अब त्यागो भाई।।२।।
'बुधजन' औसर भागन पायो, सेवो श्री जिनराई।।३।।

रे मन मेरा, तू मेरो कह्यौ मान.....

रे मन मेरा, तू मेरो कह्यौ मान मान रे।।टेक।।
अनत चतुष्टय धारक तू ही, दुख पावत बहुतेरा।
भोग विषय का आतुर ह्वै कै, क्यौ होता है चेरा।।१।।
तेरे कारन गति गति माही, जनम लिया है घनेरा।
अब जिन चरन गहि 'बुधजन', मिटि जावै भव फेरा।।२।।

धर्म बिन कोई नहीं अपना.....

धर्म बिन कोई नही अपना ।
सब सम्पति धन थिर नहिं जग मे, जिसा रैन सपना ।।टेक।।
आगै किया सो माया भाई, याही है निरना ।
अब जो करैगा सो पावैगा, तातैं धर्म करना ।।१।।
ऐसै सब ससार कहत है, धर्म कियै तिरना ।
परपीडा बिसनादिक सेवै, नरक विषै परना ।।२।।
नृप के घर सारी सामग्री, ताकै ज्वर तपना ।
अरु दरिद्री कै हूॅ ज्वर है, पाप उदय थपना ।।३।।
नाती तो स्वारथ के साथी, तोहि विपत भरना ।
वन गिरि सरिता अगनि जुद्ध मै, धर्म हि का सरना ।।४।।
चित 'बुधजन' सन्तोष धारना, पर चिंता हरना ।
विपति पडै तो समता रखना, परमातम जपना ।।५।।

मति भोगन राचौ जी.....

मति भोगन राचौ जी, भव-भव मे दुख देत घना ।।टेक।।
इनके कारन गति गति माही नाहक नाचौ जी ।
झूठे सुख के काज धरम मे पाडौ खाचौ जी ।।१।।
पूरब कर्म उदय सुख आया, राजौ माचौ जी ।
पाप उदय पीडा भोगन मे, क्यौ मन काचौ जी ।।२।।
सुख अनन्त के धारक तुम ही, पर क्यौ जाचौ जी ।
'बुधजन' गुरु का वचन हिया मे, जानौ साचौ जी ।।३।।

बन्यौ म्हारै या घरी मैं रंग.....

बन्यौ म्हारै या घरी मै रग ।।टेक।।
तत्त्वारथ की चरचा पाई, साधरमी कौ सग ।।१।।
श्री जिनचरन बसे उर माही, हरष भयौ सब अग ।।२।।
ऐसी विधि भव-भव मे मिलिज्यौ, धर्मप्रसाद अभग ।।३।।

मैं देखा अनोखा ज्ञानी वे.....

मै देखा अनोखा ज्ञानी वे।।टेक।।
लारै लागि आन की भाई, अपनी सुध विसरानी वे।
जा कारन तै कुगति मिलत है, सो ही निजकर आनी वे।।१।।
झूठे सुख के काज सयाने, क्यौं पीडै है प्रानी वे।
दया दान पूजन व्रत तप कर, 'बुधजन' सीख बखानी वे।।२।।

मेरो मनुवा अति हरषाय.....

मेरो मनुवा अति हरषाय, तोरे दरसन सौ।।टेक।।
शात छबि लखि शात भाव ह्वै, आकुलता मिट जाय।।१।।
जबलौ चरन निकट नहि आया, तबलौ आकुलता थाय।
अब आवत ही निज निधि पाया, नित नव मगल पाय।।२।।
'बुधजन' अरज करै कर जोरे सुनिये श्री जिनराय।
जवलौ मोख होय नहि तबलौ भक्ति करू गुन गाय।।३।।

ज्ञान बिन थान न पावौगे.....

ज्ञान बिन थान न पावौगे, गति गति फिरौगे अजान।
गुरु उपदेश लह्यौ नहि उर मे, गह्यौ नही सरधान।।टेक।।
विषयभोग मे राचि रहे करि, आरति रौद्र कुध्यान।
आन-आन लखि आन भये तुम, परनति करि लई आन।।१।।
निपट कठिन मानुष भव पायौ, और मिले गुनवान।
अब 'बुधजन' जिनमत को धारौ, करि आंपा पहिचान।।२।।

गुरु ने पिलाया जो ज्ञान पियाला.....

गुरु ने पिलाया जो, ज्ञान पियाला।।टेक।।
भइ बेखबरी परभावा की, निजरस मे मतवाला ।।१।।
यो तो छाक जात नहि छिन हू, मिटि गये आन जजाला ।।२।।
अद्भुत आनन्द मगन ध्यान मे, 'बुधजन' हाल सम्हाला ।।३।।

और सबै मिलि होरि रचावैं.....

और सबै मिलि होरि रचावै, हूँ काके सग खेलौगी होरी।।टेक।।
कुमति हरामिनि ज्ञानी पिया पै, लोभ मोह की डारी ठगौरी।
भोरै झूठ मिठाई खवाई खोसि लये गुन करि वरजोरी।।१।।
आप हि तीन लोक के साहिब, कौन करै इनकै सम जोरी।
अपनी सुधि कबहू नहिं लेते, दास भये डोलै पर पौरी।।२।।
गुरु 'बुधजन' तै सुमति कहत है, सुनिये अरज दयाल सु मोरी।
हा हा करत हूँ पाय परत हूँ, चेतन पिय कीजे मो ओरी।।३।।

धनि सरधानी जग मैं,.....

धनि सरधानी जग मै, ज्यौं जल कमल निवास।।टेक।।
मिथ्या तिमिर फटचो प्रगटचो शशि, चिदानन्द परकास ।।१।।
पूरब कर्म उदय सुख पावै, भोगत ताहि उदास ।
जो दुख मै न विलाप करै, निरवेर सहै तन त्रास ।।२।।
उदय मोहचारित परवशि ह्वै, व्रत नहि करत प्रकाश ।
जो किरिया करि है निरवाछक, करैं नही फल आस ।।३।।
दोषरहित प्रभु धर्म दयाजुत, परिग्रह बिन गुरु तास ।
तत्त्वारथ रुचि है जाके घट, 'बुधजन' तिनका दास ।।४।।

तू मेरा कहचा मान रे निपट अयाना.....

तू मेरा कहचा मान रे निपट अयाना।।टेक।।
भव वन बाट मात सुत दारा, बधु पथिक जन जान रे।
इनतै प्रीति न ला बिछुरैगे, पावैगो दुख खान रे।।१।।
इकसे तन आतम मति आनै, यो जड है तू ज्ञान रे।
मोह उदय वश भरम पडत है, गुरु सिखवत सरधान रे।।२।।
बादल रग सम्पदा जग की छिन मे जात विलान रे।
तमाशवीन बनि यातै 'बुधजन', सब तै ममता हान रे।।३।।

हे आतमा ! देखी दुति तोरी रे.....

हे आतमा ! देखी दुति तोरी रे।।टेक।।
निज को ज्ञान लोक को ज्ञाता, शक्ति नही थोरी रे।
जैसी जोति सिद्ध जिनवर मे, तैसी ही मोरी रे।।१।।
जड नहि हुवो फिरै जड के वसि, जड की रुचि जोरी रे।
जग के काजि करन जग टहलै, 'बुधजन' मति भोरी रे।।२।।

मेरी अरज कहानी, सुनि केवलज्ञानी.....

मेरी अरज कहानी, सुनि केवलज्ञानी।।टेक।।
चेतन के सग जड-पुद्गल मिलि, सारी बुधि बौरानी।।१।।
भववन माही फेरत मोकौं, लख चौरासी थानी।
कवलौ वरनौ तुम सब जानो, जनम-मरन दुखखानी।।२।।
भाग भले तै मिले 'बुधजन' को, तुम जिनवर सुखदानी।
मोह फासि को काटि प्रभूजी, कीजे केवलज्ञानी।।३।।

तेरी बुद्धि कहानी, सुनि मूढ़ अज्ञानी.....

तेरी बुद्धि कहानी, सुनि मूढ अज्ञानी।।टेक।।
तनक विषयसुख लालच लाग्यौ, नतकाल दुखखानी।।१।।
जड-चेतन मिलि बध भये इक, ज्यौ पयमाही पानी।
जुदा-जुदा सरूप नहि मानै, मिथ्या एकता मानी।।२।।
हूँ तो 'बुधजन' दृष्टा-ज्ञाता, तन जड सरधा आनी।
ते ही अविचल सुखी रहैगे, होय मुक्ति वर प्रानी।।३।।

शिवधानी निशाशानी जिनवानी हो.....

शिवधानी निशाशानी जिनवानी हो।।टेक।।
भववन भ्रमन निवारन-कारन, आपा-पर पहिचानि हो ।।१।।
कुमति पिशाच मिटावन लायक, स्याद् मत्र मुख आनि हो ।।२।।
बुधजन मनवचतन करि निशिदिन, सेवो सुख की खानि हो ।।३।।

अब घर आये चेतनराय.....

अब घर आये चेतनराय, सजनी खेलौंगी मै होरी।।टेक।।
आरस सोच कानि कुल हरिकै, धरि धीरज बरजोरी।।१।।
बुरी कुमति की बात न बूझै, चितवत है मो ओरी।
वा गुरुजन की बलि-बलि जाऊ, दूरि करी मति भोरी।।२।।
निज सुभाव जल हौज भराऊ, घोरू निजरग रोरी।
निज ल्यौ ल्याय शुद्ध पिचकारी, छिरकन निज मति दोरी।।३।।
गाय रिझाय आप वश करिकै, जावन द्यौ नहि पोरी।
'बधजन' रचि मचि रहू निरतर, शक्ति अपूरब मोरी।।४।।

अजी हो जीवाजी थानैं श्रीगुरु.....

अजी हो जीवाजी थानै श्रीगुरु कहै छै, सीख मानौ जी।।टेक।।
बिन मतलब की थे मति मानौ, मतलब की उर आनौ जी ।।१।।
राग-दोष की परिनति त्यागौ, निज सुभाव थिर ठानौ जी ।।२।।
अलख अभेद रु नित्य निरजन, थे 'बुधजन' पहिचानौ जी ।।३।।

मुनि बन आयेजी बना.....

मुनि बन आये जी बना।
शिव बनरी ब्याहन कौ उमगे, मोहित भविक जना।।टेक।।
रत्नत्रय सिर सेहरा बाधै, सजि सवर वसना।
सग बराती द्वादश भावन, अरु दश धर्म पना।।१।।
सुमति नारी मिलि मगल गावत अजपा गीत घना।
राग-दोष की अतिशबाजी, छूटत अगनि-कना।।२।।
दुविधि कर्म का दान बटत है, तोषित लोकमना।
शुक्लध्यान की अगनि जला करि, होमै कर्मघना।।३।।
शुभ बेल्या शिव बनरि बरी मुनि, अद्भुत हरष बना।
निज मदिर मे निश्चल राजत, 'बुधजन' त्याग घना।।४।।

गुरु दयाल तेरा दुख लखि कें.....

गुरु दयाल तेरा दुख लखि कें, सुन लै जो फुरमावै है ।।टेक।।
तोमैं तेरा जतन बतावै लोभ कछू नहिं चावै है ।।१।।
पर सुभाव को मोर्या चाहै, अपना उसा बनावै है ।
सो तो कबहू हुवा न होसी, नाहक रोग लगावै है ।।२।।
खोटी खरी जस करी कमाई, तैसी तेरै आवै है ।
चिन्ता आगि उठाय हिया मे, नाहक जान जलावै ।।३।।
पर अपनावै सो दुख पावै, 'बुधजन' ऐसे गावै है ।
पर को त्यागि आप थिर तिष्ठै सो अविचल सुख पावै है ।।४।।

जगत मे होनहार सो होवै....

जगत मे होनहार सो होवै, सुर नृप नाहि मिटावै ।।टेक।।
आदिनाथ से को भोजन मे, अन्तराय उपजावै ।
पारसप्रभु को ध्यान लीन लखि कमठ मेघ बरसावै ।।१।।
लछमन से सग भ्राता जाकै, सीता राम गमावै ।
प्रतिनारायण रावण से की, हनुमत लक जरावै ।।२।।
जैसो कमावे तैसो ही पावे, यो 'बुधजन' समझावै ।
आप आपको आप कमावो, क्यो परद्रव्य कमावे ।।३।।

आगे कहा करसी भैया,.....

आगे कहा करसी भैया, आ जासी जब काल रे ।
ह्या तो तैने पोल मचाई, व्हा तो होय सभाल रे ।।टेक।।
झूठ कपट करि जीव सताये, हरया पराया माल रे ।
सम्पति सेती धाप्या नाही, तकी बिरानी बाल रे ।।१।।
सदा भोग मैं मगन रह्या तू, लख्या नही निज हाल रे ।
सुमरन दान किया नहि भाई, हो जासी पैमाल रे ।।२।।
जोवन मे जुवती सग भूल्या, भूल्या जब था बाल रे ।
अब हू धारो 'बुधजन' समता, सदा रहहु खुशहाल रे ।।३।।

तेरो गुण गावत हूँ मैं,......

तेरो गुण गावत हू मै, निजहित मोहि जताय दे।।टेक।।
शिवपुर की मोकौ सुधि नाही, भूलि अनादि मिटाय दे।।१।।
भ्रमत फिरत हूँ भववन माही, शिवपुर बाट बताय दे।
मोह-नीद वश घूमत हूँ नित, ज्ञान बधाय जगाय दे।।२।।
कर्म शत्रु भव-भव दुख दे हैं, इनतै मोहि छुटाय दे।
'बुधजन' तुम चरना सिर नावै, एती बात बनाय दे।।३।।

हूँ कब देखूँ वे मुनिराई हो......

हूँ कब देखू वे मनिराई हो।।टेक।।
तिल तुष मात्र न परिग्रह जिनकै, परमातम लौ लाइ हो ।।१।।
निज स्वारथ के सब ही बाधव, वे परमारथ भाई हो ।।२।।
सब विधि लायक शिवमग दायक तारन-तरन सदाई हो ।।३।।

सुणिल्यो जीव सुजान.....

सुणिल्यो जीव सुजान, सीख सुगुरु हित की कही।
रुल्यौ अनन्ती बार, गति गति साता ना लही।।टेक।।
कोइक पुन्य सजोग, श्रावक कुल नरगति लही।
मिले देव निरदोष, वाणी भी जिनकी कही।।१।।
चरचा को परसग, अरु सरध्या मै बैठिवो।
ऐसा अवसर फेरि, कोटि जनम नहि भेटिवो।।२।।
झूठी आशा छोडि, तत्त्वारथ रुचि धारिल्यो।
या मे कछु न बिगार, आपो आप सुधारिल्यो।।३।।
तन को आतम मानि, भोग विषय कारज करो।
यौ ही करत अकाज, भव भव क्यौ कूवे परो।।४।।
कोटि ग्रन्थ कौ सार, जो भाई 'बुधजन' करो।
राग-दोष परिहार, याही भव सौ उद्धरो।।५।।

श्री जिनपूजन को हम आये.....

श्री जिनपूजन को हम आये, पूजत ही दुखदँद मिटाये।।टेक।
विकलप गयो प्रगट भयो धीरज, अदभुत सुख समता बरसाये
आधि-व्याधि अब दीखत नाही, धरम कलपतरु आगन थाये ।१।।
इतमै इन्द्र चक्रवर्ति इतमै, इतमै फनिंद खरे सिर नाये।
मुनिजनवृद करै थुति हरपत, धनि हम जनमै पद परसाये।।२।।
परमौदारिक मै परमातम, ज्ञानमयी हमको दरसाये।
ऐसे ही हममे हम जानै, 'वुधजन' गुन मुख जात न गाये।।३।।

हो जिनवानी जू, तुम मोकौं तारोगी.....

हो जिनवानी जू, तुम मोकौ तारोगी।।टेक।
आदि अन्त अविरुद्ध वचन तै, सशय भ्रम निरबारोगी।।१।।
ज्यौ प्रतिपालत गाय वत्स कौ, त्यो ही मुझको पारोगी।
सनमुख काल बाघ जब आवै, तब तत्काल उबारोगी।।२।।
'वुधजन' दास बीनवै माता, या विनती उर धारोगी।
उलझि रह्यौ हूँ मोह जाल मे, ताकौ तुम सुरझारोगी।।३।।

तैं क्या किया नादान.....

तै क्या किया नादान, तै तो अमृत तजि विष लीना।।टेक।।
लख चौरासी जौनी माहि तैं, श्रावक कुल मे आया।
अब तजि तीन लोक के साहिब, नवग्रह पूजन धाया।।१।।
वीतराग के दरसन ही तै, उदासीनता आवै।
तू तौ जिनके सनमुख ठाडा, सुत को ख्याल खिलावै।।२।।
सुरग सम्पदा सहजै पावै, निश्चय मुक्ति मिलावै।
ऐसी जिनवर पूजन सेती, जगत कामना चावै।।३।।
'वधजन' मिलै सलाह कहै तब, तू वापै खिजि जावै।
जथा जोग कौ अजथा मानै, जनम-जनम दुख पावै।।४।।

संक्षिप्त परिचय

कविवर दौलतराम

(विक्रम सवत १८५५ - १९२३)

अध्यात्म रस मे निमग्न रहनेवाले उन्नीसवी सदी के तत्त्वदर्शी विद्वान कविवर प दौलतरामजी पल्लीवाल जाति के नर-रत्न थे। आपका जन्म अलीगढ के पास सासनी नामक ग्राम मे हुआ था। आप कुछ दिन अलीगढ भी रहे थे। आपके पिता का नाम श्री टोडरमल था।

आत्मश्लाघा से दूर रहनेवाले इन महान कवि का जीवन-परिचय पूर्णत प्राप्त नही है । वे एक साधारण गृहस्थ, सरल स्वभावी, आत्मज्ञानी महापुरुष थे।

आपके द्वारा रचित लघु पद्य ग्रथ छहढाला जैन समाज का बहुप्रचलित एव समादृत ग्रथरत्न है। शायद ही ऐसा कोई जैनी हो, जिसने छहढाला का अध्ययन न किया हो। इसकी रचना आपने विक्रम संवत् १८८१ मे की थी, आपने इसमे गागर मे सागर भरने का प्रयत्न किया है।

इसके अलावा आपने कई स्तुतियाँ एव अध्यात्म-रस से ओत-प्रोत अनेक भजन लिखे है, जो आज भी सारे भारतवर्ष के मन्दिरो और शास्त्र-सभाओ मे बडे सम्मान के साथ गाये जाते है। आपके भजनो मे मात्र भक्ति ही नही, गूढ तत्व भी भरे हुए है।

भक्ति और अध्यात्म के साथ ही आपके काव्य मे काव्योत्पादन भी अपने प्रौढतम रूप मे पाये जाते है । भाषा सरल, सुबोध और प्रवाहमयी है, भर्ती के शब्दो का अभाव है। आपके द्वारा रचित आध्यात्मिक पद एव भजन हिन्दी गीत साहित्य के किसी भी महारथी के सम्मुख बडे ही गर्व के साथ रखे जा सकते है।

मेरे कब ह्वै वा दिन की सुघरी .....

मेरे कब ह्वै वा दिन की सुघरी।।टेक।।
तन विन वसन असन विन वन मे, निवसो नासादृष्टि धरी।।१।।
पुण्य-पाप परसो कब विरचो, परचो निजनिधि चिरविसरी।
तज उपाधि सजि सहज समाधि, सहो घाम हिम मेघझरी।।२।।
कब थिरजोग धरो ऐसो मोहि, उपल जान मृग खाज हरी।
ध्यान कमान तान अनुभव-शर, छेदो किहि दिन मोह अरी।।३।।
कब तृन-कंचन एक गिनो अरु, मनिजडितालय शैल दरी।
'दौलत' सतगुरु चरन सेव, जो पुरवो आश यहै हमरी।।४।।

आतम रूप अनुपम अद्भुत .....

आतम रूप अनुपम अद्भुत, याहि लखैं भव-सिन्धु तरो।।टेक।।
अल्पकाल मे भरत चक्रधर, निज आतम को ध्याय खरो।
केवलज्ञान पाय भवि बोधे, ततछिन पायो लोकशिरो।।१।।
या विन समुझे द्रव्यलिंगि मुनि, उग्र तपन कर भार भरो।
नवग्रीवक पर्यन्त जाय चिर, फेर भवार्णव माहिं परो।।२।।
सम्यग्दर्शन ज्ञान चरन तप, येहि जगत मे सार नरो।
पूरव शिव को गये जाहि अब, फिर जैहै यह नियत करो।।३।।
कोटि ग्रन्थ को सार यही है, ये ही जिनवानी उचरो।
'दौल' ध्याय अपने आतम को, मुक्तिरमा तब वेग वरो।।४।।

प्रभु मोरी ऐसी बुधि कीजे .....

प्रभु मोरी ऐसी बुधि कीजे।।टेक।।
राग-दोष दावानल से बच, समतारस मे भीजे।।१।।
पर मे त्याग अपनपो, निज मे लाग न कबहूँ छीजे।
कर्म-कर्मफल माहिं न राचत, ज्ञान सुधारस पीजे।।२।।
सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चरन निधि, ताकी प्राप्ति करीजे।
मुझ कारज के तुम बड कारन, अरज 'दौल' की लीजे।।३।।

चिन्मूरत दृग्धारी की मोहे रीति .....

चिन्मूरत दृग्धारी की मोहे, रीति लगत है अटापटी ।।टेक।
बाहिर नारकिकृत दु ख भोगै, अन्तर सुखरस गटागटी ।
रमत अनेक सुरनि सग पै तिस, परणति तै नित हटाहटी ।।१।।
ज्ञान-विराग शक्ति तै विधि-फल, भोगत पै विधि घटाघटी ।
सदन-निवासी तदपि उदासी, तातै आस्रव छटाछटी ।।२।।
जे भवहेतु अबुध के ते तस, करत बन्ध की झटाझटी ।
नारक पशु तिय षट् विकलत्रय, प्रकृतिन की ह्वै कटाकटी ।।३।।
सयम धर न सकै पै सयम, धारन की उर चटाचटी ।
तासु सुयश गुन की 'दौलत' के, लगी रहै नित रटारटी ।।४।।

चेतन यह बुधि कौन सयानी .....

चेतन यह बुधि कौन सयानी, कही सुगुरु हित सीख न मानी ।।टेक।
कठिन काकताली ज्यौ पायो, नरभव सुकुल श्रवण जिनवानी ।।१।।
भूमि न होत चाँदनी की ज्यौ, त्यौ नहिं धनी ज्ञेय को ज्ञानी ।
वस्तुरूप यौ तू यौ ही शठ, हट कर पकरत सोज विरानी ।।२।।
ज्ञानी होय अज्ञान-राग-रुष कर, निज सहज स्वच्छता हानी ।
इन्द्रिय जड तिन विषय अचेतन, तहा अनिष्ट-इष्टता ठानी ।।३।।
चाहै सुख-दु ख की अवगाहै, अब सुनि विधि जो है सुखदानी ।
'दौल' आपकरि आप आपमै, ध्याय लाय लय समरससानी ।।४।।

देख्यो भागन तैं जिनपाला .....

देख्यो भागन तै जिनपाला, मोह नाशने वाला ।।टेक।।
सुभग निशक राग बिन यातै, बसन न आयुध वाला ।।१।।
जास ज्ञान मे युगपत भासत, सकल पदारथ माला ।
निज मे लीन हीन इच्छा पर, हितमित वचन रसाला ।।२।।
लखि जाकी छवि आतम निधि निज, पावत होत निहाला ।
'दौल' जास गुन चिन्तत रत है, निकट विकट भव नाला ।।३।।

जिनबैन सुनत मोरी भूल भगी .....

जिनबैन सुनत मोरी भूल भगी।।टेक।।
कर्मस्वभाव भाव चेतन को, भिन्न पिछानन सुमति जगी।।१।।
जिन अनुभूति सहज ज्ञायकता, सो चिर रुष तुष मैल पगी।
स्यादवाद-धुनि निर्मल-जलतैं, विमल भई समभाव लगी।।२।।
संशय मोह भरमता विघटी, प्रगटी आतम सौंज सगी।
'दौल' अपूरव मंगल पायो, शिवसुख लेन हौंस उमगी।।३।।

जिनवानी जान सुजान रे .....

जिनवानी जान सुजान रे।।टेक।।
लाग रही चिरतैं विभावता, ताको कर अवसान रे ।।१।।
द्रव्य क्षेत्र अरु काल भाव की, कथनी को पहिचान रे ।
जाहि पिछाने स्व-पर भेद सव, जान परत निदान रे ।।२।।
पूरब जिन जानी तिनही ने, भानी संसृतिवान रे ।
अब जानै अरु जानैंगे जे, ते पावैं शिवथान रे ।।३।।
कह 'तुषमाष' मुनी शिवभूती, पायो केवलज्ञान रे ।
यौं लखि 'दौलत' सतत करो भवि, चिद्वचनामृत पान रे ।।४।।

धनि मुनि जिनकी लगी लौ शिवओरनै .....

धनि मुनि जिनकी लगी लौ शिवओरनै ।टेक।।
सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चरन निधि, धरत हरत भ्रमचोरनै ।।१।।
यथाजात मुद्राजुत सुन्दर, सदन विजन गिरिकोरनै ।
तृन कञ्चन अरि स्वजन गिनत सम, निंदन और निहोरनै ।।२।।
भवसुख चाह सकल तनि बल सजि, करत द्विविध तप घोरनै ।
परम विराग भाव पवितै नित, चूरत करम कठोरनै ।।३।।
छीन शरीर न हीन चिदानन, मोहत मोह झकोरनै ।
जग-तप-हर भवि कुमुद निशाकर मोदन 'दौल' चकोरनै ।।४।।

ज्ञानी जीव निवार भरमतम ....

ज्ञानी जीव निवार भरमतम, वस्तुस्वरूप विचारत ऐसै ।।टेक।।
सुत तिय बन्धु धनादि प्रगट पर, ये मुझते है भिन्न प्रदेशै ।
इनकी परणति है इन आश्रित, जो इन भाव परनवै वैसै ।।१।।
देह अचेतन चेतन मै इन, परणति होय एकसी कैसै ।
पूरन-गलन स्वभाव धरै तन, मै अज अचल अमल नभ जैसे ।।२।।
पर परिनमन न इष्ट अनिष्ट, न वृथा रागरुष द्वन्द भयेसै ।
नसै ज्ञान निज फसै बध मे, मुक्त होय नमभाव लयेसै।।३।।
विषय-चाह दवदाह नसै नहि, बिन निज सुधासिन्धु मे पैसै ।
अब जिनबैन सुने श्रवन तै, मिटे विभाव करूँ विधि तैसै।।४।।
ऐसो अवसर कठिन पाय अब, निजहित हेत विलम्ब करेसै ।
पछताओ बहु होय सयाने, चेतन 'दौल' छुटो भव भयसै।।५।।

नित पीज्यौ धी धारी .....

निज पीज्यौ धी धारी, जिनवाणि सुधासम जान के।।टेक।।
वीर मुखारविन्द तै प्रगटी, जन्म-जरा-भय टारी।
गौतमादि गुरु-उर घट व्यापी, परम सुरुचि करतारी।।१।।
सलिल समान कलिल मल गजन, बुधमन रजन हारी।
भजन विभ्रम धूलि प्रभजन, मिथ्या जलद निवारी।।२।।
कल्यानक तरु उपवन धरिनी, तरनी भवजल तारी।
बन्ध विदारन पैनी छैनी, मुक्ति नसैनी सारी।।३।।
स्व-पर स्वरूप प्रकाशन को यह, भानुकला अविकारी।
मुनिमन-कुमुदिनि मोदन शशि-भा, शमसुख मनसुवारी।।४।।
जाके सेवत बेवत निजपद, नसत अविद्या सारी।
तीनलोक पति पूजन जाको, जान त्रिजग हितकारी।।५।।
कोटि जीभ सौ महिमा जाकी, कहि न सके मति धारी।
'दौल' अल्पमति केम कहै यह, अधम उधारन हारी।।६।।

हम तो कबहुँ न निज घर आये .....

हम तो कबहुँ न निज घर आये।
पर घर फिरत बहुत दिन बीते, नाम अनेक धराये।।टेक।।
परपद निजपद मानि मगन है, पर-परणति लपटाये।
शुद्ध बुद्ध सुख कन्द मनोहर, चेतनभाव न भाये।।१।।
नर पशु देव नरक निज जान्यो, परजय बुद्धि लहाये।
अमल अखण्ड अतुल अविनाशी, आतमगुन नहिं गाये।।२।।
यह बहु भूल भई हमरी फिर, कहा काज पछताये।
'दौल' तजो अजहूँ विषयन को, सतगुरु वचन सुहाये।।३।।

धनि मुनि निज आतम हित कीना .....

धनि मुनि निज आतम हित कीना।
भव असार तन अशुचि विषय विष, जान महाव्रत लीना।।टेक।।
एक विहारी परीग्रह छारी, परिसह सहत अरीना।
पूरव तन तपसाधन मान, न लाज गना परवीना।।१।।
शून्य सदन गिर गहन गुफा मे, पद्मासन आसीना।
परभावन तै भिन्न आपपद, ध्यावत मोह विहीना।।२।।
स्व-पर भेद जिनकी बुधि निज मे, पागी वाहि लगीना।
'दौल' तासपद वारिज रज से, किन अघ करे न छीना।।३।।

राचि रह्यो परमाहिं तू .....

राचि रह्यो परमाहिं तू, अपनो रूप न जानै रे।
अविचल चिनमूरत बिनमूरत, सुखी होत तस ठानै रे।।टेक।।
तन धन भ्रात तात सुत जननी, तू इनको निज जानै रे।
ये पर इनहिं वियोग योग मे, यौ ही सुख-दुख मानै रे।।१।।
चाह न पाये पाये तृष्णा, सेवत ज्ञान जघानै रे।
विपतिखेत विधिबन्ध हेत पै, जान विषय रस खानै रे।।२।।
नर भव जिनश्रुत श्रवण पाय अब, कर निज सुहित सयानै रे।
'दौलत' आतम ज्ञान-सुधारस, पीवो सुगुरु बखानै रे।।३।।

हम तो कबहुँ न निजगुन भाये .....

हम तो कबहुँ न निजगुन भाये।
तन निज मान जान तन दुःख-सुख मे विलखे हरखाये।।टेक।।
तन को गरन मरन लखि तन को, धरन मान हम जाये।
या भ्रम-भौर परे भव-जल चिर, चहुँगति विपत लहाये।।१।।
दरश-बोध-व्रत सुधा न चाख्यौ, विविध विषयविष खाये।
सुगुरु दयाल सीख दइ पुनि-पुनि, सुनि-सुनि उर नहि लाये।।२।।
बहिरातमता तजी न अन्तर, दृष्टि न है निज ध्याये।
धाम काम धन रामा की नित, आश हुताश जलाये।।३।।
अचल अनूप शुद्ध चिद्रूपी, सब सुखमय मुनि गाये।
'दौल' चिदानन्द स्वगुन मगन जे, ते जिय सुखिया थाये।।४।।

कबधौं मिलैं मोहि श्रीगुरु मुनिवर .....

कबधौ मिलै मोहि श्रीगुरु मुनिवर, करि है भवोदधि पारा हो।।टेक।।
भोग उदास जोग जिन लीनो, छाडि परिग्रह भारा हो।
इन्द्रिय दमन वमन मद कीनो, विषय कषाय निवारा हो।।१।।
कञ्चन काच बराबर जिनके, निन्दक बन्दक सारा हो।
दुर्धर तप तपि सम्यक् निजघर, मन-वच-तनकर धारा हो।।२।।
ग्रीषम गिरि हिम सरिता तीरै, पावस तरुतर ठारा हो।
करूणाभीन चीन त्रसधारक, ईर्यापन्थ समारा हो।।३।।
मार-मार व्रत धार शील दृढ, मोह महामल टारा हो।
मास छमास उपास वासवन, प्रासुक करत अहारा हो।।४।।
आरत-रौद्र लेश नहि जिनके, धर्म शुकल चित धारा हो।
ध्यानारूढ गूढ निज आतम, शुध उपयोग विचारा हो।।५।।
आप तरहिं औरन तो तारहिं, भवजलसिन्धु अपारा हो।
'दौलत' ऐसे जैन-जनित को, नित प्रति धोक हमारा हो।।६।।

हम तो कबहूँ न हित उपजाये .....

हम तो कबहुँ न हित उपजाये।।टेक।।
सुकुल-सुदेव-सुगुरु सुसग हित, कारन पाय गमाये।।१।।
ज्यो शिशु नाचत, आप न माचत, लखनहार बौराये।
त्यो श्रुत बाचत आप न राचत, औरन को समुझाये।।२।।
सुजस लाभ की चाह न तज निज, प्रभुता लखि हरखाये।
विषय तजे न रचे निज पद मे, पर-पद अपद लुभाये।।३।।
पाप त्याग ,जिन जाप न कीन्हौ, सुमन चाप तपताये।
चेतन तन को कहत भिन्न पर, देह सनेही थाये।।४।।
यह चिर भूल भई हमरी अब, कहा होत पछताये।
'दौल' अजौ भवभोग रचौ मत, यौ गुरु वचन सुनाये।।५।।

भाई ! निजहित कारज करना .....

भाई ! निजहित कारज करना।।टेक।।
जनम-मरन दुख पावत जातै, सो विधि-बन्ध कतरना।।१।।
ज्ञान-दरस अरु राग परस रस, निज-पर चिन्ह भ्रमरना।
सधि-भेद बुधि-छैनी तै कर, निज गहि पर पहिरना।।२।।
परिग्रही अपराधी शकै, त्यागी अभय विचरना।
त्यौ परचाह बन्ध दुखदायक, त्यागत सब सुख भरना।।३।।
जो भव-भ्रमन न चाहे तो, अब सुगुरु सीख उर धरना।
'दौलत' स्वरस सुधारस चाखौ, ज्यौ बिनसै भवमरना।।४।।

गुरू कहत सीख इमि बार-बार .....

गुरू कहत सीख इमि बार-बार, विषसम विषयन को टार-टार।।टेक।।
इन सेवत अनादि दुख पायो, जनम-मरन बहु धार-धार।।१।।
कर्माश्रित बाधाजुत फासी, बन्ध बढावन द्वन्द्वकार।
ये न इन्द्रिय के तृप्तिहेतु जिमि, तिस न बुझावत क्षार वार।।२।।
इनमे सुख कलपना अबुध के, बुधजन मानत दुख प्रचार।
इन तजि ज्ञानपियूष चख्यौ तिन, 'दौल' लही भव वार पार।।३।।

छांड़त क्यों नहि रे .....

छाडत क्यो नहि रे, हे नर ! रीति अयानी।।टेक।।
बार-बार सिख देत सुगुरु यह, तू दे आनाकानी ।।१।।
विषय न तजत न भजत बोध-व्रत, दु ख-सुख जाति न जानी ।
शर्म चहै न लहै शठ, ज्यौ घृतहेत बिलोवत पानी ।।२।।
तन धन सदन स्वजन जन तुझसौ, ये परजाय बिरानी ।
इन परिनमन विनश-उपजन सो, तै दु ख-सुख कर मानी ।।३।।
इस अज्ञान तै चिर दु ख पाये, तिनकी अकथ कहानी ।
ताको तज दृग-ज्ञान-चरन भज, निजपुर गति शिवदानी ।।४।।
यह दुर्लभ नरभव-सुसग लहि, तत्त्व लखावन बानी ।
'दौल' न कर अब पर मे ममता, धर-समता सुखदानी ।।५।।

मत कीज्यौ जी यारी .....

मत कीज्यौ जी यारी, ये भोग भुजग सम जान के।।टेक।।
भुजग डसत इक बार नसत है, ये अनन्त मृतुकारी।
तिसना तृषा बढै इन सेये, ज्यौ पीये जल खारी।।१।।
रोग वियोग शोक वनिता धन, समता-लता कुठारी।
केहरि करि अरी न देत ज्यो, त्यों ये दै दु ख भारी।।२।।
इनमे रचे देव तरु थाये, पाये शुभ्र मुरारी।
जे विरचे ते सुरपति अरचे, परचे सुख अधिकारी।।३।।
पराधीन छिन माहि छीन ह्वै, पापबन्ध करतारी।
इन्हे गिनै सुख आकमाहि तिन, आमतनी बुधि धारी।।४।।
मीन मतङ्ग पतङ्ग भृङ्ग मृग, इन वश भये दुखारी।
सेवत ज्यौ किंपाक ललित, परिपाक समय दु खकारी।।५।।
सुरपति नरपति खगपति हू की, भोग न आस निवारी।
'दौल' त्याग अब भज विराग सुख, मिलै मोक्ष सुखकारी।।६।।

मानत क्यों नहि रे .....

मानत क्यो नहि रे, हे नर सीख सयानी।।टेक।।
भयौ अचेत मोह मद पीके, अपनी सुधि विसरानी ।।१।।
दुखी अनादि कुबोध अव्रत तैं, फिर तिनसौ रति ठानी ।
ज्ञानसुधा निजभाव न चाख्यौ, पर-परणति मति सानी ।।२।।
भव असारता लखै न क्यो जह, नृप ह्वै कृमि बिट थानी ।
सधन निधन नृप दास स्वजन रिपु, दु.खिया हरिसे प्रानी ।।३।।
देह एह गद-गेह इस, है बुह विपति निशानी ।
जड मली छिनछीन करमकृत, बन्धन शिवसुख हानी ।।४।।
चाह ज्वलन ईधन विधि वन घन, आकुलता कुलखानी ।
ज्ञान सुधा सर शोषन रवि ये, विषय अमति मृतुदानी ।।५।।
यौ लखि भव तन भोग विरचि करि, निजहित सुन जिनवानी ।
तज रुष-राग 'दौल' अब अवसर, यह जिनचन्द्र बखानी ।।६।।

मत कीज्यौ जी यारी .....

मत कीज्यौ जी यारी, घिनगेह देह जड जान के।।टेक।।
मात तात रज वीरज सौ यह, उपजी मल फुलवारी ।
अस्थिमाल स्नायु जाल की, लाल लाल जल क्यारी ।।१।।
कर्म कुरङ्ग थली पुतली यह मुत्रपुरीष भण्डारी ।
चर्ममडी रिपुकर्म घडी, धन-धर्म चुरावन हारी ।।२।।
जे जे पावन वस्तु जगत मे, ते इन सर्व बिगारी ।
स्वेद मेद कफ क्लेशमयी, बहु मदगद व्याल पिटारी ।।३।।
जो सयोग रोगभव तौलौ, जो वियोग शिवकारी ।
बुध तासौ न ममत्व करै, यह मूढमतिन को प्यारी ।।४।।
जिन पोषी ते भये सदोषी, तिन पाये दुख भारी ।
जित तप ठान ध्यान कर शोषी, भये मोक्ष अधिकारी ।।५।।
सुरधनु शरद जलद जल बुदबुद, त्यौ झट विनशनहारी ।
यातै भिन्न जान निज चेतन, 'दौल' होहु शमधारी ।।६।।

जानत क्यों नहिं रे .....

जानत क्यो नहिं रे, हे नर आतमज्ञानी।।टेक।।
राग-दोष पुद्गल की सम्पति, निहचै शुद्ध निशानी ।।१।।
जाय नरक पशु नर सुरगति मे, यह परजाय विरानी ।
सिद्धसरूप सदा अविनाशी, मानत बिरले प्रानी ।।२।।
कियौ न काहू हरै न कोई, गुरु शिख कौन कहानी ।
जनम-मरन मलरहित विमल है, कीच बिना जिमि पानी ।।३।।
सार पदारथ है तिहु जग मे, नहिं क्रोधी नहिं मानी ।
'दौलत' सो घटमाहिं विराजे, लखि हूजे शिवथानी ।।४।।

और सबै जगद्वन्द मिटावो .....

और सबै जगद्वन्द मिटावो, लौं लावो जिन आगम ओरी।।टेक।।
है असार जगद्वन्द बन्धकर, यह कछु गरज न सारत तोरी।
कमला चपला यौवन सुरधनु, स्वजन पथिकजन क्यो रति जोरी।।१।।
विषय कषाय दुखद दोनो ये, इनतै तोर नेह की डोरी।
परद्रव्यन को तू अपनावत, क्यो न तजे ऐसी बुधि भोरी।।२।।
बीत जाय सागरथिति सुर की, नर परजाय तनी अति थोरी।
अवसर पाय 'दौल' मत चूको, फिर न मिलै मणि सागर बोरी।।३।।

चेतन कौन अनीति गही रे .....

चेतन कौन अनीति गही रे, तू ना मानै सुगुरु कही रे।।टेक।।
जिन विषयनवश बहु दुख पायो, तिनसौं प्रीति ठही रे।।१।।
चिन्मय ह्वै देहादि जडिन सौ, तो मति पागि रही रे।
सम्यग्दर्शन ज्ञान भाव निज, तिनकौ गहत नही रे।।२।।
जिनवृष पाय बिहाय रागमय, निजहित हेत यही रे।
'दौलत' जिन यह सीख धरी उर, तिन शिव सहज लही रे।।३।।

आज मैं परम पदारथ पायौ ....

आज मैं परम पदारथ पायौ, प्रभु चरनन चित लायौ ।।टेक।।
अशुभ गये शुभ प्रगट भये हैं, सहज कल्पतरु छायौ ।।१।।
ज्ञानशक्ति तप ऐसी जाकी, चेतनपद दरसायौ ।।२।।
'दौलत' अष्टकरम रिपु जीतन, शिवसुख अक्षर पायौ ।।३।।

मानत नँहि जिय निपट अनारी .....

मानत नहिं जिय निपट अनारी, सीख देत सुगुरु हितकारी ।
कुमति कुनारि संग रति मानत, सुमति सुनारि बिसारी ।।टेक।।
नर परजाय सुरेश चहैं सो, चखि विषविषय बिगारी ।
त्याग अनाकुल ज्ञान चाह, पर आकुलता विसतारी ।।१।।
अपना भूल आप समता निधि, भवदुःख भरत भिखारी ।
पर-द्रव्यन की परनति को शठ, वृथा बनत करतारी ।।२।।
जिन कषायदव जरत तहाँ, अभिलाष छटा घृत डारी ।
दुख सौं डरै करै दुखकारन, तैं नित प्रीति करारी ।।३।।
अतिदुर्लभ जिन बैन श्रवन करि, संशयमोह निवारी ।
'दौल' स्व-पर हित-अहित जानके, होवहु शिवमगचारी ।।४।।

मोही जीव भरमतम तैं नहि .....

मोही जीव भरमतम तैं नहिं, वस्तुस्वरूप लखै है जैसे ।।टेक।।
जे-जे जड-चेतन की परणति, है अनिवार परनवै वैसे ।
वृथा दुखी शठकर विकलप यौं नहि परिनवैं परिनवैं ऐसे ।।१।।
अशुचि सरोग समल जडमूरत, लखत विलात गगनघन जैसे ।
सो तन ताहि निहार अपनपो, चहत अबाध रहै थिर कैसे ।।२।।
सुत-तिय-बधु वियोग योग यौं, ज्यौं सरायजन निकसै पैसे ।
विलखत हरखत शठ अपने लखि, रोवत हसत मत्तजन जैसे ।।३।।
जिन-रवि बैन किरन लहि जिन, निजरूप सुभिन्न कियो परमैसे ।
सो जगमौल 'दौल' को चिर थित, मोहविलास निकास हृदैसे ।।४।।

अरे जिया! जग धोखे की टाटी .....

अरे जिया! जग धोखे की टाटी।।टेक।।
झूठा उद्यम लोक करत हैं, जामै निशदिन घाटी।
जान-बूझ के अन्ध बने है, आँखिन बाधी पाटी।।१।।
निकल जायेगे प्राण छिनक मे, पडी रहैगी माटी।
'दौलतराम' समझ मन अपने, दिल की खोल कपाटी।।२।।

निपट अयाना तैं आपा न जाना .....

निपट अयाना तै आपा न जाना, नाहक भरम भुलाना।
पीय अनादि मोहमद मोह्यो, परपद मे निज माना।।टेक।।
चेतन चिन्ह भिन्न जडता सो, ज्ञान दरश रस साना।
तन मे छिप्यो लिप्यो न तदपि ज्यो, जल मे कजदल माना।।१।।
सकल भाव निज-निज परनतिमय, कोई न होय बिराना।
तू दुखिया परकृत्य मानि ज्यो, नभ ताडन श्रम ठाना।।२।।
अजगन मे हरि मूल अपनपो, भयो दीन हैराना।
'दौल' सुगुरुधुनि सुनि निज मे निज, पाय लह्यो सुखथाना।।३।।

हे हितवांछक प्रानी रे .....

हे हितवाछक प्रानी रे, कर यह रीति सयानी।।टेक।।
श्रीजिनचरन चितार धार गुन, परम विराग विज्ञानी।।१।।
हरन भयामय स्व-पर दयामय, सरधौ वृष सुखदानी।
दुविध उपाधि बाध शिवसाधक, सुगुरु भजौ गुणथानी।।२।।
मोह तिमिर हर मिहर भजो श्रुत, स्यात्पद जास निशानी।
सप्त तत्त्व नव अर्थ विचारहु, जो वरनै जिनवानी।।३।।
निज-पर भिन्न पिछान मान पुनि, होतु आप सरधानी।
जो इनको विशेष जानत सो, ज्ञायकता मुनि मानी।।४।।
फिर व्रत समिति गुपतिसजि अरु, तजि प्रवृति शुभास्रव दानी।
शुद्ध स्वरूपाचरन लीन ह्वै 'दौल' वरौ शिवरानी।।५।।

ऐसा योगी क्यों न अभयपद पावै .....

ऐसा योगी क्यो न अभयपद पावै, सो फेर न भव मे आवै ।
ससय-विभ्रम-मोह विवर्जित, स्व-पर स्वरूप लखावै।।टेक।।
लख परमातम चेतन को पुनि, कर्मकलक मिटावै ।।१।।
भव-तन-भोग विरक्त होय तन, नग्न सुभेष बनावै ।
मोह-विकार निवार निजातम, अनुभव मे चित लावै ।।२।।
त्रस-थावर बध त्याग सदा, परमाद दशा छिटकावै ।
रागादिक वश झूठ न भाखै, तृण हू न अदत्त गहावै ।।३।।
बाहिर नारि त्यागि अन्तर, चिदब्रह्म सुलीन रहावै ।
परमाकिचन धर्मसार सो, द्विविध प्रसग बहावै ।।४।।
पञ्च समिति त्रय गुप्ति पाल, व्यवहार-चरनमग धावै ।
निश्चल सकल कषायरहित ह्वै, शुद्धातम थिर थावै ।।५।।
कुकु पक दास रिपु तृण मणि, व्याल माल सम भावै ।
आरत रौद्र कुध्यान विडारे, धर्मशुकल को ध्यावै ।।६।।
जाके सुख समाज की महिमा, कहत इन्द्र अकुलावै ।
'दौल' तासपद होय दास सो, अविचल ऋद्धि लहावै ।।७।।

हमारी वीर हरो भवपीर .....

हमारी वीर हरो भवपीर।।टेक।।
मै दुख तपित दयामृत सर तुम, लखि आयो तुम तीर।
तुम परमेश मोक्षमग दर्शक, मोह दवानल नीर।।१।।
तुम बिनहेत जगत उपकारी, शुद्ध चिदानन्द धीर।
गनपति ज्ञानसमुद्र न लघै, तुम गुनसिन्धु गहीर।।२।।
याद नही मै विपति सही जो, धर-धर अमित शरीर।
तुम गुन चिन्तत नशात तथा भय, ज्यो घन चलत समीर।।३।।
कोटवार की अरज यही है, मै दुख सहूँ अधीर।
हरहु वेदनाफन्द 'दौल' की, कतर कर्म जजीर।।४।।

ऐसा मोही क्यों न अधोगति जावै .....

ऐसा मोही क्यो न अधोगति जावै, जाको जिनवानी न सुहावै।।टेक।।
वीतराग से देव छोडकर, कुगुरु कुदेव मनावै।
कल्पलता दयालुता तजि, हिंसा इन्द्रीयनि बावै।।१।।
रचै न गुरु निर्ग्रन्थ भेष, बहु-परिग्रही गुरु भावै।
पर-धन पर-तिय कौ अभिलाषे, अशन अशोधित खावै।।२।।
पर को विभव देख ह्वै विह्वल, पर-दु ख हरख लहावै।
धर्म हेतु इक दाम न खरचै, उपवन लक्ष बहावै।।३।।
ज्यो गृह मे सचै बहु अघ त्यो, वन हू मे उपजावै।
अम्बर त्याग कहाय दिगम्बर, बाघम्बर तन छावै।।४।।
आरम्भ तज शठ यन्त्र मन्त्र करि, जनपै पूज्य मनावै।
बाम धाम तज दासी राखे, बाहिर मढी बनावै।।५।।
नाम धराय जती तपसी मन, विषयनि मे ललचावै।
'दौलत' सो अनन्त भव भटकै, औरन को भटकावै।।६।।

छाँडि दे या बुधि भोरी .....

छाँडि दे या बुधि भोरी, वृथा तन से रति जोरी।
यह पर है न रहै थिर पोषत, सकल कुमल की झोरी।।टेक।।
यासौ ममता कर अनादि तै, बधो कर्म की डोरी।
सहै दु ख जलधि हिलोरी, छाँडि दे या बुधि भोरी।।१।।
यह जड है तू चेतन, यौ ही अपनावत बरजोरी।
सम्यक्दर्शन ज्ञान चरण निधि, ये है सम्पत तोरी।।२।।
सदा विलसौ शिवगोरी, छाँडि दे या बुधि भोरी।
सुखिया भये सदीव जीव जिन, यासौ ममता तोरी।।३।।
'दौल' सीख यह लीजै पीजे, ज्ञान पियूष कटोरी।
मिटै परवाह कठोरी, छाँडि दे या बुधि भोरी।।४।।

मान ले या सिख मोरी .....

मान ले या सिख मोरी, झुकै मत भोगन ओरी ।।टेक।।
भोग भुजगभोग सम जानो, जिन इनसे रति जोरी ।
ते अनन्त भव भीम भरे दुख, परे अधोगति पोरी ।।
बँधे दृढ पातक डोरी, मान ले या सिख मोरी ।।१।।
इनको त्याग विरागी जे जन, भये ज्ञानवृषधोरी ।
तिन सुख लह्यो अचल अविनाशी, भवफासी दई तोरी ।।
रमै आतम रस बोरी, मान ले या सिख मोरी ।।२।।
भोगन की अभिलाष हरन को, त्रिजग सम्पदा थोरी ।
यातैं ज्ञानानन्द 'दौल' अब, पियो पियूष कटोरी ।।
मिटै भवव्याधि कठोरी, मान ले या सिख मोरी ।।३।।

तोहि समझायो सौ-सौ बार .....

तोहि समझायो सौ-सौ बार, जिया तोहि ।
देख सुगुरु की पर-हित मे रति, हित उपदेश सुनायो ।।टेक।।
विषय भुजग सेय सुख पायो, पुनि तिनसौ लिपटायो ।
स्वपद विसार रच्यौ पर-मग मे, मदरत ज्यौ बोरायो ।।१।।
तन धन स्वजन नही है तेरे, नाहक नेह लगायो ।
क्यो न तजै भ्रम चाख समामृत, जो नित सत सुहायो ।।२।।
अबहूँ समझ कठिन यह नरभव, जिन वृष बिना गमायो ।
ते विलखै मनि डार उदधि मे, 'दौलत' को पछतायो ।।३।।

आपा नहिं जाना तूने .....

आपा नहिं जाना तूने, कैसा ज्ञानधारी रे ।।टेक।।
देहाश्रित करि क्रिया आपको, मानत शिवमगचारी रे ।
निज निवेद बिन घोर परीषह, विफल कही जिन सारी रे ।।१।।
शिव चाहै तो द्विविधकर्म तै, कर निज परिणति न्यारी रे ।
'दौलत' जिन निजभाव पिछान्यौ, तिन भवविपति विदारी रे ।।२।।

जब तैं आनन्द जननि दृष्टि .....

जब तै आनन्द जननि दृष्टि परी माई ।।टेक।।
तब तै ससय विमोह भरमता विलाई ।।१।।
मै हूँ चित-चिन्ह भिन्न, पर ते पर जडस्वरूप ।
दोउन की एकता, सु जानी दु खदाई ।।२।।
रागादिक बन्धहेत, बन्धन बहु विपति देत ।
सवर हित जान तासु, हेतु ज्ञानताई ।।३।।
सब सुखमय शिव है तसु, कारन विधि झारन इमि ।
तत्त्व की विचारन, जिनवानि सुधि कराई ।।४।।
विषय-चाह ज्वाल तै, दह्यो अनन्त काल तै ।
सुधाबु स्यात्पदाक गाहते, प्रशान्ति आई ।।५।।
या बिन जगजाल मे, न शरन तीनकाल मे ।
सम्हाल चित भजो सदीव, 'दौल' यह सुहाई ।।६।।

अपनी सुधि भूल आप .....

अपनी सुधि भूल आप, आप दु ख उपायो ।।टेक।।
ज्यौ शुक नभचाल विसरि, नलिनी लटकायो ।।१।।
चेतन अविरुद्ध शुद्ध, दरशबोधमय विशुद्ध ।
तजि जड रस-परस रूप, पुद्‌गल अपनायो ।।२।।
इन्द्रिय सुख-दु ख मे नित्त, पाग राग-रुष मे चित्त ।
दायक भवविपति वृन्द, बन्ध को बढायो ।।३।।
चाह-दाह दाहै, त्यागो न ताह चाहै ।
समतासुधा न गाहै जिन, निकट जो बतायो ।।४।।
मानुषभव सुकुल पाय, जिनवर शासन लहाय ।
'दौल' निजस्वभाव भज, अनादि जो न ध्यायो ।।५।।

जिया तुम चालो अपने देश .....

जिया तुम चालो अपने देश, शिवपुर है थारो शुभ थान।
लख चौरासी मे बहु भटके, लहचो न सुख को लेम।।टेक।।
मिथ्यारूप धरे बहुतेरे, भटके बहुत विदेश।
विषय-कषाय बहुत दुख पाये, भुगते बहुत कलेश।।१।।
भयो तिरच नारकी नर सुर, करि-करि नाना भेष।
'दौलतराम' तोड जग नाता, सुनो सुगुरु उपदेश।।२।।

मेरो मन ऐसी खेलत होरी .....

मेरो मन ऐसी खेलत होरी।।टेक।।
मन मिरदग साजकरि त्यारी, तन के तमूरा वनो री।
सुमति सुरग सरंगी बजाई, ताल दोउ कर जोरी।।१।।
राग पाचौ पद कोरी, मेरो मन ऐसी खेलत होरी।
समकिति रूप नीर भर झारी, करुना केशर घोरी।।२।।
ज्ञानमयी लेकर पिचकारी, दोउ करमाहि सम्होरी।
इन्द्री पाचौं सखि बोरी, मेरो मन ऐसी खेलत होरी।।३।।
चतुरदान को है गुलाल सो, भरि-भरि मूठि चलोरी।
तप मेवा की भरि निज झोरी, यश को अबीर उडोरी।।४।।
रग जिनधाम मचोरी, मेरो मन ऐसी खेलत होरी।
'दौलत' शिशु खेले अस होरी, भव-भव दुख टलोरी।।५।।
शरना ले इक श्रीजिन को री, जग मे लाज हो तोरी।
मिलै फगुआ शिव होरी, मेरो मन ऐसी खेलत होरी।।६।।

शिवमग दरसावन रावरो दरस .....

शिवमग दरसावन रावरो दरस।।टेंक।।
परपद चाह दाह गद नाशन, तुम वच भेषज पान सरस ।।१।।
गुण चितवत निज अनुभव प्रगटै, विघटै विधि ठग दुविध तरस ।।२।।
'दौल' अवाची सम्पति साची, पाय रहै थिर राच सरस ।।३।।

धन-धन साधर्मीजन मिलन की घरी .....

धन-धन साधर्मीजन मिलन की घरी, बरसत भ्रमताप हरन ज्ञानघनझरी।।
जाके बिन पाये भवविपति अति भरी निजपरहितअहित की कछू न सुधि परी।
जाके परभाव चित्त सुथिरताकरी, सशय-भ्रम-मोह की सुवासना टरी।।
मिथ्या गुरु-देव सेव टेव परिहरी वीतराग देव सुगुरु सेव उरधरी।
चारो अनुयोग सुहितदेश दिठपरी शिवमग के लाह की सुचाह विस्तरी।।
सम्यक तरु धरनि येह करन करिहरी भवजल को तरनि समर भुजग विषज।
पूरवभव या प्रसाद रमनि शिववरी सेवो अब 'दौल' याहि वात यह खरी।।

शिवपुर की डगर समरससौं भरी .....

शिवपुर की डगर समरससौ भरी, सो विषय विरसरचि चिरबिसरी।।
सम्यक् दरश-बोध-व्रतन त्रय भव दुखदावानल मेघझरी।।
ताहि न पाय तपाय देह बहु, जनम-मरन करि विपति भरी।
कालपाय जिनधुनि सुनि मै जन, ताहि लहूँ सोई धन्य घरी।।
ते जन धनि या माहि चरत नित, तिन कीरति सुरपति उचरी।
विषयचाह भवराह त्याग अब, 'दौल' हरी रजरहसि अरी।।

हो तुम शठ अविचारी जियरा .....

हो तुम शठ अविचारी जियरा, जिनवृष पाय वृथा खोवत हो।।
पी अनादि गदमोह स्वगुननिधि, भूल अचेत नीद सोवत हो।।
स्वहित सीखवच सुगुरु पुकारत, क्यो न खोल उर-दृग जोवत हो।
ज्ञान विसार विषयविष चाखत, सुरतरु जारि कनक बोवत हो।।
स्वारथ सगे सकल जनकारन, क्यो निज पाप भार ढोवत हो।
नरभव सुकुल जैनवृष नौका, लहि निज क्यो भवजल डोवत हो।।
पुण्य-पाप फल वात-व्याधिवश, छिन मे हँसत छिनक रोवत हो।
सयम सलिल लेय निज उर के, कलिमल क्यो न 'दौल' धोवत हो।।

देखो जी आदीश्वर स्वामी .....

देखो जी आदीश्वर स्वामी, कैसा ध्यान लगाया है।
कर ऊपर कर सुभग विराजे, आसन थिर ठहराया है।।टेक।।
जगत-विभूति भूति सम तजिकर, निजानन्द पद ध्याया है।
सुरभित श्वासा आशावासा, नासादृष्टि सुहाया है।।१।।
कञ्चन वरन चलै मन रञ्च न, सुरगिर ज्यो थिर थाया है।
जास पास अहि-मोर मृगी-हरि, जाति विरोध नसाया है।।२।।
शुभ उपयोग हुताशन मे जिन, वसुविधि समिध जलाया है।
स्यामलि अलिकार्वाल सार सोहै, मानो धुआँ उडाया है।।३।।
जीवन-मरन-अलाभ-लाभ जिन, तृन -मनि को सम भाया है।
सुर-नर-नाग नमहि पद जाकै, 'दौल' तास जस गाया है।।४।।

सुन जिन बैन, श्रवन सुख पायो .....

सुन जिन बैन, श्रवन सुख पायो ।।टेक।।
नस्यौ तत्त्व दुर अभिनिवेष-तम, स्याद उजास कहायो।
चिर विसरचो लहचो आतम रैन श्रवन सुख पायो।।१।।
दहचो अनादि असजम दवतै, लहि व्रत सुधा सिरायौ।
धीर धरी मन जीतन मैन श्रवन सुख पायौ।।२।।
भरो विभाव अभाव सकल अब, सकल रूप चित लायौ।
'दौल' लहचो अब अविचल जैन, श्रवन सुख पायो।।३।।

हे जिन मेरी ऐसी बुधि कीजै .....

हे जिन मेरी ऐसी बुधि कीजै।।टेक।।
राग-द्वेष दावानाल ते बचि, समता रस मे भीजै।
पर को त्याग अपनपो निज मे, लाग न कबहूँ छीजै।।१।।
कर्म-कर्म फल माहि न राचै, ज्ञान सुधारस पीजै।
मुझ कारज के तुम कारन वर, अरज 'दौल' की लीजै।।२।।

ज्ञानी ऐसी होली मचाई .....

ज्ञानी ऐसी होली मचाई।।टेक।।

राग कियो विपरीत विपन घर, कुमति कुसौति सुहाई।
धार दिगम्बर कीन्ह सु संवर, निज-पर भेद लखाई।।
घात विषयिन की बचाई, ज्ञानी ऐसी होली मचाई।।१।।
कुमति सखा भजि ध्यानभेद सम, तन मे तान उडाई।
कुम्भक ताल मृदग सौ, पूरक रेचक बीन बजाई।।
लगन अनुभव सो लगाई, ज्ञानी ऐसी होली मचाई।।२।।
कर्म बलीता रूपनाम अरि, वेद सुइन्द्रि गनाई।
दे तप अग्नि भस्म करि तिनको, धूल अघाति उडाई।।
भव्य शिवपन्थ बताई, ज्ञानी ऐसी होली मचाई।।३।।
ज्ञान को फाग भागवश आवै, लाख करौ चतुराई।
सो गुरु दीनदयाल कृपाकरि, 'दौलत' तोहि बताई।।
नही चित्त से बिसराई, ज्ञानी ऐसी होली मचाई।।४।।

हे जिन ! तेरे मैं शरणै आया .....

हे जिन ! तेरे मै शरणै आया।।टेक।।

तुम हो परमदयाल जगत गुरु, मै भव-भव दुःख पाया।।१।।
मोह महादुठ घेर रह्यो मोहि, भव कानन भटकाया।
नित निज ज्ञान- चरन निधि विसर्यो, तनधन कर अपनाया।।२।।
निजानन्द अनुभव पियूष तज, विषय हलाहल खाया।
मेरी भूल भूल दुःखदाई, निमित मोह-विधि पाया।।३।।
सो दुठ होत शिथिल तुमरे ढिग, और न हेत लखाया।
शिवस्वरूप शिवमगदर्शक तुम, सुयश मुनीगन गाया।।४।।
तुम हो सहज निमित जगहित के, मो उर निश्चय भाया।
भिन्न होहु विधि तै सो कीजे, 'दौल' तुम्हे सिर नाया।।५।।

भाखूँ हित तेरा, सुन हो मन मेरा.....

भाखूँ हित तेरा, सुन हो मन मेरा।।टेक।।
नर नरकादिक चारौ गति मे, भटक्यो तू अधिकानी।
पर-परणति मै प्रीति करी, निज परणति नाहि पिछानी।।
सहै दुख क्यो न घनेरा, भाखूँ हित तेरा।।१।।
कुगुरु कुदेव कुपन्थ पक फसि, तै बहु खेद लहायो।
शिवसुख दैन जैन जगदीपक, सो तै कबहु न पायो।।
मिटचो न अज्ञान अन्धेरा, भाखूँ हित तेरा।।२।।
दर्शन-दर्शन ज्ञान चरण तेरी, सो ठगन ठगी है।
पाचो इन्द्रिय के विषयन मे, तेरी बुद्धि लगी है।।
भया इनका तू चेरा, भाखूँ हित तेरा।।३।।
तू जगजाल विषै बहु उरझ्यौ, अब कर ले सुरझेरा।
'दौलत' नेमिचरन पंकज का, हो तू भ्रमर सबेरा।।
नशै ज्यो दुख भवकेरा, भाखूँ हित तेरा।।४।।

हे जिन तेरो सुजस उजागर .....

हे जिन तेरो सुजस उजागर, गावत है मुनिजन ज्ञानी।।टेक।।
दुर्जय मोह महाभट जाने, निजवश कीने जगप्रानी।
सो तुम ध्यानकृपान पानिगहि, ततछिन ताकी थिति भानी।।१।।
सुप्त अनादि अविद्या निद्रा, जिन जन निजसुधि विसरानी।
ह्वै सचेत तिन निज-निधि पाई, श्रवन सुनी जब तुम बानी।।२।।
मगलमय तू जग मे उत्तम, तुही शरन शिवमग दानी।
तुम पद-सेवा परम औषध, जन्म-जरा-मृत गद हानी।।३।।
तुमरे पञ्चकल्यानक माही, त्रिभुवन मोददशा ठानी।
विष्णु विदम्बर, जिष्णु, दिगम्बर, बुधशिव कहा ध्यावत ध्यानी।।४।।
सर्व दर्वगुनपरजय परनति, तुम सुबोध मे नहि छानी।
तातै 'दौल' दास उर आशा, प्रगट करो निजरससानी।।५।।

हे नर! भ्रमनींद क्यों न छांड़त .....

हे नर! भ्रमनीद क्यो न, छाडत दुखदाई।
सेवत चिरकाल सोंज, आपनी ठगाई।।टेक।।
मूरख अघ कर्म कहा, भेदै नहिं मर्म लहा।
लागै दुख-ज्वाल की न, देह कै तताई।।१।।
जम के रव बाजते, सुभैरव अति गाजते।
अनेक प्रान त्यागते, सुनै कहा न भाई।।२।।
पर को अपनाय आप, रूप को भुलाय हाय।
करन-विषय दारु 'जार, चाह दौ बढाई।।३।।
अब सुन जिनबान, राग-द्वेष को जघान।
मोक्षरूप निज पिछान 'दौल', भज विरागताई।।४।।

चिदराय गुन सुनो मुनो प्रशस्त गुरु गिरा.....

चिदराय गुन सुनो मुनो, प्रशस्त गुरु गिरा।
समस्त तज विभाव, हो स्वकीय मे थिरा।।टेक।।
निज भाव के लखाव बिन, भवाब्धि मे परा।
जामन मरन जरा त्रिदोष, अग्नि मे जरा।।१।।
फिर सादि औ अनादि दो, निगोद मे परा।
तह अक के असख्य भाग, ज्ञान ऊबरा।।२।।
तहा भव अन्तर मुहूर्त के, कहे गनेश्वरा।
छ्यासठ सहस त्रिशत छतीस, जन्म धर मरा।।३।।
यौ वशि अनन्तकाल फिर तहातै नीसरा।
भूजल अनिल अनल प्रतेक, तरु मे तन धरा।।४।।
अनुघरीसु कुन्थु, काणमच्छ अवतरा।
जल थल खचर कुनर नरक, असुर उपज मरा।।५।।
अब के सुथल सुकुल सुसग, बोध लहि खरा।
'दौलत' त्रिरत्न साध-लाध, पद अनुत्तरा।।६।।

धनि मुनि जिन यह भाव पिछाना.....

धनि मुनि जिन यह भाव पिछाना।।टेक।।
तन व्यय वांछित प्रापति मानो, पुण्य उदय दुख जाना।।१।।
एक विहारी सकल ईशता, त्याग महोत्सव माना।
सब सुख परिहार सार सुख, जानि रागमय भाना।।२।।
चित स्वभाव को चिन्त्य प्रान निज, विमल ज्ञान-दृग साना।
'दौल' कौन सुख जान लह्यो तिन, करो शांतिरस पाना।।३।।

चित चिन्तकैं चिदेश कब .....

चित चिन्तकै चिदेशकब, अशेष पर वमूं।
दुखदा अपार विधि, दुचार-की चमू दमूं।।टेक।।
तजि पुण्य-पाप थाप आप, आप मे रमूं।
कब राग-आग शर्म-बाग, दागिनी शमूं।।१।।
दृग-ज्ञान भानतै मिथ्या, अज्ञानतम दमूं।
कब सर्व जीव प्राणिभूत, सत्त्वसौं छमूं।।२।।
जल मल्ल लिप्त-कल सुकल, सुबल्ल परिनमूं।
दल के त्रिशल्ल मल्ल कब, अटल्लपद पमूं।।३।।
कब ध्याय अज अमर को, फिर न भवविपिन भमूं।
जिन पूर कौल 'दौल' को यह, हेतु हौं नमूं।।४।।

जिन राग-दोष त्यागा वह सतगुरु .....

जिन राग-दोष त्यागा, वह सतगुरु हमारा।।टेक।।
तज राजऋद्ध तृणवत, निज काज सम्भारा।।१।।
रहता है वह वनखण्ड मे, धरि ध्यान कुठारा।
जिन मोह महा तरु को, जडमूल उखारा।।२।।
सर्वांग तज परिग्रह, दिक् अम्बर धारा।
अनन्त ज्ञान गुन समुद्र, चारित्र भण्डारा।।३।।
शुक्लाग्नि को प्रजाल के, बसु कानन जारा।
ऐसे गुरु को 'दौल' है, नमोऽस्तु हमारा।।४।।

जिनवर आनन-भान निहारत .....

जिनवर आनन-भान निहारत, भ्रमतमघान नसाया है।।टेक।।
वचन-किरन प्रसरन तै भविजन, मनसरोज सरसाया है।
भवदु खकारन सुख विसतारन, कुपथ सुपथ दरसाया है।।१।।
बिनसाई कज जलसरसाई, निसिचर समर दुराया है।
तस्कर प्रबल कषाय पलाये, जिन धन-बोध चुराया है।।२।।
लखियत उडुन कुभाव कहूँ अब, मोह उलूक लजाया है।
हस कोक को शोक नश्यो निज, परनति चकवी पाया है।।३।।
कर्मबधकज कोष बधे चिर, भव अलि गुञ्जन पाया है।
'दौल' उजास निजातम अनुभव, उर जग अन्तर छाया है।।४।।

चेतन अब धरि सहज समाधि .....

चेतन अब धरि सहज समाधि, जातै यह विनशै भवव्याधि ।।टेक।।
मोह ठगौरी खायके रे, पर को आपा जान ।
भूल निजातक ऋद्धि को तैं, पाये दु.ख महान ।।१।।
सादि अनादि निगोद दोय मे, परयो कर्मवश जाय ।
श्वास उसास मझार तहा भव, मरन अठारह थाय ।।२।।
काल अनन्त तहां यौ बीत्यो, जब भइ मन्द कषाय ।
भूजल अनिल अनल पुन तरु ह्वै, काल असख्य गमाय ।।३।।
क्रम-क्रम निकसि कठिन तैं पाई, शंखादिक परजाय ।
जल थल खरच होय अघ ठाने, तस वस श्वभ्र लहाय ।।४।।
तित सागर लो बहु दु ख पाये, निकस कबहुँ नर थाय ।
गर्भ जन्म शिशु तरुण वृद्ध दु ख, सहे कहे नहिं जाय ।।५।।
कबहूँ किंचित पुण्यपाक तैं, चउविधि देव कहाय ।
विषय आश मन त्रास लही तह, मरन समय बिललाय ।।६।।
यो अपार ससार जलधि मे, भ्रम्यो अनन्ते काल ।
'दौलत' अब निजभाव नाव चढि, लै भवाब्धि की पाल ।।७।।

जय-जय जग भरम-तिमिर हरन.....

जय-जय जग भरम-तिमिर हरन जिन धुनी।।टेक।।
या बिन समुझे अजौ न सोज निज मुनी।
यह लखि हम निज-पर अविवेकता लुनी।।१।।
जाको गनराज अग-पूर्वमय चुनी।
सोई कही कुन्दकुन्द प्रमुख बहु मुनी।।२।।
जे चर जड भये पीय मोह बारुनी।
तत्त्व पाय चेते जिन थिर सुचित सुनी।।३।।
कर्ममल पखारने हि विमल सुर धुनी।
तब विलम्ब अम्ब करो 'दौल' उर पुनी।।४।।

घड़ि-घड़ि पल-पल छिन-छिन निश-दिन.....

घडि-घडि पल-पल छिन-छिन निश-दिन, प्रभुजी का सुमिरन कर ले रे।।टेक।
प्रभु सुमिरे तै पाप कटत है, जनम-मरन दुख हर ले रे।।१।।
मन-वच-काय लगाय चरन चित, ज्ञान हिये बिच धर ले रे।।२।।
'दौलतराम' धर्म नौका चढि, भवसागर तैं तर ले रे।।३।।

निरखत जिनचन्द्र-बदन.....

निरखत जिनचन्द्र-बदन, स्वपद सुरुचि आई।।टेक।।
प्रगटी निज आन की, पिछान ज्ञान भान की।
कला उदोत होत काम जामिनी पलाई।।१।।
सास्वत आनन्द स्वाद, पायो बिनस्यो विषाद।
आन मे अनिष्ट-इष्ट, कल्पना नसाई।।२।।
साधी निज साध की, समाधि मोह-व्याधि की।
उपाधि को विराधि कै, अराधना सुहाई।।३।।
धन दिन छिन आज सुगुन, चिन्तै जिनराज अबै।
सुधरे सब काज 'दौल', अचल सिद्धि पाई।।४।।

जीव तू अनादिही तैं, भूल्यो .....

जीव तू अनादिही तै, भूल्यो शिवगैलवा।।टेक।।
मोहमदवार पियो, स्वपद विसार दियो।।१।।
पर अपनाय लियौ, इन्द्रि सुख मे रचियौ।
भव तै न भियौ, न तजियौ मनमैलवा।।२।।
मिथ्याज्ञान आचरन, धरि कर कुमरन।
तीन लोक की धरन, तामे कियो है फिरन।।३।।
पायो न शरन, न लहायौ सुख शैलवा।
अब नरभव पायो, सुथल सुकुल आयौ।।४।।
जिन उपदेश भायो, 'दौल' झट छिटकायौ।
पर-परणति दु खदायिनी चुरैलवा ।।५।।

मैं आयौ, जिन शरन तिहारी .....

मै आयो, जिन शरन तिहारी।।टेक।।
मै चिर दु खी विभाव भाव तै, स्वाभाविक निधि बिसारी।।१।।
रूप निहार धार तुम गुन सुन, बैन होत भवि शिवमगचारी।
यो मम कारज के कारन तुम, तुमरी सेव एक उर धारी।।२।।
मिल्यौ अनन्त जन्म तै अवसर, अब बिनऊँ हे भव सरतारी।
परम इष्ट अनिष्ट कल्पना, 'दौल' कहै झट मेट हमारी।।३।।

तू काहे को करत, रति तन में .....

तू काहे को करत, रति तन मे, यह अहित मूल जिम कारासदन मे ।।
चरमपिहित पलरुधिर लिप्त मलद्वार स्त्रवै छिन-छिन मे ।
आयु-निगड फसि विपति भरै सो, क्यो न चितारत मन मे ।।
सुचरन लाग त्याग अब याको, जो न भ्रमै भव-वन मे ।
'दौल' देह सौ नेह देह को, हेतु कहचो ग्रन्थन मे ।।

सक्षिप्त परिचय

कविवर भागचन्द

(विक्रम सवत् १९०० के लगभग)

१९ वी शताब्दि के महान अध्यात्म कवि विद्वान भागचन्दजी ईसागढ (ग्वालियर) के रहनेवाले थे। आपका सस्कृत और हिन्दी भाषा पर समान अधिकार था।

अद्यावधि आपकी ६ रचनाये प्रकाश मे आई है, जिसमे उपदेश सिद्धान्त रत्नमाला (भाषा), प्रमाण परीक्षा (भाषा), नेमिनाथ पुराण (भाषा) अमितगति श्रावकाचार (भाषा) के नाम उल्लेखनीय है। ये सभी कृतियाँ वि स १९०७ से १९१३ तक लिखी गई है, जिससे ज्ञात होता है कि वह उनके साहित्यिक जीवन का स्वर्णिम काल था।

आत्मचिंतक और उच्च विचारक के साथ-साथ कवि हृदय का सुन्दर मेल कविवर भागचदजी मे देखने को मिलता है। अभी तक आपके ८६ पद उपलब्ध हो चुके है, जो सभी अपनी मौलिक विशेषता लिये हुये है।

अनुभूति की दशा का वर्णन "जब निज आतम अनुभव आवै" — इस पद मे उन्होने अलौकिक रीति से किया है। जिससे ऐसा प्रतीत होता है कि मानो अनुभूति से बाहर निकलकर ही उन्होने इसकी रचना की हो इसी पद के अन्त मे वे लिखते है —

"भागचन्द ऐसे अनुभव को हाथ जोरि शिर नावै"

इसीप्रकार जिनवाणी से सबधित "साँची तो गगा यह वीतराग वाणी", "महिमा है अगम जिनागम की" आदि भजनो से समाज चिरपरिचित है।

जब निज आतम अनुभव आवै.....

जब निज आतम अनुभव आवै, और कछु ना सुहावे।।टेक।।
रस नीरस हो जात ततच्छिन, अक्ष विषय नही भावै।।१।।
गोष्ठी कथा कुतूहल विघटै, पुद्गल प्रीति नसावै।
राग दोष युग चपल पक्ष जुत, मन पक्षी मर जावै।।२।।
ज्ञानानन्द सुधारस उमगै, घट अन्तर न समावै।
'भागचन्द' ऐसे अनुभव को, हाथ जोरि सिर नावै।।३।।

श्रीमुनि राजत समता संग.....

श्रीमुनि राजत समता सङ्ग, कायोत्सर्ग समायत अग।।टेक।।
करतै नहिं कछु कारज तातै, आलम्बित भुज कीन अभग।
गमन काज कछु हूं नहिं तातै, गति तजि छाके निजरस रग।।१।।
लोचनतै लखिवौ कछु नाही, तातै नासादृग अचलग।
सुनिवे जोग रहचो कछु नाही, तातै प्राप्त इकन्त सुचग।।२।।
तह मध्यान्ह माहिं निज ऊपर, आयो उग्र प्रताप पतग।
कैधौं ज्ञान पवनबल प्रज्वलित, ध्यानानल सौ उछलि फुलिग।।३।।
चित्त निराकुल अतुल उठत जह, परमानन्द पियूष तरग।
'भागचन्द' ऐसे श्रीगुरुपद, वन्दत मिलत स्वपद उत्तग।।४।।

जे सहज होरी के खिलारी.....

जे सहज होरी के खिलारी, तिन जीवन की बलिहारी।।टेक।।
शान्तभाव कुकुम रस चन्दन, भर ममता पिचकारी।
उडत गुलाल निर्जरा सवर, अंबर पहरै भारी।।१।।
सम्यक्दर्शनादि सग लेकै, परम सखा सुखकारी।
भीज रहे निज ध्यान रग मे, सुमति सखी प्रियनारी।।२।।
कर स्नान ज्ञान जल मे पुनि, विमल भये शिवचारी।
'भागचन्द' तिन प्रति नित वदन. भावसमेत हमारी।।३।।

3/जब निज आतम अनुभव आवै .....

जब निज आतम अनुभव आवै, और कछु न सुहावै।।टेक।।
जिन आज्ञा अनुसार प्रथम ही, तत्त्व प्रतीति अनावै।
वरनादिक-रागादिक तै, निज चिन्ह भिन्न कर ध्यावै।।१।।
मतिज्ञान फरसादि विषय तजि, आतम सन्मुख धावै।
नय-प्रमाण-निक्षेप सकल, श्रुतज्ञान विकल्प नसावै।।२।।
'चिदह शुद्धोऽह' इत्यादिक, आप माहि बुध आवै।
तन पै वज्रपात गिरत हूँ, नैकु न चित्त डुलावै।।३।।
स्वसवेद आनन्द बढै अति, वचन कह्यो नहि जावै।
देखन-जानन-चरन तीन बिच, इक स्वरूप ठहरावै।।४।।
चित्कर्ता चित्कर्म भावचित्,परनति क्रिया कहावै।
साधक-साध्य, ध्यान-ध्येयादिक, भेद कछु न दिखावै।।५।।
आत्मप्रदेश अदृष्ट तदपि, रस स्वाद प्रगट दरसावै।
ज्यौ मिश्री दीषत न अन्ध को, सपरस मिष्ट चखावै।।६।।
जिन जीवन के ससृत, पारावार पार निकटावै।
'भागचन्द' ते सार अमोलक, परम रतन नर पावै।।७।।

सुमर सदा मन आतमराम .....

सुमर सदा मन आतमराम।।टेक।।
स्वजन कुटुम्बी जन तू पोखै, तिनको होय सदैव गुलाम।
सो तो है स्वारथ के साथी, अन्तकाल नहिं आवत काम।।१।।
जिमि मरीचिका मे मृग भटके, होवे जब ग्रीषम अति घाम।
तैसे तू भवमाही भटके, धरत न इक छिन हू विसराम।।२।।
करत न ग्लानी अब भोगन मे, धरत न वीतराग परिणाम।
फिरि किमि नरकमाहि दु ख सहसी, जहा नही सुख आठौ याम।।३।।
तातै आकुलता अब तजि के, थिर ह्वै बैठो अपने धाम।
'भागचन्द' बसि ज्ञाननगर मे, तजि रागादिक ठग सब ग्राम।।४।।

सन्त निरन्तर चिन्तत ऐसे.....

सन्त निरन्तर चिन्तत ऐसे, आतमरूप अबाधित ज्ञानी।।टेक।।
रागादिक तो देहाश्रित है, इनते होत न मेरी हानी।
दहन-दहत ज्यो दहन न तदगत, गगन दहनता की विधि ठानी।।१।।
वरणादिक विकार पुद्गल के, इनमे नहि चैतन्य निशानी।
यद्यपि एक क्षेत्र अवगाही, यद्यपि लक्षण भिन्न पिछानी।।२।।
मै सर्वाङ्गपूर्ण ज्ञायक रस, लवण खिल्लवत लीला ठानी।
मिलौ निराकुल स्वाद न यावत, तावत पर-परनति हितमानी।।३।।
'भागचन्द' निरद्वन्द निरामय, मूरति निश्चय सिद्धसमानी।
नित अकलक अबक शक बिन, निर्मल पक बिना जिमि पानी।।४।।

यही इक धर्ममूल है मीता !.....

यही इक धर्ममूल है मीता ! निज समकित सार सहीता।।टेक।
समकित सहित नरकपद वासा, खासा बुधजन गीता।
तहते निकसि होय तीर्थकर, सुरगन जजत सुप्रीता।।१।।
स्वर्गवास हू नीको नाही, बिन समकित अविनीता।
तहते चय एकेन्द्री उपजत, भ्रमत सदा भयभीता।।२।।
खेत बहुत जोते हु बीज बिन, रहत धान्य सो रीता।
सिद्धि न लहत कोटि तप हू ते, वृथा कलेश सहीता।।३।।
समकित अतुल अखण्ड, सुधारस जिन पुरुषन ने पीता।
'भागचन्द' ते अजर-अमर भये, तिनही ने जग जीता।।४।।

प्रभु थांको लखि मम चित हरषायो.....

प्रभु थाको लखि मम चित हरषायो।।टेक।।
सुन्दर चिन्तारतन अमोलक, रकपुरुष जिमि पायो ।।१।।
निर्मल रूप भयो अब मेरो, भक्ति नदी जल न्हायो ।।२।।
'भागचन्द' अब मम करतल मे, अविचल शिवथल आयो ।।३।।

सांची तो गंगा यह वीतरागवाणी.....

साची तो गगा यह वीतरागवाणी।
अविच्छिन्न धारा निजधर्म की कहानी।।टेक।।
जामे अति ही विमल अगाध ज्ञान पानी।
जहाँ नही सशयादि पङ्क की निशानी।।१।।
सप्तभङ्ग जहँ तरग उछलत सुखदानी।
सन्तचित मरालवृन्द रमै नित्य ज्ञानी।।२।।
जाके अवगाहन तै शुद्ध होय प्रानी।
'भागचन्द' निहचै घट माहिं या प्रमानी।।३।।

परणति सब जीवन की, तीन भांति.....

परणति सब जीवन की, तीन भाति वरनी।
एक पुण्य एक पाप, एक राग हरनी।।टेक।।
तामे शुभ अशुभ बन्ध, दोय करै कर्म बन्ध।
वीतराग परणति ही, भव समुद्र तरनी।।१।।
जावत शुद्धोपयोग, पावत नाही मनोग।
तावत ही करन जोग, कही पुण्य करनी।।२।।
त्याग शुभ्र क्रिया-कलाप, करो मत कदाचि पाप।
शुभ मे न मगन होय, शुद्धता विसरनी।।३।।
ऊँच-ऊँच दशा धारि, चित प्रमाद को विडारि।
ऊँचली दशा तै मति गिरो, अधो धरनी।।४।।
'भागचन्द' या प्रकार, जीव लहै सुख अपार।
याके निरधारि, स्यादवाद की उचरनी।।५।।

प्रभु तुम मूरत दृग सो

प्रभु तुम मूरत दृग सो निरखै, हरखै मोरो जीयरा।।टेक।।
भुजत कषायानल पुनि उपजै, ज्ञान सुधारस सीयरा।।१।।
वीतरागता प्रगट होत है, शिवथल दीसै नीयरा।।२।।
'भागचन्द' तुम चरन-कमल मे, बसत सतजन हीयरा।।३।।

महिमा है अगम जिनागम की.....

महिमा है अगम जिनागम की ।।टेक।।
जाहि सुनत जड भिन्न पिछानी, हम चिन्मूरति आतम की ।।१।।
रागादिक दुखकारन जाने, दीनी त्याग बुद्धि भ्रम की ।
ज्ञान ज्योति जागी घट अन्तर, रुचि बाढी पुनि शमदम की ।।२।।
कर्मबन्ध की भई निरजरा, कारण परम्पराक्रम की ।
'भागचन्द' शिवलालच लागो, पहुँच नही है जहाँ यम की ।।३।।

जान के सुज्ञानी जैनवानी की सरधा लाइये.....

जान के सुज्ञानी जैनवानी की सरधा लाइये ।।टेक।।
जा बिन काल अनन्ते भ्रमता, सुख न मिलै कहूँ प्रानी ।
स्व-पर विवेक अखण्ड मिलत है, जाही के सरधानी ।।१।।
अखिल प्रमान सिद्ध अविरुद्धत, स्यात्पद शुद्ध निशानी ।
'भागचन्द' सत्यारथ जानी, परम धरम रजधानी ।।२।।

तुम गुणमनि निधि हौ अरहन्त.....

तुम गुणमनि निधि हौ अरहन्त ।।टेक।।
पार न पावत तुमरो गनपति, चार ज्ञान धरि सन्त ।
ज्ञानकोष सब दोष रहित, तुम अलख अमूर्ति अचिन्त ।।१।।
हरिगन अरचत तुम पदवारिज, परमेष्ठी भगवन्त ।
'भागचन्द' के घट-मन्दिर मे, बसहु सदा जयवन्त ।।२।।

म्हाकैं जिनमूरति हृदय बसी-बसी.....

म्हाकै जिनमूरति हृदय बसी-बसी ।।टेक।।
यद्यपि करुना रसमय तद्यपि, मोह शत्रु हनि असी-असी ।
भामण्डल ताको अति निर्मल, नि कलक जिमि ससी-ससी ।।१।।
लखत होत अति शीतल मति जिमि, सुधा जलधि मे धसी-धसी ।
'भागचन्द' जिस ध्यान मन्त्र सो, ममता नागिन नसी-नसी ।।२।।

धन्य-धन्य है घड़ी आज की ...

धन्य-धन्य है घडी आज की, जिन-धुनि श्रवन परी।
तत्त्व-प्रतीति भई अब मेरे, मिथ्यादृष्टि टरी।।टेक।।
जड तैं भिन्न लखी चिन्मूरति, चेतन स्वरस भरी।
अहकार ममकार बुद्धि पुनि, पर मे सब परिहरी।।१।।
पाप-पुण्य विधि बन्ध अवस्था, भासी अति दु.ख भरी।
वीतराग-विज्ञान भावमय, परिणति अति विस्तरी।।२।।
चाह-दाह विनसी बरसी पुनि, समता मेघ झरी।
बाढी प्रीति निराकुल पद सो, 'भागचन्द' हमरी।।३।।

शान्ति वरन मुनिराई वर लखि.....

शान्ति वरन मुनिराई वर लखि।।टेक।।
उत्तर गुनगन सहित (मूल गुन सुभग) बरात सुहाई।
तप रथ पै आरूढ अनूपम, धरम सुमगल दाई।।१।।
शिवरमनी को पानि ग्रहण करि, ज्ञानानन्द उपाई।
'भागचन्द' ऐसे बनरा को, हाथ जोर सिर नाई।।२।।

धनि ते प्रानि, जिनके तत्त्वारथ श्रद्धान.....

धनि ते प्रानि, जिनके तत्त्वारथ श्रद्धान।।टेक।।
रहित सप्त भय तत्त्वारथ मे, चित्त न सशय आन।
कर्म-कर्ममल की नहिं इच्छा, पर मे धरत न ग्लानि।।१।।
सकल भाव मे मूढदृष्टि तजि, करत साम्यरस पान।
आतम धर्म बढावै वा, पर-दोष न उचरै वान।।२।।
निज स्वभाव वा, जैन-धर्म मे, निज-पर थिरता दान।
रत्नत्रय महिमा प्रगटावै, प्रीति स्वरूप महान।।३।।
ये वसु अगसहित निर्मल यह, समकित निज गुन जान।
'भागचन्द' शिवमहल चढन को, अचल प्रथम सोपान।।४।।

बरसत ज्ञान सुनीर हो.....

बरसत ज्ञान सुनीर हो, श्री जिनमुख घन सौं।।टेक।।
शीतल होत सुबुद्धि मेदिनी, मिटत भवातप पीर।
स्यादवाद नय दामिनि दमकै, होत निनाद गम्भीर।।१।।
करुना नदी बहै चहुदिशितै, भरी सो दोई तीर।
'भागचन्द' अनुभव मदिर को, तजत न सत सुधीर।।२।।

अहो, यह उपदेश मांही.....

अहो, यह उपदेश माही खूब चित्त लगावना।
होयगा कल्याण तेरा सुख अनत बढावना।।टेक।।
रहित दूषण विश्वभूपण देव जिनपति ध्यावना।
गगनवत निर्मल अचल मुनि तिनहि शीष नमावना।।१।।
धर्म अनुकम्पा-प्रधान, न जीव कोई सतावना।
सप्त तत्व परीक्षा करी हृदय श्रद्धा लावना।।२।।
पुद्गलादिक तै पृथक् चैतन्य ब्रह्म लखावना।
या विधि सम्यक् विमल धारी शकादि पक बहावना।।३।।
रुचे भव्यन को वचन ये शठन को न सुहावना।
चन्द्र लखि जिमि कुमुद विकसे उपल नहि विकसावना।।४।।
'भागचन्द' विभाव तजि, अनुभव स्वभावित भावना।
या शरण, न अन्य जगतारण्य मे कहु पावना।।५।।

अब मैं छाड़्यो पर जंजाल.....

अब मै छाँड्यो पर जजाल।।टेक।।
लग्यो अनादि मोह भ्रम भारी तज्यो ताहि तत्काल।।१।।
आतम रस चाख्यो मै अदभुत, पायो परम दयाल।।२।।
सिद्ध समान शुद्ध गुण राजत, सोमरूप सुविशाल।।३।।

ुल रहित होय इमि निशिदिन.....

ल रहित होय इमि निशिदिन, कीजे तत्त्व विचारा हो।।टेक।।
मै कहा रूप है मेरा, पर है कौन प्रकारा हो।।१।।
भव-कारण बन्ध कहा, को आस्रव रोकनहारा हो।
त कर्म बन्धन काहे सो, थानक कौन हमारा हो।।२।।
अभ्यास किये पावत है, परमानन्द अपारा हो।
ाचन्द' यह सार जान करि, कीजै, बारम्बारा हो।।३।।

जैनी मुनि महाराज.....

जैनी मुनि महाराज, सदा उर मो बसौ।।टेक।।
समस्त परद्रव्यनि माही, अहबुद्धि तजि दीनी।
अनन्त ज्ञानादिक मम पुनि, स्वानुभूति लखि लीनी।।१।।
शुभाशुभ बन्ध उदय मे, हर्ष-विषाद न राखै।
ग्दर्शन ज्ञान चरन तप, भाव सुधारस चाखै।।२।।
की इच्छा तजि निजबल सजि, पूरब कर्म खिरावै।
लकर्म तै भिन्न-अवस्था, सुखमय लखि चित चावै।।३।।
ासीन शुद्धोपयोग रत, सबके दृष्टाज्ञाता।
हेजरूप नगन समताकर, 'भागचन्द' सुखदाता।।४।।

व! तू भ्रमत सदैव अकेला.....

व! तू भ्रमत सदैव अकेला, सग साथी काई नहि तेरा।।टेक।।
ना सुख दुख आपहि भुगतै, होत कुटुम्ब न भेला।
ार्थ भयै सब बिछरि जात है, विघट जात ज्यो मेला।।१।।
ाक कोई न पूरन ह्वै जब, आयु अन्त की बेला।
त पारि बधत नही जैसे, दुद्धर-जल को ठेला।।२।।
धन जीवन विनशि जात ज्यो, इन्द्रजाल का खेला।
ागचन्द' इमि लख करि भाई, हो सतगुरु का चेला।।३।।

श्री जिनवर पद ध्यावैं जे नर.....

श्री जिनवर पद ध्यावै जे नर, श्री जिनवर पद ध्यावै।।टेक।।
तिनकी कर्मकालिमा विनशै, परम ब्रह्म हो जावै।
उपल अग्नि संजोग पाय जिमि, कञ्चन विमल कहावै।।१।।
चन्द्रोज्वल जस तिनको जग मे, पण्डित जन नित गावै।
जैसे कमल सुगन्ध दशो दिश, पवन सहज फैलावै।।२।।
तिनहिं मिलन को मुक्ति सुन्दरी, चित अभिलाषा ल्यावै।
कृषि मे तृण जिम सहज ऊपजै, त्यो स्वर्गादिक पावै।।३।।
जनम-जरा-मृत दावानल ये, भाव सलिल तै बुझावै।
'भागचन्द' कहा ताई वरनै, तिनहिं इन्द्र शिर नावै।।४।।

ऐसे साधु सुगुरु कब मिलि हैं.....

ऐसे साधु सुगुरु कब मिलि है।।टेक।।
आप तरै अरु पर को तारै, निष्प्रेही निर्मल है।
तिलतुष मात्र सग नहि जाकै, ज्ञान-ध्यान-गुण-बल है।।१।।
शात दिगम्बर मुद्रा जिनकी, मन्दिर तुल्य अचल है।
'भागचन्द' तिनको नित चाहै, ज्यो कमलनि को अलि हैं।।२।।

जीवन के परिणामन की यह.....

जीवन के परिणामन की यह, अति विचित्रता देखहु ज्ञानी।।टेक।
नित्य निगोदमाहिं तै कढिकर, नर परजाय पाय सुखदानी।
समकित लहि अन्तर्मुहूर्त मे, केवलज्ञान पाय शिवगामी।।१।।
मुनि एकादश गुणथानक चढि, गिरत तहातै चितभ्रम ठानी।
भ्रमत अर्धपुद्गल प्रावर्तन, किंचित् ऊन काल परमानी।।२।।
निज परिणामन की सभाल मे, तातै गाफिल मत ह्वै प्रानी।
बध-मोक्ष परिणामन ही सो, कहत सदा श्रीजिनवर वाणी।।३।।
सकल उपाधि निमित भावनसो, भिन्न सुनिज परणति को छानी।
ताहि जानि रुचि ठानि होहु थिर, 'भागचद' यह सीख सयानी।।४।।

धन-धन जैनी साधु अबाधित.....

धन-धन जैनी साधु अबाधित, तत्त्वज्ञान विलासी हो।।टेक।।
दर्शन-बोधमयी निजमूरति, जिनको अपनी भासी हो।
त्यागी अन्य समस्त वस्तु मे, अहबुद्धि दु खदासी हो।।१।।
जिन अशुभोपयोग की परणति, सत्तासहित विनाशी हो।
होय कदाच शुभोपयोग तो, तह भी रहत उदासी हो।।२।।
छेदत जे अनादि दु खदायक, दुविधि बन्ध की फॉसी हो।
मोह-क्षोभ-रहित जिन परणति, विमल मयक कला-सी हो।।३।।
विषय-चाह-दव-दाह खुजावन, साम्य सुधारस-रासी हो।
'भागचन्द' ज्ञानानन्दी पद, साधत सदा हुलासी हो।।४।।

ज्ञानी मुनि छै ऐसे स्वामी गुनरास.....

ज्ञानी मुनि छै ऐसे स्वामी गुनरास।।टेक।।
जिनके शैलनगर मन्दिर पुनि, गिरिकन्दर सुखवास।
नि कलक परजज शिला पुनि, दीप मृगाक उजास।।१।।
मृग किंकर करुना वनिता पुनि, शील सलिल तप ग्रास।
'भागचन्द' ते है गुरु हमरे, तिनही के हम दास।।२।।

ज्ञानी जीवन के भय होय न या परकार.....

ज्ञानी जीवन के भय होय न या परकार।।टेक।।
इहभव परभव अन्य न मेरो, ज्ञानलोक मम सार।
मै वेदक इक ज्ञानभाव को, नहिं पर वेदनहार।।१।।
निज सुभाव को नाश न तातै, चहिये नहिं रखवार।
परमगुप्त निजरूप सहज ही, पर का तहँ न सचार।।२।।
चित स्वभाव निज प्रान तास को, कोई नही हरतार।
मै चितपिड अखड न तातै, अकस्मात भयभार।।३।।
होय नि शक स्वरूप अनुभव, जिनके यह निरधार।
मै सो मै, पर सो मै नाही, 'भाग

जे दिन तुम विवेक बिन खोये.....

जे दिन तुम विवेक बिन खोये ।।टेक।।

मोह वारुणी पी अनादि तै, पर-पद मे चिर सोये ।
सुखकरण्ड चितपिड आपपद, गुन अनन्त नहि जोये ।।१।।
होय बहिर्मुख ठानि राग-रुष, कर्मबीज बहु बोये ।
तसु फल सुख-दु ख सामग्री लखि, चित मे हरषे रोये ।।२।।
धवल ध्यान शुचि सलिलपूर ते, आस्रव मल नहि धोये ।
परद्रव्यनि की चाह न रोकी, विविध परिग्रह ढोये ।।३।।
अब निज मे निज जान नियत तहा, निज परिणाम समोये ।
यह शिवमारग समरसु सागर, 'भागचन्द' हित तो ये ।।४।।

चेतन निजभ्रम तैं भ्रमत रहै.....

चेतन निजभ्रम तै भ्रमत रहै ।।टेक।।

आप अभग तथापि अग के, सग महा दु ख पुन्ज बहै ।
लोहपिड सगति पावक ज्यो, दुर्धर घन की चोट सहै ।।१।।
नामकर्म के उदय प्राप्त नर, नरकादिक परजाय धरै ।
तामे मान अपनपो विरथा, जन्म जरा मृतु पाय डरै ।।२।।
कर्ता होय राग-रुष ठानै, पर को साक्षी रहत न यहै ।
व्याप्य-व्यापक भाव बिना किमि, पर को करता होत ।।३।।
जब भ्रमनीद त्याग निज मे, निज हित हेत सम्हारत है ।
वीतराग-सर्वज्ञ होत तब, 'भागचन्द' हित सीख कहै ।।४।।

अरे हो अज्ञानी तूने,.....

अरे हो अज्ञानी तूने, कठिन मनुष-भव पायो ।।टेक।।

लोचन रहित मनुष के कर मे, ज्यो बेटर खग आयो ।।१।।
सो तू खोवत विषयन माही, धरम नही चित लायो ।।२।।
'भागचन्द' उपदेश मान अब, जो श्रीगुरु फरमायो ।।३।।

तू स्वरूप जाने बिन दुःखी . . .

तू स्वरूप जाने बिन दुखी, तेरी शक्ति न हलकी वे।।टेक।।
रागादिक वर्णादिक रचना, सोहै सब पुद्गल की वे।।१।।
अष्ट गुनातम तेरी मूरति, सो केवल मे झलकी वे।
जगी अनादि कालिमा तेरे, दुस्त्यज मोहन मल की वे।।२।।
मोह नसै भासत है मूरत, पक नसै ज्यो जल की वे।
'भागचन्द' सो मिलत ज्ञानसो, स्फूर्ति अखड स्वबल की वे।।३।।

प्रानी समकित ही शिवपंथा.....

प्रानी समकित ही शिवपथा, या बिन निर्मल सब ग्रथा।।टेक।।
जा बिन बाहच-क्रिया तप कोटिक, सफल वृथा है रथा ।।१।।
हयजुतरथ भी सारथ बिन जिमि, चलत नही ऋजु पथा ।।२।।
'भागचन्द' सरधानी नर भये, शिव लछमी के कथा ।।३।।

हरी तेरी मति नर कौनें हरी.....

हरी तेरी मति नर कौने हरी, तजि चिन्तामन काच गहत शठ।।टेक।।
विषय-कषाय रुचत तोकौ नित, जे दुखकरन अरी।
साचे मित्र सुहितकर श्रीगुरु, तिनकी सुधि विसरी।।१।।
पर-परनति मे आपो मानत, जो अति विपति भरी।
'भागचन्द' जिनराज भजन कहु, करत न एक घरी।।२।।

जैन-मन्दिर हमको लागै प्यारा.....

जैन-मन्दिर हमकौ लागै प्यारा।।टेक।।
कैधौ व्याह मुकति मगल ग्रह, तोरनादि जुत लसत अपारा।।१।।
धर्मकेतु सुखहेत देत गुन, अक्षय पुण्य रतन भण्डारा।
कहुँ पूजन कहूँ भजन होत है, कहु बरसत पुन श्रुतरसधारा।।२।।
ध्यानारूढ विराजत है जहा, वीतराग प्रतिबिम्ब उदारा।
'भागचन्द' तहा चलिये भाई, तजिकै गृहकारज अघ भारा।।३।।

करौ रे भाई, तत्त्वारथ सरधान.....

करौ रे भाई, तत्त्वारथ सरधान, नरभव सुकुल सुक्षेत्र पायके।।टेक।।
देखन जाननहार आप लखि, देहादिक परमान।
मोह-राग-रुष अहित जान तजि, बध-हु विधि दुखदान।।१।।
निज स्वरूप मे मगन होय कर, लगन-विषय दो भान।
'भागचन्द' साधक ह्वै साधो, साध्य स्वपद अमलान।।२।।

प्रभु पै यह वरदान सुपाऊँ.....

प्रभु पै यह वरदान सुपाऊँ, फिर जग कीच बीच नहि आऊँ।।टेक।।
जल गन्धाक्षत पुष्प सुमोदक, दीप धूप फल सुन्दर ल्याऊँ।
आनदजनक कनकभाजन धरि, अर्घ अनर्घ बनाय चढाऊँ।।१।।
आगम के अभ्यास माहि पुनि, चित एकाग्र सदैव लगाऊँ।
सतन की सगति तजि के मै, अत कहूँ इक छिन नहि जाऊँ।।२।।
दोषवाद मे मौन रहू फिर, पुण्य पुरुष गुन निशिदिन गाऊँ।
मिष्ट स्पष्ट सबहि सो भाषो, वीतराग निज भाव बढाऊँ।।३।।
बाहिज दृष्टि ऐच के अन्दर, परमानन्द स्वरूप लखाऊँ।
'भागचन्द' शिव प्राप्त न जौलौ, तौलौ तुम चरनाबुज ध्याऊँ।।४।।

ऐसे विमल भाव जब पावै.....

ऐसे विमल भाव जब पावै, हमरो नरभव सुफल कहावै।।टेक।।
दरशबोधमय निज आतम लखि, पर-द्रव्यनि को नहिं अपनावै।
मोह-राग-रुष अहित जान तजि, झटित दूर तिनको छिटकावै।।१।।
कर्म शुभाशुभ बध-उदय मे, हर्ष-विषाद चित्त नहिं ल्यावै।
निज-हित-हेत विराग-ज्ञान लखि, तिनसौ अधिक प्रीति उपजावै।।२।।
विषयचाह तजि आत्मवीर्य सजि, दुखदायक विधिबन्ध खिरावै।
'भागचन्द' शिवसुख सब सुखमय, आकुलता बिन लखि चित चावै।।३।।

आज मैंने प्रभु दर्शन पाये.....

आज मैने प्रभु दर्शन पाये, महाराज श्रीजिनवर जी।।टेक।।
तुमरे ज्ञान द्रव्य गुन पर्जय, निज चित गुन दरशाये।
निज लच्छन तै सकल विलच्छन, ततछिन पर दृग आये।।१।।
अप्रशस्त सक्लेश भाव अघ, कारन ध्वस्त कराये।
राग प्रशस्त उदय तै निर्मल, पुण्य समस्त कमाये।।२।।
विषय कषाय आताप नस्यो सब, साम्य सरोवर न्हाये।
रुचि भई तुम समान होवे की, 'भागचन्द' गुन गाये।।३।।

मैं तुम शरन लियो तुम साचे.....

मै तुम शरन लियो, तुम साचे प्रभु अरहन्त।।टेक।।
तुमरे दर्शन-ज्ञान मुकर मे, दरश-ज्ञान झलकन्त।
अतुल निराकुल सुख आस्वादन, वीरज अरज अनन्त।।१।।
राग-द्वेष विभाग नाश भये, परम समरसी सन्त।
पद देवाधिदेव पायो किय, दोष क्षुधादिक अन्त।।२।।
भूषन-वसन-शस्त्र-कामादिक, करन विकार अनन्त।
तिन तुम परमौदारिक तन, मुद्रा सम शोभन्त।।३।।
तुम वानी तै धर्म-तीर्थ जग, माहि त्रिकाल चलन्त।
निजकल्याण हेतु इन्द्रादिक, तुम पदसेव करन्त।।४।।
तुम गुन अनुभव तै निज-पर गुन, दरसत अगम अचिन्त।
'भागचन्द' निजरूप प्राप्ति अब, पावै हम भगवन्त।।५।।

थांकी तो वानी में हो.....

थाकी तो वानी मे हो, निज स्व-पर प्रकाशक ज्ञान।।टेक।।
एकीभाव भये जड चेतन, तिनकी करत पिछान।
सकल पदार्थ प्रकाशत जामे, मुकुर तुल्य अमलान।।१।।
जग चूडामनि शिव भये ते ही, तिन कीनो सरधान।
'भागचन्द' बुधजन ताही को, निशदिन करत बखान।।२।।

सम आराम विहारी साधुजन.....

सम आराम विहारी साधुजन, सम आराम विहारी।।टेक।।
एक कल्पतरु पुष्पन सेती, जजत भक्ति विस्तारी।।१।।
एक कण्ठविच सर्प नाखिया, क्रोध दर्पजुत भारी।
राखत एक वृत्ति दोउन मे, सब ही के उपगारी।।२।।
व्याघ्रबाल करि सहित नन्दिनी, व्याल नकुल की नारी।
तिनके चरन-कमल आश्रय तै, अरिता सकल निवारी।।३।।
अक्षय अतुल प्रमोद विधायक, ताकौ धाम अपारी।
काम धरा विच गढी सो चिरते, आतमनिधि अविकारी।।४।।
खनत ताहि लैकर कर मे जे, तीक्ष्ण बुद्धि कुदारी।
निज शुद्धोपयोगरस चाखत, पर-ममता न लगारी।।५।।
निज सरधान ज्ञान चरनात्मक, निश्चय शिवमगचारी।
'भागचन्द' ऐसे श्रीपति प्रति, फिर-फिर ढोक हमारी।।६।।

वीतराग जिन महिमा थारी.....

वीतराग जिन महिमा थारी, वरन सकै को जन त्रिभुवन मे।।टेक।।
तुमरे अनन्त चतुष्टय प्रगट्यो, नि शेषावरनच्छय छिन मे।
मेघ विघटनतै प्रगटत, जिमि मार्तण्ड प्रकाश गगन मे।।१।।
अप्रमेय ज्ञेयन के ज्ञायक, नहि परिनमत तदपि ज्ञेयन मे।
देखत नयन अनेकरूप जिमि, मिलत नही पुनि निज विषयन मे।।२।।
निज उपयोग आपनै स्वामी, गाल दिया निश्चल आपन मे।
है असमर्थ वाहच निकसन को, लवन घुला जैसै जीवन मे।।३।।
तुमरे भक्त परम सुख पावत, परत अभक्त अनन्त दु खन मे।
जैसो मुख देखो तैसौ ह्वै, भासत जिम निर्मल दरपन मे।।४।।
तुम कषाय विन परम शान्त हो, तदपि दक्ष कर्मारि हतन मे।
जैसे अति शीतल तुपार पुनि, जार देत द्रुम भारि गहन मे।।५।।
अब तुम रूप जथारथ पायो, अब इच्छा नहि अन कुमतन मे।
'भागचन्द' अमृतरस पीकर, फिर को चाहै विष निज मन मे।।६।।

म्हांके घट जिन धुनि अब प्रगटी.....

म्हांके घट जिन धुनि अब प्रगटी।।टेक।।
जागृत दशा भई अब मेरी, सुप्त दशा विघटी।
जग रचना दीसत अब मोकों जैसी रहट घटी।।१।।
विभ्रम तिमिर-हरन निज दृग की, जैसी अञ्जनवटी।
तातें स्वानुभूति प्रापति तैं, पर-परणति सब हटी।।२।।
ताके बिन जो अवगम चाहै, सो तो शठ कपटी।
तातैं 'भागचन्द' निशिवासर, इक ताही को रटी।।३।।

गिरिवनवासी मुनिराज मन वसिया.....

गिरिवनवासी मुनिराज, मन वसिया म्हारे हो।।टेक।।
कारन बिन उपगारी जग के, तारन-तरन जिहाज।।१।।
जनम-जरा-मृत गद गंजन कों, करत विवेक इलाज।
एकाकी जिमि रहत केसरी, निरभय स्वगुन समाज।।२।।
निर्भूषन निर्वसन निराकुल, सजि रत्नत्रय साज।
ध्यानाऽध्ययन माहिं तत्पर नित, 'भागचन्द' शिवकाज।।३।।

अतिसंक्लेश विशुद्ध शुद्ध पुनि.....

अतिसंक्लेश विशुद्ध शुद्ध पुनि, त्रिविध जीव परिणाम बखाने।।टेक।।
तीव्र कषाय उदय तें भावित, दर्वित हिंसादिक अघ ठाने।
सो संक्लेश भाव फल नरकादिक, गति दु:ख भोगत असहाने।।१।।
शुध उपयोग कारनन में जो, रागकषाय मन्द उदयाने।
सो विशुद्ध तसु फल इन्द्रादिक, विभव-समाज सकल परमाने।।२।।
परकारन मोहादिक तैं च्युत, दरसन-ज्ञान-चरन रस पाने।
सो है शुद्ध भाव तसु फल तैं, पहुँचत परमानन्द ठिकाने।।३।।
इनमें जुगल बन्ध के कारन, परद्रव्याश्रित हेय प्रमाने।
'भागचन्द' स्वसमय निज हित लखि, तामैं रम रहिये भ्रम हाने।।४।।

जिन स्व-पर हिताहित चीना.....

जिन स्व-पर हिताहित चीना, जीव ते ही है साचै जैनी।।टेक।।
जिन बुध-छैनी पैनी तै जड रूप निराला कीना।
पर तै विरचि आपसे राचे, सकल विभाव विहीना।।१।।
पुन्य पाप विधि बध उदय मे, प्रमुदित होत न दीना।
सम्यग्दर्शन -ज्ञान- चरन निज भाव सुधारस भीना।।२।।
विषयचाह तजि निज वीरज सजि करत पूर्वविधि छीना।
'भागचन्द' साधक ह्वै साधन, साध्य स्वपद स्वाधीना।।३।।

सहज अबाध समाध धाम तहॉ.....

सहज अबाध समाध धाम तहॉ, चेतन सुमति खेलै होरी।।टेक।।
निजगुन चदन मिश्रित सुरभित, निर्मल कुकुम रस घोरी।
समता पिचकारी अति प्यारी, भर जु चलावत चहुँ ओरी।।१।।
शुभ सवर सुअबीर आडबर, लावत भर भर कर जोरी।
उडत गुलाल निर्जरा निर्भर, दुखदायक भव थिति टोरी।।२।।
परमानद मृदगादिक धुनि, विमल विरागभाव घोरी।
'भागचन्द' दृग-ज्ञान-चरनमय, परिनति अनुभव रग बोरी।।३।।

यह मोह उदय दुख पावै.....

यह मोह उदय दुख पावै, जगजीव अज्ञानी ।।टेक।।
निज चेतनस्वरूप नहिं जानै, पर-पदार्थ अपनावै ।
पर-परिनमन नही निज आश्रित, यह तहॅ अति अकुलावै ।।१।।
इष्ट जानि रागादिक सेवै, तै विधि-बध बढावै ।
निजहित-हेत भाव चित सम्यक्दर्शनादि नहिं ध्यावै ।।२।।
इन्द्रिय-तृप्ति करन के काजै, विषय अनेक मिलावै ।
ते न मिलैं तब खेद खिन्न ह्वै सममुख हृदय न ल्यावै ।।३।।
सकल कर्म छय लच्छन लच्छित, मोच्छदशा नहिं चावै ।
'भागचन्द' ऐसे भ्रमसेती, यह काल अनन्त गमावै ।।४।।

निज कारज काहे न सारै रे,.....

निज कारज काहे न सारे रे, भूले प्रानी।।टेक।।
परिग्रह भार थकी कहा नाहीं. आरत होत निहारे रे।।१।।
रोगी नर तेरी वपु को कहा, निस दिन नाही जारे रे।
क्रूरकृतांत सिंह कहा जग मे, जीवन को न पछारे रे।।२।।
करनविषय विषभोजनवत कहा, अन्त विसरता न धारे रे।
'भागचन्द' भव अन्धकूप मे, धर्म रतन काहे डारे रे।।३।।

अहो यह उपदेश माहीं.....

अहो यह उपदेश माही, खूब चित्त लगावना।
होयगा कल्यान तेरा, सुख अनन्त बढावना।।टेक।।
रहित दूषन विश्वभूषन, देव जिनपति ध्यावना।
गगनवत निर्मल अचल मुनि, तिनहिं शीस नवावना।।१।।
धर्म अनुकम्पा प्रधान, न जीव कोई सतावना।
सप्ततत्त्व परीक्षा करि, हृदय श्रद्धा लावना।।२।।
पुद्गलादिक तैं पृथक्, चेतन्य ब्रह्म लखावना।
या विधि विमल सम्यक्त्व धरि, शकादि पक बहावना।।३।।
रुचै भव्यन को वचन जे, शठन को न सुहावना।
चन्द्र लखि जिमि कुमुद विकसै, उपल नहिं विकसावना।।४।।
'भागचन्द' विभाव तजि, अनुभव स्वभावित भावना।
या शरण न अन्य जगतारन्य मे कहु पावना।।५।।

मेघ घटा सम श्री जिनवानी.....

मेघ घटा सम श्री जिनवानी।।टेक।।
स्यात्पद चपला चमकत जामे, बरसत ज्ञान सुपानी।
धरमसस्य जातै बहु बाढै, शिव आनन्द फलदानी।।१।।
मोहन धूल दवी सब यातै, क्रोधानल सुबुझानी।
'भागचन्द' बुधजन केकीकुल, लखि हरखै चितज्ञानी।।२।।

लखिकै स्वामी रूप को मेरा मन भया.....

लखिकै स्वामी रूप को मेरा मन भया चगा जी।।टेक।।
विभ्रम नष्ट गरुड लखि जैसे भगत भुजगा जी।।१।।
शीतल भाव भये अब न्हायो सुगगा जी।।२।।
'भागचन्द' अब मेरे लागो निजरस रगा जी।।३।।

भव वन मे नहीं भूलिये भाई.....

भव वन मे नही भूलिये भाई, कर निज थल की याद।।टेक।
नर परजाय पाय अति सुन्दर, त्यागहु सकल प्रमाद।
श्री जिन-धर्म सेय शिव पावत, आतम जासु प्रसाद।।१।।
अब के चूकत ठीक न पडसी, पासी अधिक विषाद।
सहसी नरक वेदना पुनि तहा, सुणसी कौन फिराद।।२।।
'भागचन्द' श्रीगुरु शिक्षा बिन, भटका काल अनाद।
तू कर्ता तू ही फल भोगत, कौन करै बकवाद।।३।।

सफल है धन्य-धन्य वा घरी.....

सफल है धन्य-धन्य वा घरी।
जब ऐसी अति होसी, परमदशा हमरी।।टेक।।
धारि दिगम्बर दीक्षा सुन्दर, त्याग परिग्रह अरी।
वनवासी कर पात्र परीषह, सहि हो धीर धरी।।१।।
दुर्धर तप निर्भर नित तप हौ, मोह कुवृक्ष करी।
पञ्चाचार क्रिया आचर ही, सकल सार सुथरी।।२।।
विभ्रम ताप हरन झरसी निज, अनुभव-मेघ-झरी।
परम शान्त भावन की तातै, होसी वृद्धि खरी।।३।।
त्रेसठि प्रकृति भग जब होसी, जुत त्रिभग सगरी।
तब केवलदर्शन विबोध सुख, वीर्यकला पसरी।।४।।
लखि हो सकल द्रव्य गुन पर्जय, परणति अति गहरी।
'भागचन्द' जब सहजहि मिलहै, अचल मुकति नगरी।।५।।

आवै न भोगन में तोहि गिलान.....

आवै न भोगन मे तोहि गिलान।।टेक।।
तीरथ नाथ भोग तजि दीने, तिनतै मत भय आन।
तू तिनतै कहु डरपत नाही, दीसत अति बलवान।।१।।
इन्द्रिय तृप्ति काज तू भोगै, विषय महा अघखान।
सो जैसे घृतधारा डारै, पावक ज्वाल बुझान।।२।।
जे सुख तौ तीछन दुखदाई, ज्यो मधुलिप्त कृपान।
तातै 'भागचन्द' इनको तजि आत्मस्वरूप पिछान।।३।।

बिन काम ध्यान मुद्राभिराम.....

विन काम ध्यान मुद्राभिराम, तुम हो जगनायकजी।।टेक।।
यद्यपि वीतराग मय तद्यपि, हो शिवदायकजी।।१।।
रागी देव आप ही दुखिया, सो क्या लायकजी।
दुर्जय मोह शत्रु हनवे को, तुम वच शायकजी।।२।।
तुम भवमोचन ज्ञान सुलोचन, केवल क्षायकजी।
'भागचन्द' भागन तै प्रापति, तुम सब ज्ञायकजी।।३।।

सत्ता रङ्गभूमि में नटत ब्रह्म नटराय.....

सत्ता रङ्गभूमि मे, नटत ब्रह्म नटराय।।टेक।।
रत्नत्रय आभूषण मण्डित, शोभा अगम अथाय।
सहज सखा निशकादिक गुन, अतुल समाज बढाय।।१।।
समता वीन मधुररस बोलै, ध्यान मृदग बजाय।
नदत निर्जरा नाद अनूपम, नूपुर सवर ल्याय।।२।।
लय निज-रूप मगनता ल्यावत, नृत्य सुज्ञान कराय।
समरस गीतालापन पुनि जो, दुर्लभ जगमह आय।।३।।
'भागचन्द' आप हि रीझत तहाँ, परम समाधि लगाय।
तहाँ कृतकृत्य सुहोत मोक्षनिधि, अतुल इनाम हि पाय।।४।।

जो जो देखी वीतराग ने.....

जो जो देखी वीतराग ने, सो सो होसी वीरा रे।
अनहोनी होसी नहि क्यो जग मे, काहे होत अधीरा रे।।टेक।।
समय एक बढै नहि घटसी, जो सुख-दु ख की पीरा रे।
तू क्यो सोच करै मन मूरख, होय वज्र ज्यो हीरा रे।।१।।
लगै न तीर कमान बान कहुँ, मार सकै नहिं मीरा रे।
तू सम्हारि पौरुष बल अपनो, सुख अनन्त तो तीरा रे।।२।।
निश्चय ध्यान धरहु वा प्रभु को, जो टारे भव भीरा रे।
'भैया' चेत धरम निज अपनो, जो तारै भव नीरा रे।।३।।

एते पर ऐता क्या करना.....

सिद्ध समान न जाने आपा, तातै तोहि लगत है पापा।
खोल देख घट पटहि उघरना, एते पर एता क्या करना।।टेक।।
श्री जिनवचन अमल रस वानी, पीवहिं क्यो नहिं मूढ अज्ञानी।
जातै जन्म जरा मृत हरना, एते पर एता क्या करना।।१।।
जो चेतै तो है यह दावो, नाही बैठे मगल गावो।
फिर यह नरभव वृक्ष न फरना, एते पर एता क्या करना।।२।।
'भैया' विनवहि बारबारा, चेतन चेत भलो अवतारा।
ह्वै दलह शिवनारी वरना एते पर एता क्या करना।।३।।

जिया का मोह महा दुखदाई.....

जिया का मोह महा दुखदाई।।टेक।।
काल अनन्त जीति जिह राख्यो, शक्ति अनन्त छिपाई।
क्रम-क्रम करके नर भव पायो, तऊ न तजत लगाई।।१।।
मात, तात, सुत, बॉधव, वनिता, अरु परवार बडाई।
तिन सौ प्रीति करे निशि-बासर, जानत सब ठकुराई।।२।।
चहुँ गति जनम मरन के, बहुदु ख, अरु बहु कष्ट सहाई।
सकट सहत तऊ नहि चेतन, भ्रम मदिरा अति पाई।।३।।
इह बिन तो परम पद नाही, यो जिनदेव बताई।
ताते मोह त्याग लै 'भैया', ज्यो प्रगटे ठकुराई।।४।।

अरे जु तैं यह जन्म गमायो रे.....

अरे जु तैं यह जन्म गमायो रे ।।टेक।।
पूरब पुण्य किये कहूं अति ही, ताते नरभव पाया रे ।।१।।
देव धरम गुरु ग्रंथ न परखे, भटकि भटकि भरमायो रे ।।२।।
फिर तोको मिलिबो यह दुर्लभ, दश दृष्टान्त बतायो रे ।।३।।
जो चेते तो चेत रे 'भैया' तोको कहि समझायो रे ।।४।।

छांड़ि दे अभिमान जिय रे.....

छांडि दे अभिमान जिय रे ।।टेक।।
काको तू अरु कौन तेरे, सब ही है महिमान ।
देख राजा रंक कोऊ, थिर नहीं यह थान ।।१।।
जगत देखत तोरि चलवौ, तू भी देखत आन ।
घरी पल की खबर नाहीं, कहा होय विहान ।।२।।
त्याग क्रोध अरु लोभ माया, मोह मदिरा पान ।
राग-द्वेष हि टार अन्तर, दूर कर अज्ञान ।।३।।
भयो सुर पद देव कबहूं, कबहूं नरक निदान ।
इम कर्मवश बहु नाच नाचे, "भैया" आप पिछान ।।४।।

कहो परसों प्रीति कीन्हीं.....

कहो परसों प्रीति कीन्ही, कहा गुण तम जान ।।टेक।।
चतुर चेतन चित विचारो, कहहुं पुनि पहिचान ।।१।।
वे अचेतन तुम सचेतन, देखि दृष्टि विज्ञान ।।२।।
परहि त्याग स्वरूप गहिये, यहै बात प्रमान ।।३।।

हो चेतन वे दुःख विसरि गये.....

हो चेतन वे दुःख विसरि गये ।।टेक।।
पर नरक मे सकट सहते, अब महाराज भये ।।१।।
सूजी सेज सबै तन वेदत, रोग एकत्र ठये ।।२।।
करत पुकार परम पद पावत, कर मन आनदये ।।३।।
कहूं शीत कहूं उष्ण महाभुवि, सागर आयु लये ।।४।।

तिहुं पुर के पुरहूत सब.....

तिहु पुर के पुरहूत सब, बदत शीश नवाय।
तिहँ तीर्थकर देव सो बचत नाहिं यमराग।।टेक।।
जिनकी भ्रू के फरक ते, कपन सुरनर वृन्द।
तेहू काल छिन मे लये, जो योधा सुर इन्द्र।।१।।
जाकी आज्ञा मे रहै, छहो खड के भूप।
ता चक्रीधर को ग्रसै, काल महा भयरूप।।२।।
नारायण नरलोक मे, महा शूर बलवत।
तीन खड आज्ञा बहै, तिनै हु काल ग्रसत।।३।।
औरहु भूप बलिष्ट जे, वसत याहि जगमाहि।
तेहु काल की चाल सो, बचत रच कहुँ नाहि।।४।।
तातै काल महाबली, करत सबन पै जोर।
धन धन सिध परमात्मा, जिहँ कीनो इह भोर।।५।।
ऐसे काल बलिष्ट को, जो जीतै सो देव।
कहत दास भगवत को, कीजे ताकी सेव।।६।।
काल वसत जगजाल मे, नूतन करत पुरान।
'भैया' जिहँ जग त्यागियो, नमहुं ताहि धर ध्यान।।७।।

3/ कहा परदेशी को पतियारो.....

कहा परदेशी को पतियारो।।टेक।।
मन मानै तब चलै पथ को, साज गिनै न सकारो।
सबै कुटुब छॉड इतही पुनि, त्याग चलै तन प्यारो।।१।।
दूर दिसावर चलत आप ही, कोऊ न राखन हारो।
कोऊ प्रीति करो किन कोटिक, अत होयगो न्यारो।।२।।
धन सो राचि धरम सो भूलत, झूलत मोह मझारो।
इहि विधि काल अनत गमायो, पायो नाहिं भव पारो।।३।।
साचे सुख सो विमुख होत है, भ्रम मदिरा मतवारो।
चेतहु चेत सुनहु रे 'भइया', आप ही आप सभारो।।४।।

चेतन काहे कौं अरसात.....

चेतन काहे कौ अरसात।
सहज सकति सम्हारि आपनी, काहे न सिवपुर जात।।टेक।।
इहिं चतुरगति विपति भीतरि, रहयो क्यो न सुहात।
अरु अचेतन असुचि तन मै, कैसे रहयौ विरमात।।१।।
अछत अनुपम रतन मागत, भीख क्यौ न लजात।
तू त्रिलोकपति वृथा अब कत, रक ज्यौ विललात।।२।।
सहज सुख बिन, विषय सुख रस भोगवत न अघात।
'रूपचद' चित चेत ओसनि प्यास तौ न बुझात।।३।।

चेतन सौं चेतन लौं लाई.....

चेतन सौ चेतन लौ लाई।
चेतन अपनु सु फुनि चेतन, चेतन सौ बनि आई।।टेक।।
चेतन तै अब चेतन उपज्यौ, सुचेतन कौ चेतन क्यो जाई।
चेतन गुन अरु गुनि फुनि चेतन, चेतन चेतन रहयो समाई।।१।।
चेतन मौन बनै अब चेतन, चेतन मौ चेतन ठहराई।
'रूपचद' चेतन भयो चेतन, चेतन गुण चेतन मति पाई।।२।।

चेतन चेति चतुर सुजान.....

चेतन चेति चतुर सुजान।
कहा रग रचि रहयो परसौ, प्रीति करि अति वान।।टेक।।
तू महतु त्रिलोकपति जिय, जान गुन परधानु।
यह अचेतन हीन पुदगलु, नाहिं न तोहि समान।।१।।
हुई रहयौ असमरथु आपुनु, परु कियौ पजवान।
निज सहज सुख छोडि परवस, परयौ है किहिं जान।।२।।
रहयौ मोहि जु मूढ यामै, कहा जानि गुमान।
'रूपचन्द' चित चेति नर, अपनौ न होइ निदान।।३।।

चेतन ! अब मोहि दर्शन दीजे.....

चेतन! अब मोहि दर्शन दीजे।।टेक।।
तुम दर्शन शिव-सुख पामीजे, तुम दर्शन भव दीजे।
तुम कारन सयम तप किरिया, कहो, कहा लौ कीजे।।
तुम दर्शन बिनु सब या झूठी, अन्तरचित्त न भीजे।।१।।
क्रिया मूढमति कहे जन कोई, ज्ञान और को प्यारो।
मिलत भावरस दोउ न भाखे, तूं दोनो ते न्यारो।।
सब मे है और सब मे नाही, पूरन रूप अकेलो।।२।।
आप स्वभावे वे किम रमतो, तूँ गुरु अरु तू चेलो।
अकल अलख तू प्रभु सब रूपी, तू अपनी गति जाने।।
अगमरूप आगम अनुसारे, सेवक सुजस बखाने।।३।।

चेतन परस्यौं प्रेम बढचो.....

चेतन परस्यौ प्रेम बढचो।।टेक।
स्व-पर विवेक बिना भ्रम भूल्यो, मे मे करत रहचो।।१।।
नरभव रतन जतन बहु तै करि, कर तेरे आइ चढचो।
सुक्यौ विषय-सुख लागि हारिए, सब गुना गढनि गढचो।।२।।
आरभ के कुसियार कीट ज्यौ, आपु हि आपु मढचो।
'रूपचद' चित चेतत नाही तै, सुक ज्यौ वादि पढचो।।३।।

गुरुजी म्हारो मनरो निपट अजान.....

गुरुजी म्हारो मनरो निपट अजान।।टेक।
बार बार समझावत हो तुम, तोऊ न धरत सरधान।।१।।
विषै भोग अभिलाषा लागी, सहत काम के वान।
अनरथ मूल क्रोध सो लिपटचो, बहुरि धरै बहु मान।।२।।
छल को लिये चहत कारज को, लोभ पर्‌यो सव थान।
विनासीक सव ठाठ बन्या है, ता परि करइ गुमान।।३।।
गुरु-प्रसाद तै सुलट होयगी, दचो उपदेस सुदान।
'जगतराम' चित को इत ल्यावो, मुनि सिद्धान्त बखान।।४।।

भजन सम नहीं काज दूजो.....

भजन सम नही काज दूजो।
धर्म अग अनेक यामे, एक ही सिरताज।।टेक।।
करत जाके दुरत पातक, जुरत सत समाज।
भरत पुण्य भण्डार यातै, मिलत सब सुख साज।।१।।
भक्त को यह इष्ट ऐसो ज्यो क्षुधित को नाज।
कर्म ईधन को अगनि सम, भव जलधि को पाज।।२।।
इन्द्र जाकी करत महिमा, कहो तो कैसी लाज।
'जगतराम' प्रसाद यातैं, होत अविचल राज।।३।।

नहि गोरो नहि कारो चेतन.....

नहि गोरो नहि कारो चेतन, अपनो रूप निहारो।
दर्शन ज्ञान मई चिन्मूरत, सकल करम ते न्यारो।।टेक।।
जाके विन पहिचान जगत मे, सह्यो महा दुख भारो।
जाके लखे उदय हो तत्क्षण, केवलज्ञान उजारो।।१।।
कर्मजनित पर्याय पायके, कीनो तहा पसारो।
आपा-पर को रूप न जान्यो, तातै भव उरझारो।।२।।
अब निज मे निज कू अवलोकू, जो हो भव सुलझारो।
'जगतराम' सब विधि सुखसागर, पद पाऊँ अविकारो।।३।।

अब ही हम पायौं विसराम.....

अब ही हम पायौं विसराम।
गृह कारिज को चितवन झूले, जब आये जिन धाम।।टेक।।
दरसन करियौ नैननि सौ, मुख उचरे जिन नाम।
कर जुग जोरि श्रमण वानी सुनि, मस्तक करत प्रणाम।।१।।
सन्मुख रहे रहत चरननि सुख, हृदय सुमरि गुन ग्राम।
नरभव सफल भयो या विधि सौ मनबाछित फल पाम।।२।।
पुन्य उद्योत होत जिय जाकै, सो आवत इह ठाम।
साधरमी जन सहज सुखकारी, रलि मिलि है 'जगराम'।।३।।

कैसे होरी खेलौ खेलि न आवै.....

कैसे होरी खेलौ खेलि न आवै।।टेक।।

प्रथम ही पाप हिसा जा माही, दूजै झूठ जपावै।।१।।
तीजे चोर कलाविन जामे, नैक न रस उपजावै।
चौथौ परनारी सौ परचै, सील व्रत मल लावै।।२।।
त्रसना पाप पाचवा जामे, छिन छिन अधिक बढावै।
सब विधि अशुभ रूप जो कारिज, करत ही चित चपलावै।।३।।
अक्षर ब्रह्म खेल अति नीकों, खेलत हो हुलसावै।
'जगतराम' सोई खेलिये, जो जिन-धरम बढावै।।४।।

मेरी कौन गति होसी हो गुसांई.....

मेरी कौन गति होसी हो गुसाई।।टेक।।

पच पाप मोसौ नही छूटै, विकथा चारचौ भाई।।१।।
तीन जोग मेरे वस नाही, राग-द्वेष दोऊ थाई।
एक निरजन रूप तिहारो, ताकी खबर न पाई।।२।।
एक बार कबहुँ तिहु सेती, मन परतीति न आई।
याही तै भव दुख भुगते, बहु विधि आपद पाई।।३।।
मो सो पतित निकट जब टेरत, कहा अन्तर लौ लाई।
पतित उधारक सकति जु अपनी, राखी कब कै ताई।।४।।
इह कलिकाल क्षेत्र व्यापक है, हौ इम जानत साई।
'जगतराम' प्रभु रीति विसारी, तुम हूँ व्याप्यौ काई।।५।।

आज कोई अद्भुत रचना रची.....

आज कोई अद्भुत रचना रची।।टेक।।

जुगल इन्द्र दोउ चॅवर ढुरावत, निरत करत हैं शची।।१।।
समवसरण महिमा देखन की, होडाहोड मची।
स्वर्ग विमान विपुल छबि जाकी, देखत मन न खची।।२।।
जिनगुण सार सभी है इनमे, ये जिन वात सची।
'नवल' कहे उर आवत ऐसे, हरष धार के नची।।३।।

की परि इतनी मगरूरि करी.....

की परि इतनी मगरूरि करी।।टेक।।
चेति सकै तो चेति बावरे, नातर बूडत है सगरी ।।१।।
कित तै आयो फिरि कित जै है, समझ देख नही ठीक परी ।
ओस बूद लौ जीवन तेरो, धूप लगे न रहत धरी ।।२।।
ग्रह परियण इत्यादिक मेरो, मानत है सो जानि परी ।
निज देही लखि मगन होत तू, सो मल-मूतर पूरि भरी ।।३।।
लाख बात की एक बात ये, सो सुनि अपनै कान धरी ।
छाडि बदी नेकी करि भाई, 'नवल' कहत यह बात खरी ।।४।।

जिनराज भजा सो ही जीता रे.....

जिन राज भजा सोही जीता रे।।टेक।।
भजन किया पावै सिव सपति, भजन बिना रहै रीता रे ।।१।।
धरम बिना धन ह्वै चक्री सम, सो दुख भार सलीता रे ।
धरम माहि रत धन नहिं तौ पण वो जग माहि पुनीता रे ।।२।।
या सरधा बिन भ्रमत भ्रमत तोहि, काल अनन्त वितीता रे ।
वीतराग पद नरनि गही तिन, जनम सफल करि लीता रे ।।३।।
मन वचन द्रिढ प्रीति आनि उर, जिन गुन गावो मीता रे ।
नाम महात्म्य श्रवनन सुनि कै, 'नवल' सुधारस पीता रे ।।४।।

म्हारो मन लागो जी जिनजी सौं.....

म्हारो मन लागो जी जिनजी सौ।।टेक।।
अद्भुत रूप अनोपम मूरति, निरखि निरखि अनुरागो जी ।।१।।
समता भाव भये है मेरे, आन भाव सब त्यागो जी।
स्व-पर विवेक भयो नही कबहूँ, सो परगट होय जागो जी।।२।।
ग्यान प्रभाकर उदित भयो अब, मोह महातम भागो जी।
'नवल' नवल आनद भये प्रभु, चरन-कमल अनुरागो जी।।३।।

हो मन जिन-जिन क्यों नहीं रटै.....

हो मन जिन-जिन क्यो नही रटै।।टेक।।
जाके चितवत ही तैं तेरे, सकलप विकलप मिटै।।१।।
कर अजुली के जल की नाई, छिन छिन आव जु घटै।
याते विलम न करि भजि प्रभु ज्यौ, भरम कपाट जु फटै।।२।।
जिन मारग लागे बिन तेरी, भव सतति नाहिं कटै।
या सरधा निश्चै उर धरि ज्यो, 'नवल' लहै सिव तटै।।३।।

इह विधि खेलिये होरी हो चतुर नर.....

इह विधि खेलिये होरी हो चतुर नर।।टेक।।
निज परनति संगि लेहु सुहागिन, अरु फुनि सुमति किसोरी हो ।।१।।
ग्यान मइ जल सौ भरि भरि कै, सबद पिचरिका छोरी हो ।
क्रोध मान अबीर उडावो, राग गुलाल की झोरी हो ।।२।।
गहि सतोष यौ ही सुभ चदन, समता केसरि घोरी हो ।
आतम की चरचा सोही चोबो, चरचा होरा होरी हो ।।३।।
त्याग करो तन तरणी मगनता, करुना पान गिलोरी हो ।
करि उछाह रुचि सेती ल्यो, जिन नाम अमल की गोरी हो ।।४।।
सुचिमन रग बनावो निरमल, करम मैल द्यौ टौरी हो ।
'नवल' इसी विधि खेल खेलो, ज्यों अघ भाजै वर जोरी हो ।।५।।

ऐसे खेल होरी को खेलि रे.....

अैसे खेल होरी को खेलि रे।।टेक।।
कुमति ठगोरी कौ अब तजि करि, तु साथ सुमति गोरी को।।१।।
व्रत चदन तप सुध अरगजो, जल छिरको सजम वोरी कौ।
करमा तणा अवीर उडावो, रंग करुना केसरि घोरी को।।२।।
ग्यान गुलाल विमल मन चोवो, फुनि करि त्याग सकल चोरी को।
'नवल' इसी विधि खेलत है, ते पावत है मग शिव पौरी को।।३।।

मेरौ कह्यो मानि लै जीयरा रे.....

मेरौ कह्यो मानि लै जीयरा रे।।टेक।।
दुर्लभ नर भव कुल श्रावक कौ जिन वच दुर्लभ जानि लै।।१।।
जिहि वनि नरकादिक दुख पायौ, तिहि विधि कौ अब भानि लै।
सुर सुख भुंज मोखिफल लहिये ऐसी परणति ठानि लै।।२।।
पर सौ प्रीति जानि दुखदैनी आतम सुखद पिछानि लै।
आस्रव बंध विचार करीनै सवर हिय मै आनि लै।।३।।
दरसन ग्यान मई अपनो पद, तासौ रुचि की बानि लै।
सहज कर्म की होय निरजरा, ऐसो उद्दिम तानि लै।।४।।
मुनि पद धारि ग्यान केवल लहि, सिवतिय सौ हित सानि लै।
किसनस्यघ परनींति आनि अब, सद्‌गुरु के वच कानि लै।।५।।

वह शक्ति हमे दो दयानिधे.....

वह शक्ति हमे दो दयानिधे, हम मोक्षमार्ग मे लग जावे।।टेक।।
करि शुद्ध रत्नत्रय भेद त्याग, निज शुद्धातम मे रमि जावे।।१।।
तज इष्टानिष्ट विकल्प सभी, समतारस निज मे भरि लावे।
करि साम्यभाव स्वाभाविक परिणति, पाय उसी मे रमि जावे।।२।।
है गुण अनन्तमय शुद्ध निजातम, शक्ति प्रगटकर दिखलावे।
फिर काल अनन्ता रहे उसी मे, ज्ञाता दृष्टा बन जावे।।३।।
झलके लोकालोक कालत्रय, निजपरिणति मे मिल जावे।
स्वाधीन निराकुल ज्ञानचन्द्रिका, आस्वादी हम बन जावे।।४।।

मन वीतराग पद वंद रे.....

मन वीतराग पद वंद रे।।टेक।।
नैन निहारत ही हिरदा मे, उपजत है आनन्द रे।।१।।
प्रभु को छाडि लगत विषय मे, कारिज सब न्यद रे।
जो अविनाशी सुख चाहै तौ, इनके गुनन स्यौ फद रे।।२।।
ये काम रुचि तैं राखि इन मे, त्यागि सकल दुख-दुद रे।
'नवल' नवल पुन्य उपजत, यातै अघ सब होय निकद रे।।३।।

खेलत फाग महामुनि वन में.....

खेलत फाग महामुनि वन मे, स्वातम रंग सदा सुखदाई।।टेक।।
अष्टकर्म की रचत होलिका, ध्यान धनजय ताहि जराई।
राग-द्वेष-मोहादिक कटक, भस्म किये चिर शाति उपाई।।१।।
मार्दव आर्जव सत्यादिक मिल, दया क्षमा सग होरी मचाई।
मन मृदग तम्बूरा तन का, डुलन डोरि कसि तग कराई।।२।।
सुरत सारगी की धुनि गाजे, मधुर वचन बाजत शहनाई।
ज्ञान गुलाल भाल पर सोहै, परम अहिसा अबीर उडाई।।३।।
क्षमा रग छिडकत भविजन पर, प्रेम रग पिचकारी चलाई।
मोक्षमहल के द्वार फाग लखि, सेवक 'कुज' रहे हर्षाई।।४।।

चेतन नरभव पाय कें हो.....

चेतन नरभव पाय कै हो जानि वृथा क्यौ खोबै छै।।टेक।।
पुदगल कै रग राचि रहै हो, मोह मगन होय सोवै छै।।१।।
ये जड रूप अनादि को, तोहि भव भव मांहि विगोवै छै।
भूलि रहचो भ्रम जाल मे, तु आयो आय लकोवै छै।।२।।
विषयादिक सुख त्यागि कै, तू ग्यान रतन कौ न जोवै छै।
'बखतराम' जाकै उदै हो, मुक्तिवधू सुख होवै छै।।३।।

करो कल्याण आतम का.....

करो कल्याण आतम का, भरोसा है न इक पल का।।टेक।।
ये काया काच की शीशी, फूल मत देखकर इसको।
छिनक मे फूट जावेगी, कि जैसे बुद-बुदा जल का।।१।।
यह धनदौलत मका मदिर, जो तू अपना बताता है
कभी हरगिज नही तेरे, छोड जजाल सब जग का।।२।।
स्वजन सुत मात पितु दारा, सबै परिवार अरु ब्रदर।
खडे सब देखते होगे, कूच होगा जभी दम का।।३।।
बडी अटवी यह जगरूपी, फँसो मत देखकर इसको।
कहे 'चुन्नी' समझ दिल मे, सितारा ज्ञान का चमका।।४।।

इक तैं एक अनेक गेय बहु.....

इक तै एक अनेक गेय बहु, रूप गुनन करि अधिक विराजे ।।टेक।।
कौन कौन की चाह करै तू, कौन कौन तुझ सग समाजे ।।१।।
सब निज निज परिनाम रूप, परिनमत अन्यथा भाव न साजे ।
पुन्य पाप अनुसार सबनि का, होत समागम सुख दुख पाजे ।।२।।
जग जन तन सपरस अवलोकन, करि करि सुख माने डरि भाजे ।
यह अग्यान प्रभाव प्रगट गुरु, करत निवेदन जनहित काजै ।।३।।
पर रस मिलै कदापि न आपमे, जो जल जलज दलनि थितिकाजै ।
'छत्त' आप केवल-ग्यायक ही, है बरते विधि बध निवाजै ।।४।।

करि करि ज्ञान अयान अरे नर.....

करि करि ज्ञान अयान अरे नर, निज आतम अनुभव रस धारा ।।टेक।।
वादि अनर्थ माहि क्यो खोवत, आयु दिवस हितकारा ।।१।।
तन मे बसत मिलत नही तन सो, जो जल दूध तेल तिल न्यारा ।
देखत जानत आप अपरके, गुन परजाय प्रवाह प्रचारा ।।२।।
निहचे निरविकार निरआश्रव, आनन्द रूप अनूप उघारा ।
अपनी भूल थकी परबस ह्वै, भयो समाकुल समल अपारा ।।३।।
सुख के थान होत सुख भाई, अब न लागत कठ मझारा ।
तजि विकलप करि थिर चित इतमे, 'छत्त' होय सहजै निसतारा ।।४।।

आयु सब यों ही बीती जाय.....

आयु सब यों ही बीती जाय ।
बरस अयन रितु मास महूरत, पल छिन समय सुभाय ।।टेक।।
बन न सकत जप तप व्रत सजम, पूजन भजन उपाय ।
मिथ्या विषय कषाय काज मे, फसौ न निकसौ जाय ।।१।।
लाभ समै इह जात अकारथ, सत प्रति कहू सुनाय ।
होति निरतर विधि बधवारी, इस पर भव दुखदाय ।।२।।
धनि वे साधु लगै परमारथ, साधन मे उमगाय ।
'छत्त' सफल जीवन तिनही का, हम सम शिथिल न पाय ।।३।।

अन्तर त्याग बिना बाहिज का.....

अन्तर त्याग विना बाहिज का, त्याग सुहित साधक नहिं क्यो ही ।।टेक।।
वाहिज त्याग होत अन्तर मे, त्याग होय नहिं होय सु योही ।।१।।
जो विधि लाभ उदै बिन बाहिज, साधन करते काज न सीझे ।
वाहिज कारन ते कारज की, उतपति होय न होय लखी जै ।।२।।
देखन जानन ते साधन बिन, सुहित सधे नहिं खेद लहीजै ।
अध लुज जो देखत जानत, गमन विना नहिं सुथल सहीजै ।।३।।
यो साधन विन साध्य अलभ लखि, साधन विषै प्रीति कित कीजे ।
'छत्तर' थोथे गाल बजाये, पेट भरे नहिं रसना भीजै ।।४।।

आतम ग्यान भान परकासत.....

आतम ग्यान भान परकासत, वर उत्साह दशा विस्तरती ।।टेक।।
सुगुन कज वन मोद बधावति, परम प्रशान्ति सुधाकरि झरती ।।१।।
भरम ध्वात विधि आगम कारन, मन वच काय क्रिया वृष करती ।
तन ते भिन्न अपनपो आश्रिति, राग-द्वेष सतति अपहरती ।।२।।
जो अभेद अविकल्प अनूपम, चित्स्वभावना सो नहि टरती ।
वर्तमान निबध पुराकृत, कर्म निर्जरा फल करि फरती ।।३।।
जहा न चद सूर सुख मन गति, सुथिर भई सरवांग उघरती ।
'छत्त' आस भरि हिये वास करि, निज महिमा सुहाग सिर धरती ।।४।।

सुनि सुजन सयाने तो सम कौन अमीर रे.....

सुनि सुजन सयाने तो सम कौन अमीर रे ।
निज गुन विभव विसरि करि भोदू, गेलत भयो फकीर रे ।।टेक।।
गुरु उपदेश सभालि खोलि हिय, नैन निरखि धरि धीर रे ।
निपट नजीक सुसाध्य ज्ञान द्रग, बीरज सुख तुझ तीर रे ।।१।।
समरस असन अचाह कोष वृष, वसनाभरन सरीर रे ।
द्रव्य निरत की परजै पलटनि, निरत विलोकि अमीर रे ।।२।।
सुनि त्रिभुवनपति राज सचीपति, सेवग मुनिगन धीर रे ।
'छत्त' चरित विराग भाव गहि, साधन आदि अखीर रे ।।३।।

रे भाई! आतम अनुभव कीजै.....

रे भाई! आतम अनुभव कीजै।।टेक।।
या सम सुहित न साधन दूजौ, ज्ञान द्रगन लखि लीजै ।।१।।
पुदगल जीव अनादि सजोगी, जो तिल तेल पतीजै ।
होत जुदौ तौ मिलौ कहां है, खलि मव प्रति दिठि दीजै ।।२।।
जीव चेतनामय अविनाशी, पुदगल जड मिलि छीजै ।
रागादिक पर-नमन भूलि निज, गये साम्य रग भीजै ।।३।।
निरउपाधि सरवारथ पूरन, आनन्द उदधि मुनीजै ।
'छत्त' तास गुन रत्न स्वाद ते, उदभव सुखरस पीजै ।।४।।

क्या सूझी रे जिय थाने.....

क्या सूझी रे जिय थाने, जो आपा आप न जाने।।टक।।
एक छेत्र अवगाह सजोगे, तन ही को निज माने ।।१।।
तू न फरस रस सुरभ वरन, जड तन इन मई न आने ।
उपसत नसत गलत पूरित नित, सुध्रुव सदा सयाने ।।२।।
जो कोई जन खाई धतूरा, तिन कल धौत वखाने ।
चिर अग्यान थकी भ्रम भूला, विपयनि मे चित साने ।।३।।
चाह दाह दाहचो न सिराये, पिये न बोध सुधाने ।
'छत्तर' कौन भाति सुख होवै, बडा अदेशा म्हाने ।।४।।

जग में बड़ी अंधेरी छाई.....

जग मे वडी अधेरी छाई, कहत कही नही जाई।।टेक।।
मिथ्या विपय कपाय तिमर, द्रग गहै न सुहित लखाई ।।१।।
स्व-पर प्रकाशक जिन श्रुत दीपक, पाइ अध अधिकाई ।
औरनि को हित पथ दरसावत, आप परे अध खाई ।।२।।
जिन आयस सरधान सर्वथा, क्रिया शक्ति समगाई ।
सो न ऊच पद धारि नीचकृति, करत न मूढ लजाई ।।३।।
जिनकी द्रिष्टि सुहित साधन पै, ते सदवृत्य धराई ।
धरम आसरे 'छत्त' जीव का, कौन सुगुरु फरमाई ।।४।।

६ जे सठ निजपद जोग्य क्रिया तजि.....

जे सठ निजपद जोग्य क्रिया तजि अन्य विशेष क्रिया सनमानै।
ते तरुमूल छेद लघु दीरघ साख रखा मन की विधि ठाने।।टेक।।
जो क्रम भग भखत भेषज कों बधै व्याधि यह ज्ञान न आनै।
तौ जिन आयस वाहिज साधन तीव्र कषाय काज नहिं जानै।।१।।
जिन आयस सरधान एक ही कियो सुदिढ दायक सुरथानै।
तौं वर क्रिया साथ साधन को क्यो न लहै जिन सम प्रभुताने।।२।।
जातै श्रुत सरधान स्वथा करौ क्रिया वृष थल पहिचाने।
'छत्त' जीव का लोक बडाई माहि कहा हित लखौ सयाने।।३।।

दरस ज्ञान चारित तप कारन.....

दरस ज्ञान चारित तप कारन, कारज इक वैराग्यपना है।
कारन काज अन्यथा मानत, तिनका मन मिथ्यात सना है।।टेक।।
तरुते बीज बीजते तरुवर, यो नहिं कारन काज मना है।
आप बधत वैराग बधावत, हरत सकल दुख दोष जना है।।१।।
जहा ज्ञान वैराग्य अवस्थित, तहा सहज आनन्द घना है।
विषै कषाय उपाधिक भावन की सतति नहिं उदित छना है।।२।।
नाम न ठाम न विधि आस्रव कौ, पुनि अवस्थित बध हना है।
'छत्त' सदा जयवत प्रवरतौ, कारन काज दुहू अपना है।।३।।

रे जिय तेरी कौन भूल यह.....

रे जिय! तेरी कौन भूल यह, जो गुरु सीख न मानै है रे।
जो अवोध व्याधी पियूष सम, भेषज हिये न आनै है रे।।टेक।।
जा करी दुखी भया है होगा, तिस ही मे चित सानै है रे।
विद्यमान भावी सुख कारन, ताहि न टुक सनमानै है रे।।१।।
परभावनि सो भिन्न ग्यान, आनन्द सुभाव न ठानै है रे।
अपर गेह सम्बन्ध थकी, सुख दुख उतपति बखानै है रे।।२।।
दुर्लभ अवसर मिला जात यह, सो कहा न तू जानै है रे।
'छत्त' ठठेरा का नभचर जो, निडर भया थिति थानै है रे।।३।।

निपुनता कहां गमाई राज.....

निपुनता कहा गमाई राज ।।टेक।।
मूढ भये परगुन रस राजे, खोयो सहज समाज ।।१।।
पुद्गल जीव मिश्र तन को, निज मानत धरि अहलाद ।
जो कन त्रिन भक्षत वारन, नहिं जानत भिन्न स्वाद ।।२।।
आनन्द मूल अनाकुलताई, दुख विभाव वस चाह ।
दुह का भेद-विज्ञान भये बिन, मिलत न शिवपुर राह ।।३।।
अव गुरु वचन सुधा पी चेतन, सरधौ सुहित विधान ।
मिथ्या विषय कषाय 'छत्त' तज, करि चिन्मूरति ध्यान ।।४।।

जो कृषि साधन करत बीज बिन.....

जो कृषि साधन करत बीज बिन, बोये अन्नलाभ नहिं होई।।टेक।।
तो पद जोग्य क्रिया बिन छुल्लक, ऐलक मुनि हितलाभ न होई ।।१।।
केवल भेष अलेख अमुख थल, धरम हास्य स्थानक सोई ।
श्रुत विचार उपवास आदि तप, उदर भरन साधन अवलोई ।।२।।
जिन आयस अनुकूल तुक्ष भी, निरापेक्ष वृष साधन जोई ।
बहु गुन पिड साम्य-रस-पूरन, साधे सुहित अहित सब खोई ।।३।।
प्रभुता सुजस प्रान पोषन के, हेत आचरौ धरम दोई ।
भव दुख नासरु सिव सुख साधन, 'छत्त' आदरौ मन मल धोई ।।४।।

जो भवितव्य लखी भगवंत.....

जो भवितव्य लखी भगवत, सु होय वही न अन्यथा होही ।टेक।।
यह सति वज्र-रेख ज्यो अविचल, वादि विकल्प करै जन यो ही ।।१।।
जे पूरव कृत कर्म शुभाशुभ, तास उदै फल सुख दुख होई ।
सो अनिवार निवारन समरथ, हुओ, न है, न होइगो कोई ।।२।।
मत्र जत्र मनि भेषजादि बहु, है उपाय त्रिभुवन मे जोई ।
सो सब साध्य काज को साधन, असाध्य साधे नहिं सोई ।।३।।
जाते सुख दुखरु जू होत नहि, हरष विषाद करौ भवि लोई ।
वरतमान भावी सुख साधन, 'छत्त' धरम सेवौ द्रिढ होई ।।४।।

१ जीव तू भ्रमत भ्रमत भव खोयो.....

जीव तू भ्रमत भ्रमत भव खोयो, जब चेत भयो तब रोयो।
सम्यग्दर्शन ज्ञान चरण तप, यह धन धूरि विगोयो।।टेक।।
विषय भोग गत रस को रसियो, छिन छिन मे अतिसोयो।।१।।
क्रोध मान छल लोभ भयो, तव इन ही मे उरझोयो।
मोहराय के किकर यह सब, इनके वसि है लुटोयो।।२।।
मोह निवास सवार सु आयो, आतम हित स्वर जोयो।
'बुध महाचन्द्र' चन्द्र सम होकर, उज्ज्वल चित रखोयो।।३।।

२ निजघर नाहिं पिछान्या रे....

निजघर नाहिं पिछान्या रे ।।टेक।।
मोह उदय होने तै मिथ्या भर्म भुलाना रे ।।१।।
तू तो नित्य अनादि अरूपी सिद्ध समाना रे ।
पुद्गल जड मे राचि भयो तू मूर्ख प्रधाना रे ।।२।।
तन धन जोवन पुत्र बधू आदिक निज माना रे ।
यह सब जाय रहन के नाही समझ सयाना रे ।।३।।
बालपन लडकन सग जोवन प्रिया जवान रे ।
वृद्ध भयो सब सुधि गई अब धर्म भुलाना रे ।।४।।
गई गई अब राख रही तू समझ सियाना रे ।
'बुध महाचन्द' विचारिकै निजपद नित्य रमाना रे ।।५।।

३ देखो! पुद्गल का परिवारा.....

देखो! पुद्गल का परिवारा, जामे चेतन है इक न्यारा।
स्पर्शन रसना घ्राण नेत्र फुनि, श्रवण पच यह सारा।।टेक।।
स्पर्श रस फुनि गध वर्ण, स्वर यह इनका विषयारा।।१।।
क्षुधा तृषा अर राग-द्वेष रुज, सप्त धातु दुख कारा।
बादर सूक्ष्म स्कध अणु आदिक, मूर्ति मई निरधारा।।२।।
काय वचन मन स्वासोछ्वास जू, थावर त्रस करि डारा।
'बुध महाचन्द' चेतकरि निशदिन, तजि पुद्गल पतियारा।।३।।

भाई! चेतन चेत सकै तो चेत.....

भाई! चेतन चेत सकै तो चेत अब, नातर होगी खुवारी रे।।टेक।।
लख चौरासी मे भ्रमता भ्रमता, दुरलभ नरभव धारी रे।
आयु लई तहा तुच्छ दोष तैं, पचम काल मझारी रे।।१।।
अधिक लई तब सौ वरषन की, आयु लई अधिकारी रे।
आधी तो सोने मे खोई, तेरा धर्म ध्यान विसरारी रे।।२।।
बाकी रही पचास वर्ष मे, तीन दशा दुखकारी रे।
बाल अज्ञान जवान त्रिया रस, वृद्धपने बल हारी रे।।३।।
रोग अरु शोक सयोग दु ख वसि, बीतत है दिनसारी रे।
बाकी रही तेरी आयु किती अब, सो तै नाहिं विचारी रे।।४।।
इतने ही मे किया जो चाहै, सो तू कर सुखकारी रे।
नही फसेगा फंद बिच पडित, 'महाचन्द्र' यह धारी रे।।५।।

राग-द्वेष जाके नहि मन में.....

राग-द्वेष जाके नहि मन मे हम ऐसे के चाकर हैं।
जो हम ऐसे के चाकर तो कर्म रिपू हम कहा करि है।।टेक।।
नहि अष्टादश दोष जिनू मे छियालीस गुण आकर है।
सप्त तत्व उपदेशक जग मे सोही हमारे ठाकुर है।।१।।
चाकरि मे कछु फल नहि दीसत तो नर जग मे थाकि रहै।
हमरे चाकरि मे है यह फल होय जगत के ठाकुर है।।२।।
जाकी चाकरि बिन नहि कछु सुख तातै हम सेवा करि है।
जाकै करणै तै हमरे नहि खोटे कर्म विपाक रहै।।३।।
नरकादिक गति नाशि मुक्तिपद लहै जु ताहि कृपा धर है।
चद्र समान जगत मे पडित 'महाचद्र' जिन स्तुति करिहै।।४।।

भूल्यो रे जीव तू पद तेरो.....

भूल्यो रे जीत तू पद तेरो।।टेक।।

पुद्गल जड मे राचि-राचि कर, कीनौ भववन फेरो।
जामन मरण जरा दौ दाझयो, भस्म भयो फल नरभव केरो।।१।।
पुत्र नारि बान्धव धन कारण, पाप कियो अधिकेरो।
तेरो मेरो यू करि मान्यु इन मे, नही कोई तेरो न मेरो।।२।।
तीन खड को नाथ कहावत, मदोदरी भरतेरो।
काम कला की फौज फिरी तब, राज खोय कियो नर्क बसेरो।।३।।
भूलि भूलि कर समझ जीव तू, अबहूँ औसर हेरो।
बुध महाचन्द्र जाणि हित अपणू, पीवो जिनवाग्गी जल केरो।।४।।

रे नर ! विपति में धर धीर.....

रे नर! विपति मे ़र धीर।।टेक।।

सम्पदा ज्यो आपदा रे ! विनश जै है वीर।।१।।
धूप छाया घटत बढै ज्यो, त्यो ही सुख दुख पीर।।२।।
दोष 'द्यानत' देय किसको, तोरि करम-जजीर।।३।।

रे मन! उलटी चाल चले.....

रे मन! उलटी चाल चले।।टेक।।

पर सगति मे भ्रमतो आयो, पर-सगतबन्ध फले।।१।।
हित को छॉड अहित सो राचै, मोह-पिशाच झले।
उठ उठ अन्ध सम्हार देख अब, भाव सुधार चले।।२।।
आओ अन्तर आतम के ढिग, पर को चपल टले।
परमातम को भेद मिलत ही, भव को भ्रमण गले।।३।।
मन के साथ विवेक धरो मित, सिद्ध स्वभाव वरे।
बिना विवेक यही मन छिन मे, नरक-निवास करे।।४।।
भेदज्ञान ते परमातम पद, आप आप उछरे।
'नन्दब्रह्म' परपद नहिं परसै, ज्ञान-स्वभाव धरे।।५।।

जिय ऐसा दिन कब आय है.....

जिय ऐसा दिन कब आय ह ।
सकल विभाव अभाव रूप ह्वै, चित विकलप मिट जाय है ।।टेक।।
परमातम मे निज आतम मे, भेदा-भेद विलाय है ।
औरो की तो चलै कहा फिर, भेद-विज्ञान पलाय है ।।१।।
आप आपको आपा जानत, यह व्यवहार लजाय है ।
नय परमान निक्षेप कही ये, इनको औसर जाय है ।।२।।
दरसन ज्ञान भेद आतम के, अनुभव माँहि पलाय है ।
'नन्दब्रह्म' चेतनमय पद मे नहि पुद्गलगुण भाय है ।।३।।

मूढ़ मन! मानत क्यों नहीं रे.....

मूढ मन! मानत क्यो नही रे ।।टेक।।
परद्रव्यन को डोलत रहता, फिरै गाठ की सपति खोता ।
डूब रसातल मारन गोता, सुख चाहत अर करत कुकर्म ।।१।।
चिर अभ्यास कियो जिनशासन, बैठे मार मारकर आसन ।
तदपि भयो विज्ञान प्रकाश न, मगन भयो लख तन को चर्म ।।२।।
अरे 'नैनसुख' हिय के अन्धे, मत कर नाम जतिन के गदे ।
अब तो त्याग जगत के धन्धे, कर सुकृत कर जतन धर्म ।।३।।

देखो! भूल हमारी, हम संकट पाये.....

देखो! भूल हमारी, हम सकट पाये ।
सिद्धसमान स्वरूप हमारा, डोलू जेम भिखारी ।।टेक।।
पर परिणति अपनी अपनाई, पोट परिग्रह धारी ।
द्रव्यकर्म वश भावकर्म कर, निजगल फासी डाली ।।१।।
नोकर्मन ते मलिन कियो चित, बाँधे बन्धन भारी ।
बोये बीज बबूल जिन्होने, खावे क्यो सहकारी ।।२।।
करम कमाये आगे आवे, भोगे सब ससारी ।
'नैनसौख्य' अब समता धारो, सतगुरु सीख उचारी ।।३।।

करम जड़ हैं न इनसे डर.....

करम जड है न इनसे डर, परम पुरुषार्थ कर प्यारे।
कि जिन भावो से बाधे है, उन्ही को अब उलट प्यारे।।टेक।।
शुभाशुभ पाप-पुण्यो को, सदा ही बॉधते जिय मे।
शुभाशुभ टालकर चेतन, तूॅ शुध उपयोग धर प्यारे।।१।।
तू जैसा शाश्वता निर्मल, परमदीपक परमज्योती।
तू आपा-पर को जाने रह, राग द्वेष न कर प्यारे।।२।।
जहॉ आतम अकेला है, वही उपयोग निर्मल है।
उसी मे निजचरण धरना, यही अभ्यास रख प्यारे।।३।।
तूॅ भवसागर सुखावेगा, निजातम भाव भावेगा।
'सुखोदधि' मे समावेगा, सदा समता-सहित प्यारे।।४।।

✓किस विधि किने करम चकचूर.....

किस विधि किये करम चकचूर।
थाकी उत्तम क्षमा पै जी अचभो म्हाने आवै।।
एक तो प्रभु तुम परम दिगम्बर, पास न तिल तुष मात्र हजूर।
दूजे जीव दया के सागर, तीजे सतोषी भरपूर।।
चौथे प्रभु तमु हित उपदेशी, तारण तरण जगत मशहूर।
कोमल वचन सरल सम वक्ता, निर्लोभी सजम तप-शूर।।
कैसे ज्ञानावरण निवारचो, कैसे गेरचो अदर्शन चर।
कैसे मोह-मल्ल तुम जीते, कैसे किये घातिया दर।।
त्याग उपाधि हो तुम साहिब, आकिचन व्रतधारी मूल।
दोष अठारह दूषण तज के, कैसे जीते काम क्रूर।।
कैसे केवलज्ञान उपायो, अन्तराय कैसे निर्मूल।
सुरनर मुनि सेवै चरण तिहारे, तो भी नही प्रभु तुमको गरूर।।
करत दास अरदास 'नैनसुख' येही वर दीजे मोहे दान जरूर।
जन्म-जन्म पद-पकज सेऊँ और नही कछ् चाह हजूर।।

जगत् में कोई नहीं रे मेरा ....

जगत् मे कोई नही रे मेरा ।
सब संशय को टाल देख लो, आप शुद्ध डेरा ।।टेक।।
क्यों शरीर में आपा लखकर, होत कर्म चेरा ।
वृथा मोह मे फसकर, करता है मेरा तेरा ।।१।।
है व्यवहार असत्य स्वप्न सम, नश्वर उलझेरा ।
कर निश्चय का ध्यान कि, जिससे होवे सुलझेरा ।।२।।
जीव जीवन सब एक सारखे, शुद्ध ज्ञान ढेरा ।
नही मित्र नहि अरी जगत मे, है सबहि हेरा ।।३।।
बैठ आप मे आपो भज लो, वही देव तेरा ।
'सुखसागर' पावेगा क्षण मे, होत न जग फेरा ।।४।।

निजरूप को विचार, ...

निजरूप को विचार निजानन्द स्वाद लो ।
भवभव मिटाय आप में, आपो सम्हार लो ।।टेक।।
अपना स्वरूप शुद्ध, वीतराग ज्ञानमय ।
निरमल फटिक समान, यही भाव धार लो ।।१।।
ये क्रोध मान आदि भाव, आत्मा के है विभाव ।
सुख शान्तिमय स्वभाव का, रूपक चितार लो ।।२।।
नही मान आतमभाव, है विकार कर्म का ।
मार्दव स्वभाव सार है, इस को विचार लो ।।३।।
माया नही निजात्म है, विकार मोह का ।
आर्जव स्वधर्म स्वच्छ, यही तत्त्व धार लो ।।४।।
नहि लोभ है स्वरूप, है चारित्र-मोहिनी ।
शुचिता अपार सार, इसे ही सम्हार लो ।।५।।
चारो कषाय शत्रु, निजातम के है प्रबल ।
इनके दमन के हेतु, आत्म-ध्यान धार लो ।।६।।
सब कर्ममल निवारिये, यदि शिव की चाह है ।
'सुखदधि' विशाल आप, सुखकन्द सार लो ।।७।।

स्वसंवेदन सुज्ञानी जो.....

स्वसवेदन सुज्ञानी जो, वही आनन्द पाता है।
न पर का आसरा करता, सदा निजरूप ध्याता है।।टेक।।
न विषयो की कोई चिन्ता, उसे बेजार करती है।
लखा विषरूप है जिसको, वह क्यो कर याद आता है।।१।।
कषायो की लहरे न है, जिसके जल को लहराती।
जो निश्चल मेरुसदृश है, पवन घन ना हिलाता है।।२।।
जो चिन्ता है वही दुख है, जो इच्छा है वही दुख है।
है जिसने अपनी निधि देखी, नही फिकरो मे जाता है।।३।।
है तन से गरचे व्यवहारी, मगर मन से रहे निश्चल।
वही सत ध्यान का कन है, जो कर्मो को जलाता है।।४।।
सुधा की बूँद लेकर वह, इक सागर बनाता है।
इसी का नाम 'सुखोदधि' है, उसी मे डूब जाता है।।५।।

जगत जंजाल से हटना.....

जगत जजाल से हटना, सुगम भी है कठिन भी है।
परम सुखसिन्धु मे रमना, सुगम भी है कठिन भी है।।टेक।।
है कायरता बडी जामे, इसे वशकर सुवीरज से।
निजातम-भूमि मे जमना, सुगम भी है कठिन भी है।।१।।
पर शत्रू है रागादी, इन्हे वशकर सुवीरज से।
सुसमता का अनुभवना, सुगम भी है कठिन भी है।।२।।
करोडो भाव आ आकर, मनोहरता बता जाते।
न इनके मोह मे पडना, सुगम भी है कठिन भी है।।३।।
करम जड है न कुछ करते, चले जाते स्वमारग से।
अबन्धक शाश्वता रहना, सुगम भी है कठिन भी है।।४।।
कषायो की जलन जिसको, वही तन को जलाती है।
चिदानन्द 'सुखसागर', सुगम भी है कठिन भी है।।५।।

अरे मन! कर ले आतम-ध्यान.....

अरे मन ! कर ले आतम-ध्यान ।।टेक।।
कोई नही अपना इस जग मे, क्यो होता हैरान ।।१।।
जासे पावे सौख्य अनूपम, होवे गुण अमलान ।
निज मे निज को देख देख मन, होवे केवलज्ञान ।।२।।
अपना लोक आप मे राजत, अविनाशी सुखदान ।
'सुखसागर' नित वहे आपमे,कर मन्जन रजहान ।।३।।

आतम-स्वरूप सार को,.....

आतम-स्वरूप सार को, जाने वही ज्ञानी ।
है मोक्षपन्थ रूप वही, मोक्ष-विज्ञानी ।।टेक।।
है यह अनेक धर्मरूप, गुण – मई आतम ।
एकान्त नय ना देख सके, आत्म सुज्ञानी ।।१।।
कोई कहे वह शुद्ध है, कोई कहे अशुद्ध ।
है शुद्ध भी अशुद्ध भी, यह जैन की वानी ।।२।।
है कर्म-वन्ध इसलिये, अशुद्ध यह आतम ।
स्वभाव से है शुद्ध यही बात प्रमानी ।।३।।
कोई कहे नित्य कोई, कहे है अनित्य कोई ।
यह नाशरहित गुणमई है नित्य सुज्ञानी ।।४।।
पर्याय पलटता रहे, हो मैल से उजला ।
परिणाम मई तत्त्व मे, अनित्यता मानी ।।५।।
करता है निजस्वभाव का, पर का नही करता ।
भोगता है स्वस्वभाव का, यह बात सुहानी ।।६।।
है मोह ने अज्ञान मे, इसको फँसा डाला ।
सुज्ञान-भाव धारते हो, आत्म महानी ।।७।।
भवदधि से निकलने का, यही मार्ग निराला ।
पाता है 'सुख उदधि' को, न जिसका कोई सानी ।।८।।

मुझे निर्वाण पहुँचन की.....

मुझे निर्वाण पुहुँचन की, लगी लो है अनादि से।
मै किस विध कार्य साधूँगा, यही इच्छा अनादि से।।टेक।।
लिया व्यवहार का सरना, न निश्चय से करो मिल्लत।
इसी से हो रहा रुलना, चतुर्गति मे अनादि से।।१।।
परम निश्चय उमड आया, कि पाया आप का दर्शन।
मिटाया ध्यान सब पर का, जो छाया था अनादि से।।२।।
लखा निज को कि ये ही है, परम आतम परमज्ञानी।
यही सुख-शान्ति-सागर है, न जाना था अनादि से।।३।।
मुझे निजदुर्ग मे वसना, जहाँ आना न कर्मो का।
ओ 'सुखसागर' नहाना है, न पाया था अनादि से।।४।।

परम रस है मेरे घट में.....

परम रस है मेरे घट मे, उसे पीना कठिन सुन ले।
जगतरस मे जो भीगे है, उन्हे समरस कठिन सुन ले।।टेक।।
है भव-आताप दुखदाई, किसी ने चैन ना पाई।
जो इनके सग मे उलझे, उन्हे शिवसुख कठिन सुन ले।।१।।
प्रथमपद मे जो कॉटे है, उन्हीं से छिद रहा यह तन।
जो भेदज्ञान का शस्तर, उसे पाना कठिन सुन ले।।२।।
बचाकर रखना आपे को, है सूराई परम अद्भुत।
जो भवथिति नाश कर लेते, न निजसुख कुछ कठिन् सुन ले।।३।।
जो 'सुखोदधि' मे रहे लवलीन, उन्हे बेकार कह दीजे।
परखना ऐसे पुरुषो का, जगत मे है कठिन सुन ले।।४।।

जाको मन लगौ निजरूपहिं....

जाको मन लगौ निजरूपहिं, ताहि और क्यो भावै।।टेक।।
ज्यो अटूट धन लहै रक कहुँ, और न काहु दिखावै।।१।।
गुण अनत प्रगटै जिह थानक, ता पटतर को भावै।।२।।
इहविधि हस सकल सुखसागर, आपुहि आप लखावै।।३।।

इक जोगी आसन बनावे.....

इक जोगी आसन बनावे, तसु भखत असन अघ नसन होत।।टेक।।
ज्ञान-सुधारस जल भर लावे, चूल्हा-शील जलावे।
कर्म-काष्ठ को चुग-चुग जारे, ध्यान-अगनि प्रजलावे।।१।।
अनुभव-भाजन निजगुण-तन्दुल, समता-क्षीर मिलावे।
सोऽह मिष्ट निशंकित व्यजन, समकित-छौक लगावे।।२।।
स्याद्वाद सतभग मसाले, गिनती पार न पावे।
निश्चयनय का चमचा फेरे, विरद भावना भावे।।३।।
आप बनावे आप ही खावे, खावत नाहि अघावे।
तदपि मुक्ति पद-पकज सेवे, 'नयनानन्द' शिर नावे।।४।।

जो आनन्द निजघट में.....

जो आनन्द निजघट मे, नही पर मे प्रगट होता।।टेक।।
जो ज्ञानी निजानन्द का, नही दुख सुख उसे होता।।१।।
करोडो रोग अर व्याधि, अगर तन मन मे आती है।
निराश होकर चली जाती, असर घट पै नही होता।।२।।
कहॉ सुवरण कहॉ लोहा, रतन अर कॉच का अन्तर।
कहॉ है चेतना सुखमय, कहॉ जडरूप है थोता'।३।।
जो जड मे मोह करते हैं, वही भव मे विचरते है,।
उन्ही को राग द्वेषो मे, क्षणिक सुख-दुख निकट होता।।४।।
जो अपनी निधि का है स्वामी, उसे क्या और धन चहिये।
वह 'सुखसागर' मगन रह के, सुज्ञानानन्द-मय होता।।५।।

करो मन! आतम वन में केल.....

करो मन ! आतम वन मे केल।।टेक।।
होय सफल नरभव यह दुर्लभ, हो शिवरमणीमेल।
भवबाधा मिट जाय क्षिनक मे, छूटे कर्मनजेल।।१।।
निजानन्द पावे अविनाशी, मिटि है सकल दलेल।
निजराधासग राचो हरदम, हो 'सुखसागर' खेल।।२।।

निजरूप सजो भवकूप तजो....

निजरूप सजो भवकूप तजो, तुम काहे कुरूप बनावत हो।।टेक।।
चितपिंड अखड प्रचड जिया, तुम रत्नकरड कहावत हो।।१।।
स्वर्गादिक मे पछतावत हैं, नरदेह मिलै तो करै तप को।
अब भूलि गये मद फूल गये, प्रतिकूल भये इतरावत हो।।२।।
दुख नर्क निगोद विशाल तहा, अति शीत रु उष्ण सहे तुमने।
वहा ताती त्रिया लिपटाते तुम्हे, फिरहू मद मे लपटावत हो।।३।।
त्रस थावर त्रास सहे बधन, बध छेदन भेदन भूख सहा।
सुख रच न सच करो तुम क्यो, परपचन मे उलझावत हो।।४।।
तेरे द्वारो पे कर्म-किवार लगे, तापै मोह ने ताला लगाया बडा।
सम्यक्त्व की कुजी से खोल भवन, 'कुजी' क्यो देर लगावत हो।।५।।

समझि औसर पायो रे जिया.....

समझि औसर पायो रे जिया।।टेक।।
तै परकू करि मान्यो यातैं, आपा कू विसरायौ रे।।१।।
गल बिचि फांसि मोह की लागी, इन्द्रिय सुख ललचायौ रे।
भ्रमत अनादि गयौ ऐसे ही अजहूँ वोर (ओर) न आयौ रे।।२।।
करत फिरत पर की चिंता तू, नाहक जन्म गमायौ रे।
जिन साहिब की वाणी उर धरि, शुद्ध मारग दरसायो रे।।३।।

मन मेरे की उलटी रीति.....

मन मेरे की उलटी रीति।।टेक।।
जिनि जिनि ते तू दुख पावत है, तिन ही सौ पुनि प्रीति।।१।।
वर्ग विरोधउ होइ आपुसौ, परुसौ अधिक समीति।
डहकतु वार वारजि परिग्रह, तिन ही की परतीति।।२।।
गफिल भयौ रहतु यह सतत, बहु तै करतु अनीति।
इतनी सका मानतु नाही, जु वैरनि माँहि वसीति।।३।।
मेरे कहै सुने नही मानतु, हौ इहि पायौ जीति।
'रूपचन्द' अब हारि दाउ दयौ, कहा बहुत कैफीति।।४।।

जगत में आत्मपावन को.....

जगत मे आत्मपावन को, समझना काम भारी है।।टेक।।
वही ज्ञानी है जिसने आतम, निधि अनुपम सम्हारी है।।१।।
उन्हे हरवक्त भेदज्ञान की, परम रचना सुहाती है।
कि जिससे आप मे आपी, छटा उठती करारी है।।२।।
करोडो भाव दिन पर दिन, जो आते है चले जाते।
जो है इक शुध उपयोगी, उसी की शान प्यारी है।।३।।
न भवसागर से है मतलव, न कुछ करना न कुछ धरना।
करो अनुभव मु आतम का, यही शिक्षा सुखारी है।।४।।

√चेतन इह घर नाहीं तेरो.....

चेतन इह घर नाही तेरो।।टेक।।
घट पदादि नैनन गोचर जो, नाटक पुद्गल केरो।।१।।
तात मात कामनि सुत बन्धु, करम बध को घेरो।
करि है गौन आनगति को जब, को नहिं आवत नेरौ।।२।।
भ्रमत भ्रमत ससार गहन वन, कीयो आनि बसेरो।
मिथ्या मोह उदै तै समझो, इह सदन है मेरो।।३।।
सद्गुरु वचन जोइ घर दीपक, मिटै अनादि अधेरो।
असख्यात परदेस ग्यान मय, ज्यो जानहु निज मेरो।।४।।
नाना विकलप त्यागि आपको आप आप महि हेरो।
ज्यो 'मनराम' अचेतन परसो सहजै होइ निवेरो।।५।।

जनमु अकारथ ही जु गयौ.....

जनमु अकारथ ही जु गयौ।।टेक।।
धरम अरथ काम पद तीनौं, एको करि न लयौ।।१।।
पूरब ही सुभ करमु न कीनौं, जु सब विधि हीनु भयौ।
औरो जनमु जाई जिहि इहि विधि, सोई बहुरी ठयौ।।२।।
विषयनि लागि दुसह दुख देखत, तबहू न तनकु नयौ।
'रूपचद' चित चेत तू नाही, लाग्यौ हो तोहि दयौ।।३।।

दुनियाँ में सबसे न्यारा, यह आत्मा.....

दुनियाँ मे सबसे न्यारा, यह आतमा हमारा।
सब देखन जाननहारा, यह आतमा हमारा।।टेक।।
यह जले नही अग्नि मे, भीगे न कभी पानी मे
सूखे न पवन के द्वारा, यह आत्मा हमारा।।१।।
शस्त्रो से कटे न काटा, नहि तोड सके कोई भाटा।
मरता न मरी का मारा, यह आत्मा हमारा।।२।।
माँ बाप सुता सुत नारी, झुठे झगडे ससारी।
नहि कोई देत सहारा, यह आत्मा हमारा।।३।।
मत फँसे मोह ममता मे, 'मक्खन' आजा आपा मे।
तन धन कुछ नही तुम्हारा, यह आत्मा हमारा।।४।।

समझि मन इह औसर फिरि नाहीं.....

समझि मन इह औसर फिरि नाही।।टेक।।
नरभव पाय कहा कहिये तोहि, रमत विषै सुख माही।।१।।
जा तन सौ तप तपै सुगति ह्वै, दुरगति दूरि नसाही।
ताकू तू नित पोषत है रे, आप अकाज कराही।।२।।
धन कौ पाय धरम कारिज, करि उद्यम लाही।
जोवन पाय सील भजि भाई, ज्यौ अमरापुर जाही।।३।।
तन धन जोवन पाय लाय इम, सुमरि देव निज जाई।
ज्यौ 'जगराम' अचल पद पावो, सदगुरु यौ समझाही।।४।।

कहा तू वृथा रह्यो मन मोहि.....

कहा तू वृथा रह्यो मन मोहि।।टेक।।
तू सरवज्ञ सरवदरसी को, कहि समुझावहि तोहि।।१।।
तजि निज सुख स्वाधीनपनौ कत, रह्यो परबस जड जोहि।
घर पचामृत मागतु भीख जु, यह अचिरज चित मोहि।।२।।
सुख लवलेस लहयउ न कहू फिरि, देखे सब पद टोहि।
'रूपचद' चित चेति चतुरमति, स्वपद लीन किन होहि।।३।।

ऐसे होरी खेलो हो चतुर खिलारि.....

ऐसे होरी खेलो हो चतुर खिलारि।।टेक।।
धर्म थान जहँ सब सज्जन जन, मिलि बैठो इकठार।।१।।
ज्ञान सलिल पूरण पिचकारी, वानी वरषा धार।
झेलत प्रेम प्रीति सौ जेते, धोवत करम विकार।।२।।
तत्वन की चरचा शुभ चोबो, 'चरचौ बारबार।
राग गुलाल अबीर त्याग, भरि रग रगो सुविचार।।३।।
अनहद नाद अलापो जामै, सोहे सुर झकार।
रीझ मगनता दान त्याग कर 'धर्मपाल' सुनि यार।।४।।

√जिया तू दुख से काहे डरे रे.....

जिया तू दुख से काहे डरे रे।।टेक।।
पहली पाप करत नहि शक्यो अब क्यो सास भरे रे।।१।।
करम भोग भोगे ही छुटेगे शिथिल भये न सरे रे।
धीरज धार मार मन ममता, जो सब काज सरे रे।।२।।
करत दीनता जन जन पे तु कोई न सहाय करे रे।
धर्मपाल' कहै सुमरो जगपति वे सब विपति हरे रे।।३।।

कहा परदेशी को पतियारो.....

कहा परदेशी को पतियारो।।टेक।।
मन माने तब चलै पन्थ को, साँझ गिने न सकारो।
सबै कुटुम्ब छाँड इतही पुनि, त्याग चले तन प्यारो।।१।।
दूर दिशावर चलत आपही, कोउ न राखन हारो।
कोऊ प्रीति करो-किन कोटिन, अन्त होयगो न्यारो।।२।।
धन सो रांचि धर्म सो भूलत, झूलत मोह मँझारी।
इह विधि काल अनन्त गमायो, पायो नहि भव पारो।।३।।
साँचे सुख सो विमुख होत है, भ्रम मदिरा मतवारो।
चेतहु 'चेत' सुनहु रे भइया, आपहि आप सभारो।।४।।

कहॉ से आये हो चेतन.....

कहॉ से आये हो चेतन, कहॉ को होवेगा जाना।
पथिक जन सोचकर मन मे, मुझे यह बात बतलाना।।टेक।।
मेरा है बास साधारण, जहॉ नही स्वास भर जीना।
दुखो से लडफडाता हूॅ, तहॉ से निकस चल दीना।।
असख्याते नगर घूमा, मगर रचना से पहिचाना।।१।।
चतुरशीति लाख धर बाने, नगर नरपुर मे आया हूॅ।
कहॉ लो दुख कहूॅ अपना, करम का मै सताया हूॅ।।
कहो स्वामी करूॅ क्या मै, मुझे कुछ स्वहित बतलाना।।२।।
गुरू उपदेश देते है, नगर निजमान तन लीना।
नगर तुमरा निजातम है, इसे तुम छोड क्यो दीना।।
लखो तुम नगर अपने को, करो इस ही मे निज थाना।।३।।
बिना दृग ज्ञान चारित के, नही निज थान पाओगे।
सम्हालोगे नही आये जहॉ से, वहॉ ही जाओगे।।
भला उपदेश सतगुरु का है, जो 'चम्पा' के मन माना।।४।।

आतम अनुभव करना रे, भाई.....

आतम अनुभव करना रे, भाई।।टेक।।
और जगत की थोती बाते, तिनके बीच न परना रे।
काल अनन्ते दिन यो बीते, एकौ काज न सरना रे।।१।।
अनुभव कारन श्री जिनवानी, ताही को उर धरना रे।
या बिन कोउ हितू ना जग मे, छिन इक नाहि विसरना रे।।२।।
आतम अनुभव तै शिवसुख हो, फेर नही जहॉ मरना रे।
और बात सब बन्ध करत है या रति बन्ध कतरना रे।।३।।
पर परिणति ते परवश पर है, ताते फिर दुख भरना रे।
'चम्पा' याते पर-परिणति तजि, निज रचि काज सुधरना रे।।४।।

अब मेरे चेतन अनुभव आयो.....

अब मेरे चेतन अनुभव आयो, और कछु न सुहायो।
पर से ममता छूटन लागी, स्व रस सुखानद भायो।।टेक।।
पर मे आपो मान सदा ही, भोगन मे लिपटायो।
जड की सेवा युग-युग कीनी, जीवन व्यर्थ गमायो।।१।।
मिथ्या भ्रम तम भागन लागे, ज्ञान प्रकाश सुहायो।
वस्तुस्वरूप समझ मैं आयो, झूठो ही भरमायो।।२।।
ज्ञाता दृष्टा स्वभाव तुम्हारो, सत् गुरू यो समझायो।
पर मे कर्ता बुद्धि हटे अब, स्व मे स्व सुख पायो।।३।।
जो कुछ होना होता वह है, को परिणमन रुकायो।
राग द्वेप ममता माया मे, नाहक ही भरमायो।।४।।
ज्ञान उदधि सुख अमृत पूरण, कैसी प्यास सतायो।
स्व की ओर निहार 'भवर' अब, सुखसागर लहरायो।।५।।

ये आत्मा क्या रंग, दिखाता नये नये.....

ये आत्मा क्या रग, दिखाता नये नये।
बहुरूपिया ज्यो भेष, बनाता नये नये।।टेक।।
धरता है स्वाग देव का, स्वर्गो मे जाय के
करता किलोल देवियो के, सॅग नये नये।।१।।
गर नर्क मे गया तो, रूप नारकी धरा।
लखि मार पीट भूख प्यास, दुख नये नये।।२।।
तिर्यञ्च मे गज बाज वृषभ, महिप मृग अजा।
धारे अनेक भाति के, काबिल नये नये।।३।।
नर नारि नपुॅसक बना, मानुष की योनि मे।
फल पुन्य पाप के उदय, पाता नये नये।।४।।
'मक्खन' इसी प्रकार भेष, लाख चौरासी।
धारे बिगारे बार बार, फिर नये नये।।५।।

जिन धर्म ही दाता मुक्ति का,.....

जिन धर्म ही दाता मुक्ति का, सुख पालो जिसका जी चाहे।
है जन्म-मरण-दुख हरण औषधि, खालो जिसका जी चाहे।।टेक।।
यह स्यादवाद निर्भेद किला, नही लगे कुतर्कों के गोले।
षट्दर्शन अपनी तोपो से अजमा लो जिसका जी चाहे।।१।।
है राग-द्वेष बिन देव गुरू, निर्ग्रंथ दया मई धर्म जहॉ।
है आदि अन्त अविरुद्धागम, पढ़ डालो जिसका जी चाहे।।२।।
इस सृष्टि का नही आदि-अन्त, है स्वयंसिद्ध रचना यू ही।
नही कर्त्ता-हर्त्ता है कोई, बतला लो जिसका जी चाहे।।३।।
युक्ति प्रमाण नय निक्षेपो से, है द्रव्य पदार्थ तत्व वर्णन।
यदि हो इसमे कुछ भी सन्देह, निकालो जिसका जी चाहे।।४।।
नहीं सत का होता नाश कभी, नही असत् कभी पैदा होता।
यह जिनमत का सिद्धान्त अटल, अजमा लो जिसका जी चाहे।।५।।
ससार अथायी सागर से, जिनदेव बिना कौन पार करे।
'मक्खन' रत्नत्रय नौका पे, चढ चालो जिसका जी चाहे।।६।।

मोहि सुन-सुन आवे हॉसी,.....

मोहि सुन-सुन आवे हॉसी, पानी मे मीन पियासी।।टेक।।
ज्यो मृग दौडा फिरे विपिन मे, ढूढे गन्ध वसे निजतन में।
त्यो परमातम आतम मे शठ, पर मे करे तलासी।।१।।
कोई अँग भभूति लगावे, कोई शिर पर जटा चढावे।
कोई पञ्च अगनि तपता है, रहता दिन रात उदासी।।२।।
कोई तीरथ बन्दन जावे, कोई गगा जमुना न्हावे।
कोई गढ गिरनार द्वारिका, कोई मथुरा कोई काशी।।३।।
कोई वेद पुरान टटोले, मन्दिर मस्जिद गिरजा डोले।
ढूढा सकल जहान न पाया, जो घट घट का वासी।।४।।
'मक्खन' क्यो तू इत उत भटके, निज आतमरस क्यो नहिं गटके।
जन्म-मरण दुख मिटै कटे, लख चौरासी की फॉसी।।५।।

जाना नहीं निज आत्मा.....

जाना नही निज आत्मा, ज्ञानी हुए तो क्या हुए।
ध्याया नही शुद्धात्मा, ध्यानी हुए तो क्या हुए।।टेक।।
ग्रन्थ सिद्धान्त पढ लिये, शास्त्री महान बन गये।
आत्मा रहा बहिरात्मा, पण्डित हुए तो क्या हुए।।१।।
पच महाव्रत आदरे, घोर तपस्या भी करी।
मन की कषाये ना मरी, साधु हुए तो क्या हुए।।२।।
माला के दाने हाथ मे, मनुआँ फिरे बाजार मे।
मन की नही माला फिरे, जपिया हुए तो क्या हुए।।३।।
गा के बजा के नाच के, पूजा भजन सदा किये।
निज ध्येय को सुमरा नही, पूजक हुए तो क्या हुए।।४।।
मान बढाई कारणे, दाम हजारो खरचते।
भाई तो भूखो मरे, दानी हुए तो क्या हुए।।५।।
दृष्टी न अन्तर फेरते, औगुन पराये हेरते।
'शिवराम' एक हि नाम के, शायर हुए तो क्या हुए।।६।।

√अरे हम आतमराम हैं.....

अरे हम आतमराम है।।टेक।।
चेतन ज्योति स्वरूप निरजन, यो तो हजारो नाम है।।१।।
न हम गोरे श्वेत वरण के, न हम कारे राम है।
न हम खट्टे न हम मीठे, हम समरस परिणाम है।।२।।
गन्ध न शब्द न हल्के भारी, न हम चिकने चाम है।
न हम देव पशु नर नारक, षण्ड पुरुष नही वाम है।।३।।
क्षत्रिय विप्र न वैश्य न शूद्र, हम निर्भय निष्काम है।
काशी न मथुरा तीर्थ हमारा, हम परमानन्द धाम है।।४।।
न हम रागी, न हम द्वेषी, दोषरहित गुणधाम है।
है परमातम सिद्ध चिदातम, हम जिनवर 'शिवराम' है।।५।।

समझ कर देख ले चेतन.....

समझ कर देख ले चेतन, जगत बादल की है छाया ।
कि जैसे ओस का पानी, या सुपने मे मिली माया ।।टेक।।
कहॉ है राम औ लक्षमन, कहॉ सीता सती रावन ।
कहा है भीम औ अर्जुन, सभी को काल ने खाया ।।१।।
जमाये ठाट यहा भारी, बनाये बाग महल वारी ।
यह सपति छोड गये सारी, नही रहने कोई पाया ।।२।।
क्यो करता तू तेरी मेरी, नही मेरी नही तेरी ।
हो पलकी पल मे सब ढेरी, तुझे किसने है बहकाया ।।३।।
किसी का तू नही साथी, न तेरा कोई सगाती ।
यू ही दुनिया चली जाती, न कोई काम कुछ आया ।।४।।
महादुर्लभ है ये नरभव, रहा है मुफ्त मे क्यो खो ।
अरे 'शिवराम' ना अब सो. कि अवसर तेरा बन आया ।।५।।

अपनी शक्ति सम्हार चेतन.....

अपनी शक्ति सम्हार, चेतन कर ले निज उपकार ।।टेक।।
जो अपनो उपकार करत है, उससे पर उपकार बनत है ।
हुआ सत्य निर्धार, चेतन कर ले निज उपकार ।।१।।
क्षणभगुर पुद्गलमयी काया क्यो इससे स्नेह लगाया ।
बुद बुद जल उनहार चेतन कर ले निज उपकार ।।२।।
हुये अनन्ते काल भ्रमते, पच परावर्तन दुख सहते ।
पर मे आपा विचार, चेतन कर ले निज उपकार ।।३।।
परवस्तु को पर जान लिया, अपने को पहचान लिया ।
अपना ले आधार, चेतन कर ले निज उपकार ।।४।।
अपने मे थिर रहे शिव पावे, जन्म-जरा-मृतु रोग मिटावे ।
समयसार अविकार, चेतन कर ले निज उपकार ।।५।।
'निर्मल' परिणति हो जब तेरी, मिटती तीन जगत फेरी ।
सिद्ध सुगुण मन धार, चेतन कर ले निज उपकार ।।६।।

ापना भाव उर धरना प्यारे जी.....

ापना भाव उर धरना प्यारे जी, अपना भाव सुखदान बडा '
ापना भाव जिनने उर धारा, तिन पाया शिव थान बडा ।।टेक।।
रभव पाय चतुर मति चूकै, यह मौका हितदान बडा ।
ो करना सो निजहित करलै चिंतामणि सम जान बडा ।।१।।
ान जोवन बादल की छाया, क्यो इसमे ललचाता है ।
न ही भावन तै सुन प्यारे, कर्म अरी भरमाता है ।।२।।
ान सबध करम की छाया, इन सबमे तू न्यारा है ।
। जड प्रगट अचेतन प्यारे, तू सब जाननहारा है ।।३।।
ाग-द्वेष मद-मोह छोड कै, वीतराग परिनाम किया ।
ूरन ब्रह्म परम पद पावन, आप 'जिनेश्वर' सरन लिया ।।४।।

आपके हिरदै सदा सुविचार करना चाहिये.....

आपके हिरदै सदा सुविचार करना चाहिये ।
ापकर निजरूपका निरधार करना चाहिये ।।टेक।।
याग कै पर की झलक, निज भाव को निरखा करो ।
चढि वीतरागता शिखर फिर ना उतरना चाहिये ।।१।।
धारि कै समता सहज, तज दीजिये ममता सबै ।
लोभ विषयनि के विषै, नाहक ना गिरना चाहिये ।।२।।
ज्ञान निज-पर को सजन, कल्यान की सूरत यही ।
संसार-सागर पार यो, जल्दी से तिरना चाहिये ।।३।।
श्रद्धा समझकर आचरन, जिनराज का मारग यही ।
हितदाय 'जिनेश्वर' धर्म को, इख्त्यार करना चाहिय ।।४।।

नैना लाग रहे मोरे,.....

नैना लाग रहे मोरे, जिन चरणन की ओर ।।टेक।।
निरखत मूरत तेरी नैना, जैसे चन्द-चकोर ।।१।।
जैसे चातक चहत मेघ को, घन गरजत जिमि मोर ।।२।।
'ज्ञान' कहे धन भाग्य हमारा, बन्दे दोउ कर-जोर ।।३।।
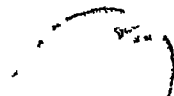
जिनधर्म रत्न पाय के स्वकाज ना किया.....

जिनधर्म रत्न पायके स्वकाज ना किया।
नरजन्म पायके वृथा गमाय क्यों दिया।।टेक।।
अरहतदेव सेव सर्व सुक्ख की मही।
तज के कुधी कुदेव की अराधना गही।।१।।
पण अक्ष तो परतच्छ, स्वच्छ ज्ञान को हरै।
इनमे रचे कुजीव जे कुजोनि मै परै।।२।।
परसग के परसगतै, परसग ही किया।
तजके सुधा स्वरूपको, जलक्षार ही पिया।।३।।
मद- मोह- काम- लोभ की, झकोर मे परो।
तज इनको ये वैरी बडे, लखि दूर से डरो।।४।।
हिरदै प्रतीत कीजिये, सुदेव धर्म की।
तजि राग-दोष- मोह, ओ कुटेव कर्म की।।५।।
सजि वीतरागभाव जो स्वभाव आपना।
विधिबध फद के निकद, भाव आपना।।६।।
मन का करो निरोध, बोध सोध लीजिये।
तजि पुण्य पाप बीज, आप खोज कीजिये।।७।।
सद्धर्म का यह भेव श्री, गुरुदेव ने कहा।
शिववास काज यो, 'जिनेशदास' ने गहा।।८।।

जतन बिन कारज बिगरत भाई.....

जतन बिन कारज बिगरत भाई।
प्रभु सुमरन ते सब सुधरत है, ता मै क्यौ अलसाई।।
विषै लीनता दुख उपजावत, लागत जहा ललचाई।
चतुरन कौ व्यौहार नय जहाँ, समझ न परत ठगाई।।
सतगुरू शिक्षा अमृत पीबौ, अब करन कठोर लगाई।
ज्यौ अजरामर पद कौ पावौ, 'जगतराम' सुखदाई।।

मुझे ज्ञानशुचिता सुहाई हुई है.....

मुझे ज्ञानशुचिता सुहाई हुई है, परम शान्तता दिल मे भाई हुई है ।।
जहा ज्ञान सम्यक् नही खेद कोई, निजानन्द परता जमाई हुई है ।
नही रागद्वेषौ, नही मोह कोई, परम-ब्रह्म-रुचिता वढाई हुई है ।।
जगत नाट्यशाला नटन जो कि करता वही शुद्धता नित्य छाई हुई है ।
करूँ ध्यान हरदम उसीका खुशी हो, स्व सुखसिन्धु मे प्रीति लाई हुई है ।।

जान लियो मैं जान लियो.....

जान लियो मै जान लियो, आपा प्रभु मै जान लियो।।टेक।।
परमेश्वर मे सेवक को भ्रम, एक छिनक मे दूर कियो।।१।।
परमेश्वर की मूरत मे ही, ज्ञानसिन्धुमय पेख लियो।
मरमी होय परख सो जाने, औरन को है सुन्न हियो।।२।।
याहि जान मुनि ज्ञानध्यान वल, छिन मे शिवपद सिद्ध कियो।
अंरहत सिद्ध सूरि गुरु मुनिपद, एक आतम उपदेश कियो।।३।।
जो निगोद मे सो अपने मे, शिवथानक सोई लखियो।
नन्दब्रह्म' यह रञ्च फेर नहिं, बुधजन योग्य जो गहियो।।४।।

चेतन अँखियाँ खोलो ना.....

चेतन अँखियाँ खोलो ना, तेरे पीछे लागे चोर।।टेक।।
मोहरूप-मद पान करे रे, पडे हुए वे सुद्ध।
नयना मीचे सो रहे रे, हित की खोई वुद्धि।।१।।
याहि दशा लख तेरी चेतन, लीनो इन्द्रिन घेर।
लूटी गठरी ज्ञान की रे, अब क्यो कीनी देर।।२।।
फॉसी कर्मन डाल गले रे, नरक माहि दे गेर।
पडे वहॉ दुख भोगने रे, कहा करोगे फेर।।३।।
जागो चेतन चातुरा तुम, दीजो निद्रा त्याग।
ज्ञान खड्ग लो हाथ मे रे, इन्द्रिय ठग जाय भाग।।४।।
उत्तम अवसर आ मिलो रे, छाडो विषयन प्रीत।
'ज्योति' आतम हित करो रे, जाय न असर वीत।।५।।

अरे मन ! आतम को पहिचान.....

अरे मन ! आतम को पहिचान, जो चाहत निज कल्यान।।टेक।।
मिल जुल संग रहत पुद्गल के, ज्यो तिल तेल मिलान।
पर है आतम भिन्न पुद्गल से, निश्चय नय परमान।।१।।
इन्द्रिन रहित अमूरत आतम, ज्ञानमयी गुण खान।
अजर अमर अरु अलख लखै नहिं, ऑख नाक मुँह कान।।२।।
तन सम्बन्धी सुख दुख जाको, करत लाभ नहिं हान।
रोग शोक नहिं व्यापत जाको, हर्ष विषाद न आन।।३।।
अन्तरात्मा भाव धार कर, जो पावे निर्वान।
ज्ञानदीपकी 'ज्योति' जगा लख, आतम अमर सुजान।।४।।

अब हम अमर भये न मरेंगे.....

अब हम अमर भये न मरेगे, हमने आतमराम पिछाना।।टेक।।
जल मे गलत ना जलत अग्नि मे, असि से कटत न विष से हाना।
चीर फाड, ना पेरत कोल्हू, लगत न अग्नी वात निशाना।।१।।
दामिन परत न हरत वज्र गिर, विषधर डस न सके इक जाना।
सिंह व्याघ्र गज ग्राह आदि पशु, मार सके कोइ दैत्य न दाना।।२।।
आदि न अन्त अनादिनिधन यह, नहिं जन्मा नहिं मरत सयाना।
पाय पाय पर्याय कर्मवश, जीवन मरण मान दुख ठाना।।३।।
यह तन नशात और तन पावत, और नशत पावत अरु नाना।
ज्यो बहुरूप धरे बहुरूपी, त्यो बहुस्वाग धरे मनमाना।।४।।
ज्यो तिल तेल दूध मे घृत, त्यो तन मे आतम-राम समाना।
देखत एक एक ही समुझत, कहत एक ही मनुज अजाना।।५।।
पर पुद्गल अरु पर यह आतम, नही एक दो तत्त्व प्रधाना।
पुद्गल मरत जरत अरु विनसत, आतम अजर अमर गुणवाना।।६।।
अमररूप लख अमर भये हम, समझ भेद जो बखाना।
ज्योति जगी श्रुति की घट अन्तर, 'ज्योति' निरन्तर उर हर्षाना।।७।।

भैया! धोखे में मत आना.....

भैया! धोखे मे मत आना।।टेक।।

जिनको तू परिवार कहत है, वह मतलब की खाना।
पाप करा मरघट मे फूँके, रहिबो है पछताना।।१।।
जिसको प्यारी नारि कहे तू, पास मे उसके न जाना।
राध रुधिर मल पूरित तन मे, होता मूर्ख दिवाना।।२।।
जिसको तू धन सम्पत्ति कहता, वह है विपत्ति निदाना।
तृष्णा का दृढ बन्धन बाँधे, क्लेश दिखावे नाना।।३।।
पंच इन्द्री के भोग विषय मे, जिनमे रहियो लुभाना।
चखत मधुर विषफल सम लागे, करे है दुर्गति नाना।।४।।
मुट्ठी बाँध 'मनोहर' आया, हाथ पसारे जाना।
दो दिन का यह खेल तमाशा, मिट्टी मे मिल जाना।।५।।

इतनी निगाह रखना, ...

इतनी निगाह रखना, जब प्राण तन से निकले।
समभाव सुधा पीना, जब प्राण तन से निकले।।टेक।।
सुत मात तात परिजन, ससार के मुसाफिर।
इनमे न मोह लाना, जब प्राण तन से निकले।।१।।
धन सम्पदा है माया, चक्री भी यासो हारे।
इनका समान तजना, जब प्राण तन से निकले।।२।।
विषफल समान सुन्दर, दुख पाक भोग जग के।
इनसे न प्यार करना, जब प्राण तन से निकले।।३।।
क्या भोग भोग डाले, भोगो से खुद भुगे हम।
इनका न ख्याल करना, जब प्राण तन से निकले।।४।।
चैतन्य चिन्ह चेतन, चिन्तन से चेत जाना।
डरना न जिन 'मनोहर', जब प्राण तन से निकले।।५।।

जयवन्तो जिनबिम्ब जगत में.....

जयवन्तो जिनबिम्ब जगत मे, जिन देखत निज पाया है।।टेक।।
वीतरागता लखि प्रभुजी की, विषय-दाह विनशाया है।
प्रगट भयो सतोष महागुण, मन थिरता मे आया है।।१।।
अतिशय ज्ञान शरासन पै धरि, शुक्ल ध्यान शरवाया है।
हानि मोह-अरि चड चौकडी, ज्ञानादिक उपजाया है।।२।।
वसुविधि अरि हर कर शिवथानक, थिरस्वरूप ठहराया है।
सो स्वरूप रुचि स्वयसिद्ध प्रभु, ज्ञानरूप मन भाया है।।३।।
यद्यपि अचित तदपि चेतन को, चितस्वरूप दिखलाया है।
कृत्य कृत्य 'जिनेश्वर' प्रतिमा, पूजनीय गुरु गाया है।।४।।

एक तुम्ही आधार हो जग में.....

एक तुम्ही आधार हो जग मे, अय मेरे भगवान।
कि तुमसा और नही बलवान, कि तुमसा और नही गुणवान।।टेक।।
सम्हल न पाया गोते खाया, तुम बिन हो हैरान,।
कि तुमसा और नही गुणवान, कि तुमसा और नही बलवान।।१।।
आया समय बडा सुखकारी, आतम बोध कला विस्तारी।
मै चेतन तन वस्तु न्यारी, स्वय चराचर झलकी सारी।।
निज अन्तर मे ज्योति ज्ञान की, अक्षय निधी महान।।२।।
दुनिया मे एक शरण जिनन्दा, पाप-पुण्य का बुरा है फन्दा।
मै शिवभूप रूप सुख कन्दा, ज्ञाता-दृष्टा तुमसा वन्दा।।
मुझ कारज के कारण तुम हो, और नही मतिमान।।३।।
सहज स्वभाव भाव अपनाऊँ पर-परिणति से चित्त हटाऊँ।
पुनि-पुनि जग मे जन्म न पाऊँ, सिद्ध समान स्वय बन जाऊँ।।
चिदानन्द चैतन्य प्रभु का, है 'सौभाग्य' महान।।४।।

√प्रभु ! तुम आतम ध्येय करो....

प्रभु ! तुम आतम ध्येय करो।
सब जगजाल तनो विकल्प तज निजसुख सहज वरो।।टेक।।
हम तुम एकदेश के वासी, इतनो भेद परो।
भेदज्ञान बल तुम निज साधो, हम विवेक विसरो।।१।।
तुम निज राच लगे चेतन मे, देह से नेह टरो।
हम सम्बन्ध कियो तन धन से, भववन विपति भरो।।२।।
तुमरो आतम सिद्ध भयो प्रभु, हम तनबन्ध धरो।
याते भई अधोगति हमरी, भवदुख अगनि जरो।।३।।
देख तिहारी शान्त छवि को, हम यह जान परो।
हम सेवक तुम स्वामी, हमारे, हमहि सचेत करो।।४।।
दर्शनमोह हरी हमरी मति, तुम लख सहज टरो।
'चम्पा' सरन लई अब तुमरी, भवदुख वेग हरो।।५।।

जगत में आयो न आयो.....

जगत मे आयो न आयो, नाहक जन्म गमायो।।टेक।।
मात उदर नव मास वस्यो ते, अग सकुच दुख पायो।
जठर अग्नि की ताप सही नित, अधो शीश लटकारो।।१।।
निकसि अतिरुदन करो, नाहक जन्म गमायो।
बालपने मे बोधविवर्जित, मात-पितादि लडायो।।२।।
तरुण भयो तरुणी रस राच्यो, काम भोग ललचायो।
दरब सच को धायो, नाहक जन्म गमायो।।३।।
विरह भयो बल पौरुष थाक्यो, वाड्यो मोह सवायो।
दृष्टि घटी पलटी तन की छवि, डर्यो ड्रयो त्रिललायो।।४।।
कुटुम ना काम मे आयो, नाहक जन्म गमायो।
देव धरम गुरु भेद न जान्यो, अमृत तज विष खायो।।५।।
कौडी एक कमाई नाही, गॉठि को मूल गमायो।
'चेत' चित लेख सुनायो, नाहक जन्म गमायो।।६।।

चेतन तैं सब सुधि विसरानी भइया.....

चेतन तै सब सुधि विसरानी भइया।।
झूठौ जग साचौ करि मान्यौ, सुनी नही सतगुरू की वानी भइया।
भ्रमत फिरचौ चहुँगति मै अब तौ, भूख त्रिसा सही नीद निसानी भइया।।
ये पुदगल जड जानि सदा ही, तेरौ तौ निज रूप सग्यानी भइया।
'वखतराम' सिव सुख तव पै है, ह्वै है तब जिनमत सरधानी भइया।।

अरहंत-सा कोई दाता नहीं है.....

अरहत-सा कोई दाता नही है,।
जो ध्याता वह कष्ट पाता नही है।।
ध्याता की होती है द्रव्यदृष्टि,।
हुआ करती जिसके ज्ञान-दर्शन की दृष्टि।।
बसा करते मन मे पाचो परमेष्ठी,।
मिटा करती जिसके कर्मो की सृष्टि।।
आपके सिवा कुछ सुहाता नही है।
जो ध्याता वह कष्ट पाता नही है।।१।।
ध्याता जो होता उत्तम क्षमा का धारी।
दशलक्षण धर्म की जिसने किरणे पसारी।।
जो हो लक्ष्य जिसमे, वह है लक्ष्यधारी,।
जिसे अपनी जान से हर जान हो प्यारी।।
फिर वह किसी को सताता नही है,।
जो ध्याता वह कष्ट पाता नही है।।२।।
अरहत है देव देवो के देवा,।
जो करता है सेवा पाता है मेवा।।
'माणिक' प्रभु आपका नाम लेगा।
कर दो मेरा भवसागर से खेवा।।
आपके सिवा कोई दिखाता नही है।
जो ध्याता वह कष्ट पाता नही है।।३।।

चेतन सुमति सखी मिल.....

चेतन सुमति सखी मिल दोनो, खेलो प्रीतम होरी जी।।टेक।।
समकित व्रत कौ चौक बणावो, समता नीर भरावो जी।
क्रोध मान की करो पोटली, तो मिथ्या दोष भगावो जी।।१।।
ग्यान ध्यान की ल्यौ पिचकारी, तौ खोटा भाव छुडावो जी।
आठ करम को चूरण करि कै, तौ कुमति गुलाल उडावो जी।।२।।
जीव दया का गीत राग सुणि, सजम भाव बधावो जी।
बाजा सत्य वचन ये बोलो, तौ केवल बाणी गावो जी।।३।।
दान सील तौ मेवा कीज्यौ, तपस्या करो मिठाई जी।
देवाब्रह्म या रति पाई छै तौ मन वच काया जोई जी।।४।।

भवचक्र से जो भव्यजन को.....

भव चक्र से जो भव्यजन को, सदा पार उतारती।।टेक।।
जगजाल मय एकान्त को, जो रही सदा नकारती।।१।।
निज तत्व को पाकर, भविक जिसकी उतारे आरती।।२।।
नयचक्र मे उपलब्ध नित, यह नित्य बोधक भारती।।३।।

मिथ्यात्व नींद छोड़ दे,.....

मिथ्यात्व नीद छोड दे, आपा सम्हार ले।
जरा ज्ञानचक्षु खोल के, निज को पिछान ले।।टेक।।
वस्यो है तू निगोद मे, अनन्तकाल जाय के।
तहॉ स्वास मे अठारह, जन्म मरण पाय के।।१।।
जहॉ अक के अनन्त भाग, ज्ञान है गहा।
भू आदि पच माहि, एकाक्ष हो रहा।।२।।
विकलेन्द्रियादि योनि मे, दुखी हुआ फिरा।
सुर नर नरक नीच, गोत्र पाय के मरा।।३।।
ज्यो अन्धे को बटेर, त्यो सुबोध पाय के।
दृग ज्ञान चरण धार ले, निज मे समाय के।।४।।

जिया तैंने भावलिग नहि धारौ.....

जिया तैने भावलिग नहि धारौ नहि आतमराम विचारौ।।टेक।।
कै काहू से ममता जोडी, कै पर दोष निहारौ।
कै काहू के प्राणघात कर, नरक निगोद सिधारौ।।१।।
दोय एक षट नव भवमाही, भ्रमत भ्रमत जब हारौ।
अतिम भव त्रय वक्र प्रथम मे, ज्ञान जघन्य उच्चारौ।।२।।
तहँतै निकस भटक भववन मे, नरभव आय सम्हारौ।
पचताप तपि सुरपुर पहुँच्यो, पुनि भवसिधु मझारो।।३।।
यह मानुष भव सुकुल पायके, रत्नत्रय बिस्तारौ।
दास उदास होउ भोगन ते, अवागमन निवारौ।।४।।

देखा जब अपने अन्दर मे कुछ.....

देखा जब अपने अन्दर मे कुछ, और नही भगवान हूँ मै।
पर्यय ही दीन हीन पामर, अन्दर मे वैभववान हूँ मै।।टेक।।
चैतन्य प्राण से जीवित नित, इन्द्रिय बल श्वाशोच्छवास नही।
हूँ आयु रहित नित अजर-अमर, सच्चिदानंद गुणधाम हूँ मै।।१।।
आधीन नही सयोगो के, पर्यायो से अप्रभावी हूँ।
स्वाधीन अखण्ड अप्रतापी हूँ, निज से ही प्रभुतावान हूँ मै।।२।।
सामान्य-विशेषो सहित विश्व, प्रत्यक्ष झलक जावे क्षण मे।
सर्वज्ञ सर्वदर्शी आदिक, सम्यक निधियो की खान हूँ मै।।३।।
स्वधर्मो मे व्यापी विभु हूँ, और धर्म अनन्तोमय धर्मी।
नित निज स्वरूप की रचना से, सामर्थ्य से वीरजवान हूँ मै।।४।।
तृप्ती आनन्दमयी प्रकटी, देखा जब अन्तर नाथ को मै।
नही रही कामना अब कोई, बस निर्विकार निष्काम हूँ मै।।५।।
मेरा वैभव शाश्वत अक्षुण, पर से आदान प्रदान नही।
त्यागोपदान शून्य निष्क्रिय, और अगुरुलघु शिवधाम हूँ मै।।६।।

चलै जात पायो सरस ज्ञान हीरा.....

चलै जात पायो सरस ज्ञान हीरा।।टेक।।
दुख दारिद्र सुकृत सुकृत, दूरिभई पर पीरा।।१।।
सित वैराग्य विवेक पथ परि, वरपत सम रस नीरा।
मोह धूलि वह जात, जगमग्यो, निर्मल ज्योति गहीरा।।२।।
अखिल अनादि अनत अनोपम, निज निधि गुण गम्भीरा।
अरस अगध अपरस अनौतन, अलख अभेद अचीरा।।३।।
अरुण सुपेत न स्वेत हरित दुति, स्याम वरण सु न पीरा।
आवत हाथ काच सम मूझे, पर पद आदि शरीरा।।४।।
जासु उद्योत होत शिव सन्मुख, छोडि चतुर्गति कीरा।
'देवीदास' मिटै तिनही की, सहज विपम भव पीरा।।५।।

जाना धरम का न रूप,.....

जाना धर्म का न रूप, भ्रम मे बुद्धि पडी।
भ्रमता अनादिकाल मे, दुख पाया मुख न घडी।।टेक।।
वस्तुस्वभाव धर्म गुरू ने बताया,।
तू है चेतन देखो पुद्गलमयी काया।।
जाना न निज पर का भेद, पर्याय दृष्टि पडी।।१।।
तू तो चेतनज्ञाता दृष्टा स्वरूप है।
उपजे विनसे यह पुदगल को रूप है।।
जानो अव निज पर का भेद लगाकर ज्ञान झडी।।२।।
वडी मुश्किल से तन मानुष का पाया।
उत्तम देश निरोगी यह काया।।
जिनवाणी का पाया सयोग, यह दुर्लभता वडी।।३।।
निज-पर को जान भ्रम अपना मिटाले,।
रहकर निजरूप धर्म धन को कमाले।।
'निर्मल' शक्ति से कर त्याग करके प्रतिज्ञा कडी।।४।।

आतम रूप निहारा सुद्धनय.....

आतम रूप निहारा सुद्धनय आतम रूप निहारा हो।।टेक।।
जाकी बिन पहिचानि जगत मे पाया दु ख अपारा हो।।१।।
बध पर्स विन एक नियत है निर्विशेष निरधारा हो।
पर ते भिन्न अभिन्न अनोपम ज्ञायक चित हमारा हो।।२।।
भेदज्ञान रवि घट परकासत मिथ्या तिमिर निवारा हो।
'मानिक 'बलिहारी जिनकी तिन निज घट माहि सम्हारा हो।।३।।

दिन रात मेरे स्वामी,.....

दिन रात मेरे स्वामी, ये भावना मै भाऊँ।
देहात के समय मे, तुमको न भूल जाऊँ।।टेक।।
शत्रू अगर कोई हो, सन्तुष्ट उनको कर दूँ।
समता का भाव धर कर, सब से क्षमा कराऊँ।।१।।
त्यागू आहार पानी, औषध विचार अवसर।
टूटे नियम न कोई, दृढता हृदय मे लाऊँ।।२।।
जागे नही कषाये, नहिं वेदना सतावे।
तुमसे ही लौ लगी हो, दुर्ध्यान को भगाऊँ।।३।।
आतम स्वरूप अथवा, आराधना विचारूँ।
अरहत सिद्ध साधू, रटना यही लगाऊँ।।४।।
धर्मात्मा निकट हो, चरचा धर्म सुनावे।
वे सावधान रक्खे, गाफिल न होने पाऊँ।।५।।
जीने की हो न वाछा, मरनेकी हो न इच्छा।
परिवार मित्र जन से, मै मोह को हटाऊँ।।६।।
भोगे जो भोग पहले, उनका न होवे सुमरन।
मै राज्य सम्पदा या, पद इन्द्र का न चाहूँ।।७।।
सम्यक्त्व का हो पालन, हो अन्त मे समाधि।
'शिवराम' प्रार्थना यह, जीवन सफल बनाऊँ।।८।।

✓मैं वो दिन कब पाऊँ.....

मै वो दिन कव पाऊँ, घर को छोड वन जाऊँ।
अतर वाहिर त्याग परिग्रह, नग्न स्वरूप बनाऊँ।।टेक।।
सकल विभावमय परिणति तज स्वाभाविक चित लाऊँ।
पर्वत गुफा नगर सुन्दर घर, दीपक चाद मनाऊँ।।१।।
भूमि सेज आकाश चदोवा, तकिया भुजा लगाऊँ।
उपल जान मृग खाज खुजावत, ऐसा ध्यान लगाऊँ।।२।।
क्षुधा तृषादिक सहूँ परीषह, वारह भावन भाऊँ।
सम्यग्दर्शन ज्ञान चरण तप, दशलक्षण उर लाऊँ।।३।।
चार घातिया कर्म नाशकर, केवलज्ञान उपाऊँ।
घात अघाति लहूँ शिव 'मक्खन' फेर न जग मे आऊँ।।४।।

✓चेतन अनुभव घन मन भीनौ.....

चेतन अनुभव घन मन भीनौ।।टेक।।
काल अनादि अविद्या बधन, सहज हुवौ बल छीनौ।।१।।
घट घट प्रकट अनत नट नाटक, एक अनेकन कीनौ।
अग अग रग विरग विराजत, वाचक वचन विहीनौ।।२।।
आपुन भोगी भुगतिन भुगता, करता भाव विलीनौ।
चतुर 'रूप' की चित्र चतुरता, चीन्ही चतुर प्रवीनौ।।३।।

रे जिय जनम लाहो लेह.....

रे जिय जनम लाहो लेह।।टेक।
चरण ते जिन भवन पहुचै, दान दे कर जेह।।१।।
उर सोई जामै दया है, अरू रूधिर कौ गेह।
जीभ सो जिन नाम गावै, सास सो करे नेह।।२।।
आख ते जिनराज देखै, और आखै खेह।
श्रवन ते जिन वचन सुनि सुभ, तप तपै सो देह।।३।।
सफल तन इह भाति ह्वै है और भाति न केह।
है सुखी 'मनराम' ध्यावौ कहै सदगुरु एह।।४।।

मैं ज्ञानानन्द स्वभावी हूँ.....

मै ज्ञानानन्द स्वभावी हूँ।।टेक।।
मै हूँ अपने मे स्वय पूर्ण, पर की मुझमे कुछ गन्ध नही।
मै अरस अरूपी अस्पर्शी, पर से कुछ भी सम्बन्ध नही।।१।।
मै रग-राग से भिन्न भेद से, भी मै भिन्न निराला हूँ।
मै हूँ अखन्ड चैतन्य पिण्ड, निज रस मे रमने वाला हूँ।।२।।
मै ही मेरा कर्त्ता धर्ता, मुझमे पर का कुछ काम नही।
मै मुझमे रमने वाला हूँ, पर मै मेरा विश्राम नही।।३।।
मै शुद्ध बुद्ध अविरुद्ध एक, पर परणति से अप्रभावी हूँ।
आत्मानुभूति से प्राप्त तत्व, मै ज्ञानानन्द स्वभावी हूँ।।४।।

वस्तु स्वभाव समझ नहीं पाता.....

वस्तु स्वभाव समझ नही पाता, कर्त्ता धरता बन जाता।।टेक।।
स्व को भूल पर अपनाता, मिथ्यापन का यह नाता।।१।।
सहज स्वभाव समझ मे आता, करना धरना मिट जाता।
स्व सो स्व और पर सो पर है, सम्यक्पन का यह नाता।।२।।
रोके रुकता लाये आता, धक्के से जाता है कौन।
अपनी अपनी सहज गुफा मे, सभी द्रव्य है पर से मौन।।३।।

यम नियम संयम आप कियो.....

यम नियम सयम आप कियो, पुनि त्याग विराग अथाग लियो।
वनवास लियो मुख मौन रहचो, दृढ आसन पद्म लगाय दियो।।टेक।।
मन पौन निरोध स्वबोध कियो, हठ जोग प्रयोग सुतार भयो।
जप भेद जपे तप त्योंहि तपे, उर से ही उदासि लहि सबपे।।१।।
सब शास्त्रन के नय धारि हिये, मत मन्डन खन्डन भेद लिये।
वह साधन बार अनन्त कियो, तदपि कछु हाथ हजू न पर्यो।।२।।
अब क्यो न विचारत है मन से, कछु और रहा उन साधन से?।
बिन सद्गुरु कोउ न भेद लहे,मुख आगल है कह बात कहे।।३।।

जो एक शुद्ध विकारवर्जित.....

जो एक शुद्ध विकारवर्जित, अचल परम पदार्थ है।
जो एक ज्ञायकभाव निर्मल नित्य निज परमार्थ है।।टेक।
जिसके दरश व जानने, का नाम दर्शन ज्ञान है।
हो नमन उस परमार्थ को, जिसमे चरण ही ध्यान है।।१।।
निज आत्मा को जानकर, पहिचानकर जमकर अभी।
जो वन गये परमात्मा, पर्याय मे भी वे सभी।।२।।
वे साध्य है, आराध्य है, आराधना के सार है।
हो नमन उन जिनदेव को, जो भवजलधि के पार है।।३।।
भवचक्र मे जो भव्यजन को, सदा पार उतारनी।
जगजालमय एकान्त को, जो रही सदा नकारनी।।४।।
निजतत्त्व को पाकर भविक, जिसकी उतारे आरती।
नयचक्रमय उपलब्ध नित, यह नित्यबोधक भारती।।५।।
नयचक्र के सचार मे, जो चतुर है, प्रतिबद्ध है।
भवचक्र, के सहार मे, जो प्रीतसमय सन्नद्ध है।।६।।
निज आत्मा की साधना मे, निरत तन मन नगन है।
भव्यजन के शरण जिनके, चरण उनको नमन है।।७।।

सुण सुण रे म्हारा लोभी मनड़ा.....

सुण सुण रे म्हारा लोभी मनडा, प्रभुरो भजन तनै कव भावे।।टेक।।
रकम रकम रा भोजन भावे, रुचि रुचि भोग लगावे मनडा।।१।।
उजला उजला वस्त्र पहरे, छैल छबीलो बन जावे मनडा।
लोग दिखावण मन्दिर जावे, मोटा मोटा तिलक लगावे मनडा।।२।।
काया माया धन धरती रो, माटी मे माटी मिल जावे मनडा।
झूठो बोले झूठो तोले, जैन मे कैन क्यू मिलावे मनडा।।३।।
चतुर चेत कर चाले जग मे, मूरख जनम क्यू गमावे मनडा।
पारस चरन परस जब पावे, लोहा कचन बन जावे मनडा।।४।।

जो मोह माया मान मत्सर,....

जो मोह माया मान मत्सर, मदन मर्दन वीर हैं।
जो विपुल विघ्नों बीच में भी, ध्यान धारण धीर हैं।।टेक।।
जो तरण-तारण भव-निवारण, भव-जलधि के तीर हैं।
वे वंदनीय जिनेश, तीर्थंकर स्वयं महावीर हैं।।१।।
जो राग-द्वेष विकार वर्जित, लीन आतम ध्यान में।
जिनके विराट् विशाल निर्मल, अचल केवलज्ञान में।।२।।
युगपद् विशद् सकलार्थ झलके, ध्वनित हो व्याख्यान में।
वे वर्द्धमान महान जिन, विचरे हमारे ध्यान में।।३।।
जिनका परम पावन चरित, जलनिधि समान अपार है।
जिनके गुणों के कथन में, गणधर न पावै पार है।।४।।
बस वीतराग-विज्ञान ही, जिनके कथन का सार है।
उन सर्वदर्शी सन्मती को, वंदना शत बार है।।५।।

जो क्रोध-मद-माया अपावन.....

जो क्रोध-मद-माया अपावन, लोभरूप विभाव हैं।
उनके अभाव स्वभावमय, उत्तमक्षमादि स्वभाव हैं।।टेक।।
उत्तमक्षमादि स्वभाव ही, इस आत्मा के धर्म हैं।
है सत्य शाश्वत ज्ञानमय, निजधर्म शेष अधर्म हैं।।१।।
निज आत्मा में रमण संयम, रमण ही तप-त्याग है।
निज रमण आकिंचन्य है, निज रमण परिग्रह-त्याग है।।२।।
निज रमणता ब्रह्मचर्य है, निज रमणता 'दशधर्म' हैं।
निज जानना पहिचानना, रमना धरम का मर्म हैं।।३।।
अरहन्त हैं दशधर्म-धारक, धर्म-धारक सिद्ध हैं।
आचार्य हैं, उवझाय हैं, मुनिराज सर्व प्रसिद्ध हैं।।४।।
जो आत्मा को जानते, पहिचानते करते रमन।
वे धर्म-धारक, धर्म-धन हैं, उन्हें हम करते नमन।।५।।

समकित बिन फल नहीं पावोगे.....

समकित बिन फल नही पावोगे, नही पावोगे पछितावोगे।।टेक।।
चाहे निर्जन तप करिए, बिन समता दुख दाहोगे।।१।।
मिथ्या मारग निश दिन सेवो, कैसे मुक्ती पावोगे।
पत्थर-नाव समन्दर गहरा, कैसे पार लघावोगे।।२।।
झूठे देव गुरु तज दीजे, नही आखिर पछतावोगे।
'न्यामत' स्यादवाद मन लावो, यासे मुक्ती पावोगे।।३।।

महावीर के पथ पर चलकर.....

महावीर के पथ पर चलकर महावीर गुण गायेगे।
महावीर से शक्ति प्राप्त कर महावीर बन जायेग।।टेक।।
जीव मात्र की हिसा से हो विमुख दया अपनायेगे।
सत्य धर्म पर दृढ रहकर हम झूठ न उर मे लायेगे।।१।।
बिना किसी की आज्ञा कोई वस्तु न कभी उठायेगे।
ब्रह्मचर्य व्रत का पालन कर गीत शील के गायेग।।२।।
अनुचित सग्रह छोड सदा अपरिग्रह अपनायेगे।
पाच पाप से दूर रहेगे अणुव्रत पॉच निभायेग।।३।।
क्रोध मान माया तृष्णा का अब हम नाम मिटायेग।
सेवा करके दीन दुखी जीवो का कष्ट हटायेगे।।४।।
क्रोध भाव को त्याग निरन्तर क्षमाभाव उर लायेगे।
मान कषाय दूर करके हम विनय महा चित लायेगे।।५।।
मायाचारी त्याग सहज ही सरल भावना भायेगे।
लोभ हटा सन्तोषामृत से जीवन सुखी बनायेग।।६।।
सप्त व्यसन से दूर रहेगे तप सयम नित ध्यायेगे।
कैसा भी सकट विपत्ति हो धैर्य हृदय मे लायेगे।।७।।
आत्म स्वरूप नही भूलेगे समता भाव जगायेगे।
श्रद्धा ज्ञान चरित्र धारकर, नरभव सफल बनायेगे।।८।।

स्वतः परिणमति वस्तु के, ...

स्वत परिणमति वस्तु के क्यो करता बनते जाते हो।
कुछ समझ नही आती तुझको, नि सत्व बने ही जाते हो।।टेक।।
अरे कौन निकम्मा जग मे है, जो पर का करने जाता हो।
सब अपने अन्दर रमते है, तब किस विधि करण रचाते हो।।१।।
वस्तु की मालिक वस्तु है, जो मालिक है वह कर्त्ता है।
फिर मालिक के मालिक बनकर, क्यो नीति-न्याय गमाते हो।।२।।
सत् सब स्वय परिणमता है, वह नही किसी की सुनता है।
यह माने बिन कल्याण नही, कोई कैसे ही कुछ कहता हो।।३।।

अपने घर को देख बावरे.....

अपने घर को देख बावरे, सुख का जहा खजाना रे।
क्यो पर मे सुख खोज रहा है, क्यो पर का दीवाना रे।।टेक।।
ये माटी के खेल खिलौने, माटी तन की रानी रे।
माटी के पुतले तेरा तो, माटी भरा बिछौना रे।।१।।
परपरणति परभाव निरखता, आत्मतत्त्व को भूला रे।
पर-भावो मे दु ख-सुख माने, भूल रहा भव झूला रे।।
सहजानन्दी रूप तुम्हारा, जग सारा बेगाना रे।।२।।
चिन्तामणि-सा नरभव पाया, कल्पवृक्ष-सा जिनवृष रे।
गवा रहा है रत्न अमोलक, क्यो विषयो मे फॅस-फॅस रे।।
बिखर जायगा एक दिन तेरा, सारा ताना बाना रे।।३।।
घूम लिये हो चारो गति मे, अब तो निज का ध्यान करो।
विषय हलाहल बहुत पिया है, अब समतारस पान करो।।
अपने गुण को छोड बैठ जा, बहुत दूर नही जाना रे ।।४।।
त्रस-थावर पर्याय बदलता, पिये मोह की हाला रे।
कभी स्वर्ग के ऑगन देखे, कभी नरक की ज्वाला रे।।
चौरासी के 'पथिक' तुम्हारा, शिवपुर दूर ठिकाना रे ।।५।।

धन्य धन्य जिन धर्म हमारो.....

धन्य धन्य जिन धर्म हमारो भवसागर से तारण हारो ।।टेक।।
धन्य जिनेश्वर धन्य जिनागम धन्य धन्य ध्रुव धाम हमारो ।।१।।
देव-शास्त्र-गुरु तीन रतन पा धन्य बनो नर जन्म हमारो ।
वीतराग सर्वज्ञ देव लखि सम्यक् दर्शन उर मे धारो ।।२।।
द्वादशाग जिनवाणि हृदय धरि भेद-ज्ञान कला विस्तारो ।
परम दिगम्बर मुनिवर वन्दॅ सम्यक् चारित्र रत्न हमारो ।।३।।

आचरण तुम्हारा शुद्ध नहीं.....

आचरण तुम्हारा शुद्ध नही, कल्याण तुम्हारा कैसे हो ।
विषयन-वश-भक्ष-अभक्ष भखो, हिय ज्ञान-उजाला कैसे हो ।।टेक।।
दिल दुनियॉ से भयभीत नही, आत्म-हित से कुछ प्रीत नही ।
तन पिंजर से जिय निकल पडे, प्रस्थान सहारा कैसे हो ।।१।।
कायर बन जप व्रत छोड रहे, तप करने से दिल मोड रहे ।
विषयन मे ममता जोड रहे, बिन दान गुजारा कैसे हो ।।२।।
पूजा कर मन इच्छा धरते, मन चचल कर माला जपते ।
झूठे धधे गटपट करते, कर्मो का निवारा कैसे हो ।।३।।
इस तनको अपना मान रहे, धन सम्पत्ति अपनी जान रहे ।
मै-मै तूॅ-तूॅ का ध्यान रहे, सत् ध्यान तुम्हारा कैसे हो ।।४।।
शुक जैसी रटना रटते हो, आगम का अर्थ न धरते हो ।
चलने की चाल पलटते हो, दुठ थान उबारा कैसे हो ।।५।।
प्रभुताई को तुम भजते हो, प्रभु नाम का कीर्तन तजते हो ।
प्रभु नाम से प्रभुता होती है, यह बात प्रचारा कैसे हो ।।६।।
नर तन-चिन्तामणि पाकर के, खोते हो काग उडा करके ।
डूबे को अगम भवोदधि मे, बिन यान किनारा कैसे हो ।।७।।
अवसर लहि निज-हित कर डालो, शिव मग पर निज दृष्टी डालो ।
फिर 'बाल' जहॉ मे रहने का, स्थान तुम्हारा कैसे हो ।।८।।

चेतन क्यों पर अपनाता है.....

चेतन क्यो पर अपनाता है, आनन्दघन तू खुद ज्ञाता है।।टेक।।
ज्ञाता क्यो करता बनता है, खुद क्रमबद्ध सहज पलटता है।
सब अपनी धुन मे धुनता है, तब कौन जगत मे सुनता है।।१।।
उठ चेत जरा क्यो सोता है, फिर देख ज्ञान क्या होता है।
क्यो पर का बोझा ढोता है, क्यो जीवन अपना खोता है।।२।।
पर का तू करता बनता है, कर तो कुछ भी नही सकता है।
यह विश्व नियम से चलता है, इसमे नही किसी का चलता है।।३।।
जो परका असर मनाता है, वह धोखा निश्चय खाता है।
जब जबरन का विष जाता है, तब सहज समझ मे आता है।।४।।
जो द्रव्य द्वारे आता है, वह जीवन ज्योति जगाता है।
सुखधाम चिन्तामणि ज्ञाता है, आनन्द अनुभव नित पाता है।।५।।

समझ मन बावरे सब स्वारथ.....

समझ मन बावरे, सब स्वारथ का ससार।।टेक।।
हरे वृक्ष पर तोता बैठा, करता मौज विहारी।
सूखा तरुवर उड गया तोता, छिन मे प्रीति बिसारी।।१।।
ताल पाल पर किया बसेरा, निर्मल नीर निहारा।
लखा सरोवर सूखा जब ही, पखी पख पसारा।।२।।
पिता पुत्र सब लोग प्यारे, जब लो करे कमाई।
जो नही द्रव्य कमाकर लावे, दुश्मन देत दिखाई।।३।।
जब लग स्वारथ सधत है जासो, तब लग तासो प्रीति।
स्वारथ भये बात न बूझे, यही जगत की रीति।।४।।
अपने अपने सुख को रोवे, मात पिता सुत नारी।
धरे ढके की बूझन लागे, अन्त समय की बारी।।५।।
सभी सगे शिवराम गरज के, तुम भी स्वारथ साधो।
नर तन मित्र मिला है तुमको, आतम हित आराधो।।६।।

मेरो शरण समयसार.....

मेरो शरण समयसार दूसरो न कोई ।
जा प्रमाद काय समयसार सिद्ध होई ।।टेक।।
अविनाशी ब्रह्मरूप, अविचल आज चित स्वरूप ।
शुद्ध बुद्ध स्वत सिद्ध, जो प्रभु मै सोई ।।१।।
प्रकट रूप का आधार, निश्चयत निराधार ।
ये ही गुरु ये ही शिष्य, भक्त प्रभु दोई ।।२।।
समयसार नाहिं जाने, बाह्य ज्ञान बहुत जाने ।
भव भव भटके, सुखी नाहि कोइ ।।३।।
एक समयसार जाने, और कुछ नाहि जाने ।
समयसार रूप होय, परम सुखी होई ।।४।।
रूप मेरा समयसार, देव गुरु समयसार ।
शास्त्र कहे समयसार, सार यही होई ।।५।।
सहजानन्द सहज ज्ञान, निज परिणति का निधान ।
जिन चीन्हा उन परणति, निर्विकल्प जोई ।।६।।
सुनो समजो समयसार, गावो चिन्तो समयसार ।
श्रद्धो ध्यावो समयसार, समयसार होई ।।७।।

या घटमैं परमात्मा चिन्मूरति भइया.....

या घटमै परमातमा चिन्मूरति भइया ।
ताहि विलोकि सुदृष्टिसो पडित परखैया ।।टेक।।
ज्ञानस्वरूप सुधामयी, भवसिंधु तरैया ।
तिहूँ लोकमे प्रगट है, जाकी ठकुरैया ।।
आप तरै तारे परहि, जैसे जल नइया ।
केवल शुद्ध स्वभाव है, समुझै समुझैया ।।
देव वहै गुरु है वहै, शिव वहै बसइया ।
त्रिभुवन मुकुट चहै सदा, चेतौ चितवइया ।।

धर्म बिना बावरे तूने मानव रतन गँवाया.....

धर्म बिना बावरे तूने मानव रतन गॅवाया।।टेक।।
कभी न कीना आत्म निरीक्षण कभी न निज गुण गाया।
पर परणति से प्रीति बढाकर काल अनत बढाया।।१।।
यह ससार पुण्य-पापो का पुण्य देख ललचाया।
दो हजार सागर के पीछे काम नही यह आया।।२।।
यह ससार भव समुद्र है बन विषयी हरषाया।
ज्ञानी जन तो पार उतर गये मूरख रुदन मचाया।।३।।
यह ससार ज्ञेय द्रव्य है आतम ज्ञायक गाया।
कर्ता बुद्धि छोड दे चेतन नहि तो फिर पछताया।।४।।
यह ससार दृष्टि की माया अपना कर अपनाया।
"केवल" दृष्टि सम्यक् कर ले कहान गुरु समझाया।।५।।

सुन्दर दशलच्छन वृष सेय.....

सुन्दर दशलच्छन वृष, सेय सदा भाई ।
जास तै ततच्छन जन, होय विश्वराई ।।टेक।।
क्रोध को निरोध, शान्त-सुधा को नितान्त शोध ।
मान को तजौ, भजौ स्वभाव कोमलाई ।।१।।
छल बल तजि, विमलभाव सरलताई भजि ।
सर्व जीव चैन दैन, वैन कह सुहाई ।।२।।
ज्ञान-तीर्थ स्नान दान, ध्यान भान हृदय आन ।
दया-चरन धारि, करन-विषय सब बिहाई ।।३।।
आलस हरि द्वादश तप धारि शुद्ध मानस करि ।
खोह गेह देह जानि, तजौ नेहताई ।।४।।
अन्तरग बाहच सग त्यागि आत्मरग पागि ।
शीलमाल अति विशाल, पहिर शोभनाई ।।५।।
यह वृष-सोपान राज, मोक्षधाम चढन काज ।
शिव सुख निज गुन समाज, 'केवली' बताई ।।६।।

कहिये जो कहिवे की होय.....

कहिये जो कहिवे की होय ।।टेक।।

आप आप मे परगट दीसै, बाहिर निकल न पावै कोय ।।१।।

वचन राशि सब पुद्गल परजै, पुद्गल रूप नही पद सोय ।।२।।

निर-विकल्प अनभूति सारखी, मगन सज्ञान आन भ्रम खोय ।।३।।

जिसे खोजता फिरता है.....

जिसे खोजता फिरता है न मक्का, मथुरा, काशी ।
तेरे ही अंदर बैठा है वह शिवपुर का वासी ।।टेक।।
अपनी भूल न समझी इससे जनम-मरण दुख पाता,।
स्वर्ग नरक तिर्यंच गती मे भव भव गोते खाता ।।१।।
वन वन फिरता जिसके खातिर बन साधु सन्यासी ।
तेरे ही अंदर बैठा है वह शिवपुर का वासी ।।२।।
जाति-धर्म के बन्धन मे बँधकर पुरुषार्थ गँवाया ।
या फिर माया के चक्कर मे अपने को बिसराया ।।३।।
लेकिन कभी न सोचा मैं ही सिद्धशिला का वासी ।
मेरे ही अंदर बैठा है वह शिवपुर का वासी ।।४।।
अपना समझ लिया जिस तन को भक्षाभक्ष खिलाता ।
वह भी तेरे साथ न जाता, माटी मे मिल जाता ।।५।।
फिर क्यो इसको समझ रहा है अपना जीवन साथी ।
तेरे ही अंदर बैठा है वह शिवपुर का वासी ।।६।।
निज का 'दर्शन' कर ले तो सब बिगडा काम बनेगा ।
तेरे 'ज्ञान' माँहि जग का प्रतिबिम्ब स्वय झलकेगा ।।७।।
तब होगा 'चारित्र' आप ही निर्विकार अविनाशी ।
तेरे ही अंदर बैठा है वह शिवपुर का वासी ।।८।।
अपने को पहिचान जाग उठ, अब क्यो देर लगाता ।
तुझको तेरे ही अंदर का तारणहार बुलाता ।।९।।
'काका' नर तन मिला काट ले जन्म-मरण की फाँसी ।
तू ही आत्मानन्द बावरे अजर अमर अविनाशी ।।१०।।

ना समझो अभी मित्र कितना अंधेरा.....

ना समझो अभी मित्र कितना अधेरा जभी जाग जाओ तभी है सवेरा।।
गई सो गई मत गई को बुलाओ नया दिन हुआ है नया डग बढाओ।
न सोचो न लाओ बदनपर मलिनता तुम्हारे करों मे है कल की सफलता।
जली ज्योति बनकर ढलेगा अन्धेरा जभी जाग जाओ तभी है सवेरा।।
पियो मित्र शोले समझ करके पानी दु खोने लिखी है सुखोकी कहानी।
नही पढ सका कोई किस्मत का कासा नही जानता कब पलट जाये पासा।
चले जो मिला मंजिलो का बसेरा जभी जाग जाओ तभी है सवेरा।
व्यथाये मिले तो उन्हे तुम दुलारो प्रगति प्रेम से मिले तो पुकारो।
दु खों की सदा उम्र छोटी रही है सदा श्रम सुखो के ही बोती रही है।
सदा पतझरो ने बहारो को टेरा जभी जाग जाओ तभी है सवेरा।।
गुरुदेव से नया जिवन मिला है जो निधिया बिखरती वो लूटो हमेशा।
अनेक ग्रन्थ मथन से हीरा निकाला तुम जौहरी बनके कर दो उजाला।
जरा भूल की तो है नर्को मे बसेरा जभी जाग जाओ तभी है सवेरा।।

पुण्य से ही निर्जरा होती अगर तो.....

पुण्यसे ही निर्जरा होती अगर तो होगया होता अभीतक मोक्ष कबका।।
पुण्य से सवर अगर होता तनिक भी तो भ्रमणका कष्ट फिर मिलता न भवका।
इस तत्त्वके विज्ञानको तूने न जाना, इस आत्माको भी नहि कभी पहचाना।।
रुचि राग मे, कर्तृत्वमे अरु लोकरजनमें करी,।
पुण्य पाप रहित सदृष्टीमय स्वतत्व-श्रद्धा नहि करी।।
पुण्य हो या पाप ये आस्रव है शुभ राग भी तो बध है ससार ही के।
इन्हीमे कर्तृत्वबुद्धि बनी रही तो, शुभाशुभ दुखद्वद है भवभार ही के।।
नही है सम्यक्त्व जबतक व्यर्थ है सब पाठपूजनजप व्रतादिक ध्यान मिथ्या।
आत्मा की यदि नही पहचान की तो तप कुतप है ज्ञान भी है ज्ञानमिथ्या।।
इसलिए सम्यक्त्व धारणकर अरे जिय भिन्न निज चैतन्य पर से जान ले रे।
आत्मा परमात्मा स्वयमेव होगी, भेदज्ञान अपूर्व सुखमय मानले रे।।

पुद्गल का क्या विश्वासा.....

पुद्गल का क्या विश्वासा, जैसे पानी बीच पताशा ।।टेक।।
जैसे चमत्कार बिजली का, जैसे इन्द्रधनुष आकाशा ।।१।।
झूठा तन धन, झूठा यौवन, झूठा है घर-वासा ।
झूठा ठाठ ठनो दुनिया मे, झूठा महल निवासा ।।२।।
इक दिन ऐसा होगा लोगो, जगल होगा वासा ।
इस तन ऊपर हल फिर जावे, पशु चरेगे घासा ।।३।।
एक बार श्री जिनवर का, भज ले नाम निराशा ।
'नवल' कहे छिन एक न भूलो, जब लग घट मे साँसा ।।४।।

भावों में सरलता रहती है.....

भावो मे सरलता रहती है, जहाँ प्रेम की सरिता बहती है ।।टेक।।
हम उस धर्म के पालक हैं, जहाँ सत्य अहिंसा रहती है ।।१।।
जो राग मे मूछे तनते हैं, जड भोगो मे रीझ मचलते है, ।
वे भूलते है निज को भाई, जो पाप के साँचे ढलते है ।।२।।
उपकार उन्हे माँ जिन-वाणी, जहाँ ज्ञान-कथाये कहती है ।
जो पर के प्राण दुखाते है, वे आप सताये जाते है, ।।३।।
अधिकारी वे है शिवसुख के, जो आतम ध्यान लगाते है ।
'सौभाग्य' सफल कर नर जीवन, यह आयु ढलती रहती है ।।४।।

जो इच्छा का दमन न हो तो.....

जो इच्छा का दमन न हो तो, चारित्र से शिवगमन नही रे।
अन्नत्याग से मुक्ति होय तो, मृग तृष्णावश जान दई रे।।टेक।।
बिन बोले तै मौनी हो तो, बगुला बैठो मौन गही रे।
नाम जपे निज नाथ मिलै तो, तोता निशदिन रटत वही रे।।१।।
वस्त्रत्याग अरु वन-निवास तै, जो होवे सो साधु कही रे।
तो पशु-वस्त्र कभी नही पहनत, वन मे आयुष बीत गई रे।।२।।
काया कृश कर कृत नहि होवे जो इच्छा नहि दमन भई रे।
भोमराज' जो ताहि दमत है, सो पावे है मोक्ष मही रे।।३।।

समझ उर धर कहत गुरुवर.....

समझ उर धर कहत गुरुवर, आत्मचिन्तन की घडी है ।
भव उदधि तन अथिर नौका, बीच मॅझधारा पडी है ।।टेक।।
आत्म से है पृथक् तन-धन, सोच रे मन कर रहा क्या? ।
लखि अवस्था कर्म-जड की, बोल उनसे डर रहा क्या ।।
ज्ञान-दर्शन चेतना सम, और जग मे कौन है रे? ।
दे सके दुख जो तुझे वह, शक्ति ऐसी कौन है रे? ।।१।।
कर्म सुख-दुख दे रहे है, मान्यता ऐसी करी है ।
चेतचेतन प्राप्त अवसर, आत्म-चिन्तन की घडी है ।।
जिस समय हो आत्मदृष्टि, कर्म थर थर कॉपते है ।
भाव की एकाग्रता लखि, छोड खुद ही भागते है ।।
ले समझ से काम या फिर चतुर्गति ही मे विचर ले ।
मोक्ष अरू ससार क्या है, फैसला खुद ही समझ ले ।।
दूर कर दुविधा हृदय से, फिर कहॉ धोखा धडी है ।
समझ उर धर कहत गुरुवर, आत्म चिन्तन की घडी है ।।२।।
कुन्दकुन्दाचार्य गुरुवर, यह सदा ही कहि रहे है ।
समझना खुद ही पडेगा, भाव तेरे बहि रहे है ।।
शुभ क्रिया को धर्म माना, भव इसी से धर रहा है ।
है न पर से भाव तेरा, भाव खुद ही कर रहा है ।।
है निमित्त पर दृष्टि तेरी, बान ही ऐसी पडी है ।
चेत-चेतन प्राप्त अवसर, आत्म-चिन्तन की घडी है ।।३।।
भाव की एकाग्रता रुचि, लीनता पुरुषार्थ कर ले ।
मुक्ति-बन्धन रूप क्या है, बस इसी का अर्थ कर ले ।।
भिन्न हूॅ पर से सदा मैं, इस मान्यता मे लीन हो जा ।
द्रव्य-गुण-पर्याय ध्रुवता, आत्म सुख चिर नीद सो जा ।।
आत्म गुण धर लाल अनुपम, शुद्ध रत्नत्रय जडी है ।
समझ उर धर कहत गुरुवर, आत्म-चिन्तन की घडी है ।।४।।

भेदज्ञान की गिरी बीजुरी.....

भेदज्ञान की गिरी बीजुरी टूटा भ्रम का श्रृग रे।
जड पुद्गल से भिन्न आत्मा देखा भव्य उतग रे।।टेक।
चिन्मय चेतन शुद्ध आत्मा जड पुद्गल यह देह रे।
अतर्मुख होते ही बरसा निज परणति मेह रे।।
झनन झनन निज वीणा बाजी निज के बजे मृदग रे।
भेदज्ञान की गिरी बीजुरी टूटा भ्रम का श्रृग रे।।१।।
ज्ञात हुआ क्यो था अनादि से चेतन पर का भृत्य रे।
भेद ज्ञान के अवलबन बिन किया जगत मे नृत्य रे।।
निज को पर का कर्त्ता माना, सभी ढग बेढग रे।
भेदज्ञान की गिरी बीजुरी टूटा भ्रम का श्रृङ्ग रे।।२।।
भेदज्ञान के बिना न मिलता मिथ्या भ्रम का अन्त रे।
भेदज्ञान से सिद्ध हुए है जीव अनन्तानन्त रे।।
तीन लोक के ऊपर सिद्धशिला पर शुद्ध स्वरग रे।
भेदज्ञान की गिरी बीजुरी टूटा भ्रम का श्रृग रे।।३।।
शाश्वत सुख अनन्त का दाता भेदज्ञान विज्ञान रे।
इसके द्वारा एक दिवस मिल जाता पद निर्वाण रे।।
अष्ट कर्म अरि नष्ट करो ले भेदज्ञान की खग रे।
भेदज्ञान की गिरी बीजुरी टूटा भ्रम का श्रृग रे।।४।।
भेदज्ञान की दामिनि दमकी हुआ प्रकाश प्रचड रे।
राग भिन्न है ज्ञान भिन्न है चेतन द्रव्य अखड रे।।
निज परणति अनुभूति प्राप्त कर हृदय हुआ अति दग रे।
भेदज्ञान की गिरी बीजुरी टूटा भ्रम का श्रृग रे।।५।।
रूप, गध, रस स्पर्श रहित है तू स्वतन्त्र निष्काम रे।
अजर अमर अविकल अविनाशी अविरल सुख का धाम रे।।
चिदानन्द चैतन्य अनाकुल पूर्ण ज्ञान निज सग रे।
भेदज्ञान की गिरी बीजुरी टूटा भ्रम का श्रृग रे।।६।।

कितने भव बीत गये.....

कितने भव बीत गये, सकल्प विकल्पो मे।
जिया कब तक उलझेगा, ससार विजल्पो मे।
उड-उड कर यह चेतन, गति-गति मे जाता है।
रागो मे लिप्त सदा, भव-भव दुख पाता है।
क्षण भर को भी न कभी, निज आतम ध्याता है।।टेक।।
निज आतम स्वरूप, तत्वो का कर निर्णय।
मिथ्यात्व छूट जाये, समकित प्रगटे सुखमय।
निज परणति रमण करे, हो निश्चय रत्नत्रय।
निर्वाण मिले निश्चित, छूटे यह भव दुखसे।
सुख ज्ञान अनत मिले, चिन्मय की गल्पो मे।।१।।
शुभ-अशुभ विभाव तजे, है हेय अरे आस्रव।
सवर का साधन ले, चेतन का ले अनुभव।
शुद्धातम का चिन्तन, आनद-अतुल अभिनव।
कर्मो की पग-ध्वनि का, मिट जावेगा कलरव।
तू स्वय सिद्ध होगा, होगा पुरुषार्थ अपने मे।।२।।
नर रे! नर रे! नर रे! तू चेत अरे नर रे!।
क्यो मूढ विमूढ बना, कैसा पागल खर रे।
अतर-मुख होजा तू, निज मे निज भर ले।
पर का अवलबन तज रे, निज का आश्रय कर ले।
पर परिणति विमुख हुआ, तो सुख पल अल्पो मे।।३।।
तू कौन कहॉ का है, अरु क्या है नाम अरे।
आया है किस घर से, जाना किस गॉव अरे।
यह तन तो पुदगल है दो दिन की छॉव अरे।
तू चेतन द्रव्य सबल, ले सुख अविकल्पो मे।
यदि अवसर चूका तो, भव-भव पछतायेगा।
फिर काल अनत अरे, दुख का घन जावेगा।।४।।

यह नर भव कठिन महा, किस गति मे जायेगा।
नरभव भी पाया तो, जिन श्रुत नही पायेगा।।
अनगिनतित जन्मो मे, अनगिनतित कल्पो मे।
कितने भव बीत गये, सकल्प विकल्पो मे।।५।।

धुन धुन धुनिया अपनी धुन.....

धुन धुन धुनिया अपनी धुन, निज की धुन मे पाप न पुन्य
तेरी सुई मे चार विनोले, क्रोध, मान, अरु माया लोभ
पहिले इनको चुन-चुन-चुन धुन धुन धुनिया
बाहर से अब मन को मोडो, राग द्वेष मद की जड खोदो
निज को निज मे गुन-गुन-गुन धुन धुन धुनिया
जब हो परणति ऐसी तेरी, अलख निरजन की भज भेरी
अनहद ध्वनि तब सुन-सुन-सुन धुन धुन धुनिया
सोऽह सोऽह भज ले मन मे, निज को रग ले निज के रग मे
भेद मिटे तब तुन-तुन-तुन धुन धुन धुनिया

निज आतम में रम जाओ पुजारी.....

निज आतम मे रम जाओ पुजारी, और कही मत जाओ।
शीतल जल शुचिता से भरकर, आस्रव मल को हटाओ।।टेक।।
अभिन्न षट्कारक चदन ले, भव की तपन मिटाओ।
उत्तम अक्षत लेकर निज के, भाव अखण्ड बनाओ।।१।।
परम भाव के पुष्प चढाकर, काम की फाँसी मिटाओ।
तृष्णा दुख मेटन काजे, स्वानुभव सुख लाओ।।२।।
मोह भवन की मूर्च्छा तज के, ज्ञान ज्योति प्रगटाओ।
क्रोधादिक धूप स्वाहा करके, रत्नत्रयी तप लाओ।।३।।
ध्यानाग्नि प्रभुमयी अग्नि से, तुम कुदन बन जाओ।
सासारिक झूठे फल तज कर, मोक्ष सरस फल पाओ।।४।।

मैं कब पाऊँ परम दिगम्बर मुद्रा.....

मै कब पाऊॅ परम दिगम्बर मुद्रा ऐसी मुनिवर की।
निशदिन ध्याऊ, गाऊ मगल महिमा आतम सुखकर की।।टेक।।
निज आत्म प्रतीति जो करते है, वे मोह तिमिर को हरते है।
शुद्धात्म स्वरूप विचरते है, मै कब पाऊॅ परम दिगम्बर मुद्रा ।।१।।
बाहर मे जगल वास रहे, अन्तर शुद्धात्म प्रकाश रहे।
सवेदन प्रचुर विलास रहे, मै कब पाऊॅ परम दिगम्बर मुद्रा ।।२।।
वैराग्य ज्ञान आधार रहे, कषाय विषय परिहार रहे।
नव रस मय शाति विहार रहे, मै कब पाऊॅ परम दिगम्बर मुद्रा ।।३।।
परिणति विभाव विराम रहे, उपयोग थिर निज ठाम रहे।
निज सहज रूप विश्राम रहे, मै कब पाऊॅ परम दिगम्बर मुद्रा ।।४।।
उपयोग शुभाशुभ थिर न कदा, शुद्धोपयोग थिर रहे सदा।
'निर्मल' निज आत्म भज सबसे जुदा,मै कब पाऊॅ परम दिगम्बर मुद्रा ।।५।

अब ज्ञाता-दृष्टा रहना.....

अब ज्ञाता-दृष्टा रहना फेर न यह नर तन धरना ।
पुण्य-उदय नर तन पाया, फिर भी विषय मे धाया ।टेक।।
विषय तजो निज हित करना, अब ज्ञाता-दृष्टा रहना ।।१।।
अनादि से मिथ्या जहर पिया, पचमकाल मे जनम लिया ।
इस भव न मुक्ति मिलना, अब ज्ञाता-दृष्टा रहना ।।२।।
रत्नत्रयनिधि पहिचानो, अपने को आतम मानो ।
दृष्टि मुक्ति इसी विधि करना, अब ज्ञाता-दृष्टा रहना ।।३।।
अपना रुप सम्भालो तुम, रागादिक को टालो तुम ।
इस विधि नर तन सफल करना, अब ज्ञाता-दृष्टा रहना ।।४।।
ये भव पाया भव दुख हरने को, फेर न जग दुख करने को ।
निज शाश्वत सुख को वरना, अब ज्ञाता-दृष्टा रहना ।।५।।
भव तन भोग विरागी बन, समतारस का स्वादी बन ।
'निर्मल' मत गल्ती करना, अब ज्ञाता-दृष्टा रहना ।।६।।

भाई भविजन तेरे दु:ख को देख के.....

भाइं! भविजन तेरे द.ख को देख के, ज्ञानी की आँख भर आवे।
वे सोचते रे, कब सच्ची बात तू पावे वे सोचते रे।।टेक।
मोहमाया और ममता भाव, तुझे जनम-मरण मे घुमावे।
जनम-मरण और मरण-जनम की, कतार का पार कब आवे।।१।।
विश्वविजेता वीर प्रभु का, महोत्सव आज तू मनावे।
क्या फायदा महामहोत्सव का? ससार अगर न छूट जावे।।२।।
बरसो से गुरुजी से सुनते आये, अब पालन कब किया जावे।
महाकाल सिर पर मडराता है, कोन जाने कौन कब जावे।।३।।
पाप भावो मे दु.ख बहुत है, दुनिया मे हर कोई माने।
पुण्य आसक्ति मीठा जहर है, वो भी कतल कर जावे।।४।।
पाप और पुण्य बाहर की बात है, स्थिरता 'कमल' कैसे आये।
पल-पल बदलती पर्याय भूलकर, ध्रुवधाम मे ही डूब जावे।।५।।

जिस विधि कीने करम चकचूर.....

जिस विधि कीने करम चकचूर, सो विधि बतलाऊँ तोहे ।
भरम मिटाऊँ तेत जिस विधि कीने करम चकचूर।।टेक।।
सुनो सत अर्हत पथ जन, स्व-पर दया जिस घट भरपूर।
त्याग प्रपच निरीह करैं तप, ते नर जीते कर्म करूर।।१।।
तोडे क्रोध निठुरता अघ नग, कपट क्रूर सिर डारी धूर।
असत अग कर भग बतावे, ते नर जीते कर्म करूर।।२।।
लोभ कदरा के मुख मे भर, काठ असजम लाय जरूर।
विषय कुशील कुलाचल फूँके, ते नर जीते करम करूर।।३।।
परम क्षमा मृदुभाव प्रकाशे, सरलवृत्ति निरवाछक पूर।
धर सजम तप त्याग जगत सब, घ्यावै सतचित केवलनूर।।४।।
यह शिवपथ सनातन सतो, सादि अनादि अटल मशहूर।
या मारग 'नैनानन्द' हू पायो, इस विधि जीते कर्म करूर।।५।।

ज्ञानेश्वर द्रव्य बना है.....

ज्ञानेश्वर द्रव्य बना है।।टेक

द्रव्य बना है, भाव बना है, करना भी साथ बना है।
बने बनाये जड चेतन मे, अन्य क्या करने जावे रे।।१।।
इच्छा माफिक विश्व करन की, बेहद हाय मचावे।
कौन सुने झूठे क्रन्दन को, वृथा ही कूक मचावे।।२।।
करण जोग की लाय लगी है, किस विधि शान्ति आवे।
अन्य द्रव्य तो बाहर लौटे, अडने नहि कोई पावे।।३।।
श्रद्धा, ज्ञान उपयोग पलटते, णमो अरिहत ध्यावे।
पुद्गल से उपयोग हटते ही, सिद्ध प्रभू अपनावे।।४।।
मन से गुप्त वचन से गुप्त, काया से गुप्त ही पावे।
गुप्त गुफा मे जाय विराजो, निर्भय आनद पावे।।५।।

अबके ऐसी दिवाली मनाऊँ.....

अबके ऐसी दिवाली मनाऊँ, कबहूँ फेर न दु खडा पाऊँ।।टेक।
आन कुदेव कुरीति छॉड के, श्री महावीर चितारूँ।
राग-द्वेष का मैल जलाकर, उज्ज्वल ज्योति जगाऊँ।।१।।
अपनी मुक्ति-तिया हर्षाऊँ, अबके ऐसी दिवाली मनाऊँ।
निज अनुभूति महालक्ष्मी का, वास हृदय करवाऊँ।।२।।
निजगुण लाभ दोष टोटे का, लेखा ठीक लगाऊँ।
जासो फेर न टोटा पाऊँ, अबके ऐसी दिवाली मनाऊँ।।३।।
ज्ञान-रतन के दीप मे, तप का तेल पवित्र भराऊँ।
अनुभव ज्योति जगा के, मिथ्या अन्धकार बिनसाऊँ।।४।।
जासो शिव की गैल निहारूँ, अबके ऐसी दिवाली मनाऊँ।
अष्ट करम का फोड फटाका, विजयी जिन कहलाऊँ।।५।।
शुद्ध बुद्ध सुखकन्द मनोहर, शील स्वभाव लखाऊँ।
जासो शिवगोरी बिलसाऊँ, अबके ऐसी दिवाली मनाऊँ।।६।।

माता प्रियकारणी ने उपजायो वीर ललना.....

माता प्रियकारणी ने उपजायो वीर ललना ।
वीर ललना श्री तीर्थकर ललना ।।टेक।।
इन्द्रादिक भव क्षय के कारण, खुशियाँ खूब मनाये ।
जय-जयकार करे प्रभुजी का, बाजे विविध बजावे ।।
तान्डव नृत्य रचायो इन्द्र नृप के अगना ।।१।।
डलो पालना चदन को तीर्थकर जिसमे झूले ।
जिनका भव नही होना, वे देख हृदय मे फूले ।।
ऐसी हर्षित होय शची, जिनका झुलावे पलना ।।२।।
और झुलावे नर नारी सब, खीच-खीच कर डोरी ।
जन्म हमारा न हो प्रभुजी, ऐसी गावे लोरी ।।
चहुँगति फेरा मिट जावे ऐसी दृष्टि धरना ।।३।।
जनम-मरण का नाशक प्रभु ने दिया हमे उपदेश ।
करो नही तुम परद्रव्यन मे किंचित् राग न द्वेष ।।
ऐसे धर्म से 'निर्मल' होवे न पुन रुलना ।।४।।

अपनी सुधि पाय आप.....

अपनी सुधि पाय आप, आप यो लखायो ।।टेक।।
मिथ्यानिशि भई नाश, सम्यक् रवि को प्रकाश ।
निर्मल चैतन्य-भाव, सहजहि दर्शायो ।।१।।
ज्ञानावर्णादि कर्म, रागादि मेटि भर्म ।
ज्ञानबुद्धि ते अखण्ड, आपरूप थायो ।।२।।
सम्यक दृग ज्ञान चरण, कर्त्ता कर्मादि करण ।
भेदभाव त्याग के, अभेद-रूप पायो ।।३।।
शुक्लध्यान-खड्ग धार, वसु अरि कीने सँहार ।
लोक अग्र सुथिर वास, शाश्वत सुख पायो ।।४।।

शुभ अथवा ये अशुभ कामना.....

शुभ अथवा ये अशुभ कामना, आकुलता की बोरी है।
सतगुरु बारबार समझाते, राग बध की डोरी है।।टेक।।
हाथी ईख घास दोनो को, एकमेक कर खाता है।
स्वाद कहाँ मीठे फीके का, सबको साथ चबाता है।।
राग और चैतन्य एक-सा, जिसको अनुभव आता है।
उनको कैसे मिले आत्मा, वह ससार कमाता है।।
भेदज्ञान के बिना त्याग बेकार, तपस्या कोरी है।।१।।
जैसे दर्पण मे प्रतिबिंबित, होते हाथ-पॉव सारे,।
किन्तु एक अश न उसका, घुसता दर्पण मे प्यारे।।
वैसे ही जो ज्ञेय ज्ञायक मे, झलक रहे मीठे-खारे,।
अपनी-अपनी जगह पडे हैं, सब के सब न्यारे-न्यारे।।
है स्वतत्र परिणमन कौन का, बिस्तर किसकी बोरी है।।२।।
जल मे नाव रहे क्या खतरा, नही डूबने पायेगा।
किन्तु नॉव मे जल यदि आया, सबका साथ डुबायेगा।।
जो जग से निर्लिप्त उसे क्या, शका कौन नचायेगा।
जिसके मन मे बसा हुआ, संसार वही अकुलायेगा।।
पर का आलम्बन दुखदाई, क्या हिसा क्या चोरी है।।३।।

जग है अनित्य तामैं.....

जग है अनित्य तामैं शरण न वस्तु कोय,।
तातैं दु:खरासि भववास कौं निहारिये।।टेक।।
एक चित् चिन्ह सदा भिन्न परद्रव्यानि तै,।
अशुचि शरीर मे न आपाबुद्धि धारियै।।१।।
रागादिक भाव करै कर्म को बढावै तातै।
सवरस्वरूप होय कर्मबन्ध डारियै।।२।।
तीन लोक मॉहि जिनधर्म एक दुर्लभ है,।
तातैं जिनधर्म कौ न छिनहू विसारिये।।३।।

एक बार बस एक बार.....

राग-द्वेष मे वर्षो बीते, अब निज सुधी भी आने दो।
एक बार बस एक बार, मुझे आतम ज्योति जलाने दो।।टेक।।
पडा अनादि मिथ्यात्व हृदय मे उसका शमन करूँगा मै।
अध करण परिणाम के द्वारा, समकित प्राप्त करूँगा मै।।
उपशम कर अन्तरमहूर्त मे क्षयोपशम धर लूँगा मै।
भ्राता अपने चारित्र द्वारा, श्रेणी भी चढ लूँगा मै।।
होने दो टुकडे बैरी के, घर से उसे भगाने दो।
एक बार बस एक बार मुझे आतम ज्योति जलाने दो।।१।।
कॉप उठा मिथ्यात्व सम्बन्धी योद्धा भी अब घबडाये।
दर्शन मोह की मौत देख चारित्र भाई भी थर्राये।।
काम क्रोध मद लोभ भी भागे, चचा भतीजे जीजा साले।
पडने लगी तभी प्राणो के; कुमति कुबुद्धि को लाले।।
खडे उदास मोह राजा, विकट समस्या सुलझाने दो।
एक बार बस एक बार मुझे आतम ज्योति जलाने दो।।२।।
बडे अकडते चेतन राजा, आये है अधिकार लिये।
क्षमा शील सयम विवेक, सेनाओ को साथ लिये।।
बोल उठे मन्त्री विवेक, तू सोच न कर चेतन राजा।
नष्ट करूँगा तुरत मोह को, भेद विज्ञान खड्ग द्वारा।।
विरोधियो से लूँगा बदला, पार्टी पावर मे आने दो।
एक बार बस एक बार मुझे, आतम ज्योति जलाने दो।।३।।
कहने लगे मोह राजा, निज सत्ता को नहिं जाना क्या।
भगा तुझे अन्तरमहूर्त मे, चेतन तुमने समझा क्या।।
भले क्षयोपशम तू कर ले, श्रेणी न चढने दूँगा।
गिरा गुणस्थान ग्यारहवे से, मिथ्यातम मे पटकूँगा।।
ज्ञानावरणी दर्शनावरणी, अन्तराय जग जाने दो।
एक बार बस एक बार, मुझे आतम ज्योति जलाने दो।।४।।

पुरुषार्थ वजीर हँसकर बोला, क्षायिक की कोशिश कर लूँ।
सहज ज्ञान स्वभाव के द्वारा, शिव-रमणी को भी वर लूँ।
चढ श्रेणी मे क्षपक तभी, श्रद्धा चारित्र धर लूँगा।
सयोगी और अयोगी प्रभु बन, सिद्धपुरी मे जाऊँगा।
ध्वश हो जायेगे राग-द्वेष, ध्रुवधाम का शख बजाने दो।
एक बार बस एक बार, मुझे आतम ज्योति जलाने दो।।५।।

नर से नारायण बनने का.....

महा शक्ति का स्रोत स्वय तुम, इस रहस्य को जानो।
विश्व-विराट तुम्ही हो अपना अन्तर्बल पहिचानो।।टेक।।
महावीर ने कहा स्वय को, यदि ज्ञान जाओगे।
जिसके लिये भटकते हो, अपने मे ही पाओगे।।
अमृत घट विडम्बना का, क्यो बने विनीत भिखारी।।१।।
अहकार का अधकार ही मन को दुख देता है।
आत्मस्वरूपी दीप्तिमान, छबि को यह ढक लेता है।।
लक्ष्य 'क्षितिज' को समझा तो, भौतिक अज्ञान बढेगा।
इसमे चरम लक्ष्य पाने का रूप नही निखरेगा।।
हर चरमोत्कर्ष का, अधिकारी है हर ससारी।।२।।
लक्ष्य स्वय ही पाने का, जब आत्म-विवेक जगेगा।
आत्मा का वास्तविक रूप प्रतिबिम्बित तभी मिलेगा।।
कितना ही जग छानो, सात्विक जीवन यही टिकेगा।
मृग मरीचिका मे उलझा तो, भव भव मे भटकेगा।।
यहा नही है तर्क हीन, अनुदार इजारेदारी।।३।।
सम्यक् दर्शन ज्ञान चरित जिनवर पथ दर्शाते हैं।
इसमे प्रकृति बन्ध कर्मास्रव पास नही आते हैं।।
अन्यायी प्रतिपक्षी का खोटा सिक्का न चलेगा।
ऐसा असफल जीवन, गीले ईधन सा सुलगेगा।।
दया अहिंसा धार्मिकता आत्मोन्नति मे सहकारी।।४।।

प्राण मेरे तरसते हैं······

प्राण मेरे तरसते है कब मुझे समकित मिलेगा ?
कब स्वय से प्रीत होगी कब मुझे निजपद मिलेगा ? ।।टेक।।
अरे काल अनादि से मै धर्म सुनता आ रहा हूँ,
किन्तु फिर भी आस्रवो के जाल बुनता जा रहा हूँ ।
दिव्यध्वनि के शब्द मेरे कर्ण मे तो गूँजते है,
किन्तु मेरे हृदय मे आकर नही क्यो कूजते है ।
पुण्य बेला आयगी कब मन कमल यह कब खिलेगा ?
कब स्वय से प्रीत होगी कब मुझे निजपद मिलेगा ? ।।१।।
यह न सोचा आत्मा तो ज्ञान का सागर स्वय है,
शुद्ध ज्ञाता विमल दृष्टा गुण अनन्त अतुल नियम हैं ।
कर्म रज से यह मलिन है किन्तु कंचन सम खरा है,
जगत मे सुख खोजता जब सुख स्वयं मे ही भरा हैं ।
कर्म रिपु का नाश करने कब निज स्थल मे चलेगा?
कब स्वयं से प्रीत होगी कब मुझे निजपद मिलेगा? ।।२।।
लिप्त है व्यवहार मे नित नही निश्चय दृष्टि इसकी,
बढ रही कर्माभिनय से नित्य प्रति ही सृष्टि इसकी ।
इस प्रकार अनन्त भव घर घर भटकता जा रहा है,
शुभ-अशुभ के बन्धनो मे ही अटकता आ रहा है ।
नष्ट कब मिथ्यात्व होगा ज्ञान कब उर मे मिलेगा?
कब स्वय से प्रीत होगी कब मुझे निजपद मिलेगा ? ।।३।।
निर्जरा संवर न समझा आस्रवो मे धर्म माना,
रही मिथ्यादृष्टि मेरी धर्म का ना मर्म जाना ।
पुण्य से ही मोक्ष होगा यही अब तक मानता था,
राग पर से कर रहा था स्व-पर भेद न जानता था ।
दूर होगी भूल कब यह ज्ञानदीपक कब जलेगा?
कब स्वय से प्रीत होगी कब मुझे निजपद मिलेगा? ।।४।।

बिना समकित आत्मा का रे नही उद्धार होगा
बिना समकित धर्म से तो मूढ निष्फल प्यार होगा ।
कर्म बन्धन तोडने की शक्ति मुझमे ही भरी है.
पर कुमति ने बुद्धि सारी, मोह माया से हरी है ।।
कब सुमति का ध्यान होगा दीप समकित कब जलेगा?
कब स्वय से प्रीत होगी कब मुझे निजपद मिलेगा? ।।५।।
यदि न चेता मन अभी भी फिर न यह अवसर मिलेगा,
भ्रमण गति-गति का करेगा सदा भव-भव मे रुलेगा ।।
आज फिर नरभव मिला है और जिनवाणी मिली है,
जाग रे मन, चेत रे मन, नीव जडता की हिली है ।।
तत्व का श्रद्धान कर ले रत्न समकित झिलमिलेगा ?
कब स्वय से प्रीति होगी कब मुझे निजपद मिलेगा ? ।।६।।

यदि भला किसी का कर न सको.....

यदि भला किसी का कर न सको, तो बुरा किसी का मत करना ।
अमृत ना पिलाने को घर मे, तो जहर पिलाने से डरना ।।टेक।।
यदि सत्य मधुर न बोल सको, तो झूठ कटुक भी मत बोलो ।
यदि मौन रखो सबसे अच्छा, कम से कम विष तो न घोलो ।।
बोलो तो पहले तुम बोलो, वचन सुहित बोला करना ।।१।।
यदि घर न किसी का बना सको, तो झोपडिया न जला देना ।
यदि मरहम पट्टी कर न सको, तो खार नमक न लगा देना ।।
यदि दीपक बनकर जल न सको, तो अन्धकार भी मत करना ।।२।।
यदि फूल नही बन सकते हो, तो काटे बन न बिखर जाना ।
मानव बनकर सहला न सको, तो दिल भी किसी का न दुखाना ।।
यदि देव नही बन सकते हो, तो दानव बनकर मत मरना ।।३।।
मुनि पुष्प अगर भगवान नही, तो कम से कम इन्सान बनो ।
किन्तु न कभी शैतान बनो, और कभी न तुम हैवान बनो ।।
यदि सदाचार अपना न सको, तो पापो मे पग मत धरना ।।४।।

शुभ कर्मो से पुण्य, अशुभ से पाप.....

शुभ कर्मो से पुण्य, अशुभ से पाप कहाता आया है ।
दोनो मे आकुलता रहती, दोनो ने भरमाया है ।।टेक।।
एक लोह श्रृखला अगर तो दूजी बेडी सोने की ।
दोनो बन्धन का कारण है, दोनो बोझा ढोने की ।।
पाकर आज गर्व क्या करता, कल है बारी खोने की ।
जो हँसता है उसको ही फिर चिन्ता रोने की ।।
है निश्चिन्त वही जिसने शुद्धोपयोग अपनाया है ।।
दोनो मे आकुलता रहती, दोनो ने भरमाया है ।।१।।
जिस डाली मे फूल, उसी मे लगते तीखे शूल सखे ।
चिकनाहट है जहॉ, वही पर जम सकती है धूल सखें ।।
पर पदार्थ मे रागभाव ही, होता दुख का मूल सखें ।
खो सम्यक्त्व ईश को भजना, होगी तेरी भूल सखे ।।
नेह किसी से भी हो बद है, बन्ध-बीज कहलाया है ।
दोनो मे आकुलता रहती, दोनो ने भरमाया है ।।२।।
यह ससार रहट की चक्की, मधुमक्खी का छाता है ।
आठ कर्मरूपी पहियो पर, जिसको मोह चलाता है ।।
राग-द्वेष दो बैल जुते है, पाप-पुण्य का खाता हैं ।
आकुलता से कब बच सकते, जब विभाव से नाता है ।
जीवन का पट क्षणिक कही पर धूप कही पर छाया है ।
दोनो मे आकुलता रहती, दोनो ने भरमाया है ।।३।।
सर्दी गर्मी वर्षा सहकर घोर तपस्या करते हो ।
छोड नगर का वास अकेले वन के बीच विचरते हो ।।
योग साधना किस मतलब की, यदि भोगो पर मरते हो ।
बाहर से क्यो कर निर्भय, जब अन्तरग मे डरते हो ।।
पाप विकारभाव मान का व्यर्थ शरीर सुखाया है ।
दोनो मे आकुलता रहती, दोनो ने भरमाया है ।।४।।

तत्त्वज्ञान का चिन्तन करके, जब भय दूर भगाओगे ।
पर-पदार्थ से तज ममत्व को, समता मन मे लाओगे ।।
इस त्रिफला को शान्ति-सुधारस के सग खूब चबाओगे ।
मोह-खटाई, कटु कपाय से भी परहेज रखाओगे ।।
तब वह जग की व्याधि मिटेगी, जिसने नाच नचाया है ।
दोनो मे आकुलता रहती, दोनो ने भरमाया है ।।५।।

अमूल्य तत्त्व विचार.....

वह पुण्य-पुन्ज-प्रसग से शुभ देह मानव का मिला।
तो भी अरे ! भवचक्र का फेरा न एक कभी टला।।टेक।।
सुख-प्राप्ति हेतु प्रयत्न करते सुक्ख जाता दूर है।
तू क्यो भयकर भाव-मरण प्रवाह मे चकचूर है?।।१।।
लक्ष्मी बढी अधिकार भी, पर बढ गया क्या बोलिये?।
परिवार और कुटुम्ब है क्या वृद्धि? कुछ नहि मानिये।।२।।
ससार का बढना अरे ! नर देह की यह हार है।
नहि एक क्षण तुझको अरे ! इसका विवेक विचार है।।३।।
निर्दोष सुख निर्दोष आनन्द लो जहाँ भी प्राप्त हो।
यह दिव्य अन्त.तत्त्व जिससे बन्धनो से मुक्त हो।।४।।
परवस्तु मे मूर्छित न हो इसकी रहे मुझको दया।
वह सुख सदा ही त्याज्य रे ! पश्चात् जिसके दु ख भरा।।५।।
मै कौन हूँ? आया कहाँ से? और मेरा रूप क्या?।
सम्बन्ध दुखमय कौन है ? स्वीकृत करूँ परिहार क्या ?।।६।।
इसका विचार विवेक पूर्वक शान्त होकर कीजिये।
तो सर्व आत्मिक-ज्ञान के सिद्धान्त का रस पीजिये।।७।।
किसका वचन उस तत्त्व की उपलब्धि मे शिवभूत है।
निर्दोष नर का वचन रे ! वह स्वानुभूति प्रसूत है।।८।।
तारो अहो तारो निजात्मा शीघ्र अनुभव कीजिये।
सर्वात्म मे समदृष्टि द्यो, यह वच हृदय लिख लीजिये।।९।।

समकित की शीतल वर्षा.....

समकित की शीतल वर्षाऋतु आई निज प्रागण मे ।
मिथ्यात्व ग्रीष्म ऋतु बीती झूलो निज क्रीडागन मे ।।
सतोष शील सयम व्रत बादल बन घुमड रहे है ।
करुणा के सागर मन की गागर मे उमड रहे है ।।टेक।।
धर्मामृत बरस बरस कर उर मे उज्ज्वलता लाता ।
धुल जाती कर्म कलुषता पावन निर्मलता पाता ।।
वैराग्य घटा घिर आई चमकी निजत्व की बिजली ।
अब जी को नही सुहाती पर के ममत्व की कजली ।।१।।
पुण्यो के स्वर्णिम घुघर बजते स्वयमेव छनन छन ।
निज वीणा के तारो से स्वर गूजे झनन झनन झन ।।
श्रृगार सजा पुण्यावलि स्वर्गो के मार्ग बताती ।
पर से ममत्व त्यागी के मन को विरक्तता भाती ।।२।।
जप तप व्रत पूजन अर्चन तारो से झिलमिल झलके ।
अघ का तम नष्ट हुआ रे शुभ जल गागर से छलके ।।
भावना मुक्ति की अनुपम नर्त्तन सुरम्य करती है ।
कल्पना मात्र शिव सुख की भव भव के दुख हरती है ।।३।।
ग्यारह प्रतिमा मुखरित हो निज ऑचल लहराती है ।
ऐलक छुल्लक मुनि पद की मर्यादा बतलाती है ।।
शुद्धात्मराज पाने को अनुभव पराग कर सचित ।
देखता स्वय ज्ञाता बन निज को पर से कर वचित ।।४।।
कर्मो का अत निकट अब यह ज्ञान पवन लायेगा ।
चरित्र शक्ति के बल से भव बधन कट जाएगा ।।
मै तो चैतन्य स्वरूपी निर्मल स्वरूप पाऊँगा ।
मै नित्य निरजन चेतन सिद्धात्म स्वगुण गाऊँगा ।।५।।
समकित पावस की झडियाँ रिमझिम झर रही निरतर ।
लहलहा उठी समता की हरियाली उर अभ्यतर ।।

समकित वर्षा के जल को सचित कर निज सागर मे ।
सच्चिदानद सुख सागर भर लूंगा निज गागर मे ।।छी।।

हूँ स्वतंत्र निश्चल निष्काम.....

हूँ स्वतत्र निश्चल निष्काम, ज्ञाता-दृष्टा आतम राम ।।टेक।।
मैं वह हूँ जो है भगवान, जो मैं हूँ वह है भगवान ।
अन्तर यही ऊपरी जान, वे विराग यहाँ राग वितान ।।१।।
मम स्वरूप है सिद्ध समान, अमित शक्ति सुख ज्ञान निधान ।
किन्तु आश वश खोया ज्ञान, वना भिकारी निपट अजान ।।२।।
सुख-दुख दाता कोई न आन, मोह-राग-रूष दु ख की खान ।
निज को निज पर को पर जान, फिर दु ख का नही लेशनिदान ।।३।।
जिन शिव ईश्वर ब्रह्मा राम , विष्णु बुद्ध हरि जिसके नाम ।
राग त्याग पहुँचूं निजधाम, आकुलता का फिर क्या काम ।।४।।
होता स्वय जगत परिणाम, मैं जग का करता क्या काम ।
दूर हटो परकृत परिणाम ज्ञायकभाव लखूं अभिराम ।।५।।

कहा मान ले ओ मोरे भैया.....

कहा मानले ओ मोरे भैया, शाति जीवन वनाना अब सार है ।
तू वन जा वने तो परमात्मा, मेरी आत्मा की मूक पुकार है ।।टेक।।
मान वुरा है त्याग सजन जो, विपद करे और बोध हरे ।
चित्त प्रसन्नता सार सजन जो, विपद हरे और मोद भरे ।।
नीति तजने मे तेरी ही हार है, वाणी जिनवर की ही हितकार है ।।१।।
समय बडा अनमोल सजन जो, इधर फिरे तो उधर फिरे ।
कर नही पाया मूल्य सजन जो, समय गया ना हाथ लगे ।।
गुप्त शाति की यहा भरमार है, इनको समझे तो बेडा पार है ।।२।।
इस जीवन को सफल बना, यह पुण्य योग से प्राप्त हुआ ।
वातो से नही काम सजन, कर्तव्य सामने खडा हुआ ।।
सुख शाति का ये ही द्वार है, शिक्षा दैनिक महा हितकार है ।।३।।

तिल-तिल जलकर वैभव जोड़ा.....

तिल-तिल जलकर वैभव जोडा जाने किस आशा मे ।
बे-लगाम इच्छाएँ छोडी मन की हर भाषा मे ।।टेक।।
पल भर को भी ध्यान न आई जीवन की परिभाषा ।
चिन्तन होता रहा न बदला कभी दृष्टि का पाँसा ।।१।।
सुखाभास को रहे समझते जीवन की उपलब्धि ।
पहुँच नही पाई विवेक तक आकर्षण तज बुद्धि ।।
औरो से तुलना करने मे समय रोज ही खोया ।
दोष देखते रहे पराये अपना मुख न धोया ।।२।।
भौतिक उपलब्धि बढने से भी क्या उन्नति होती ।
अक्सर तो अधिकाश जनो की बुद्धि भ्रष्ट ही होती ।।
भूल भूल जाता है मानव लक्ष्य परम सुख-धाम का ।
आकर्षण मे खो जाता है नाम "शाश्वत-राम" का ।।३।।
फिर फिर जन्म-मृत्यु का चक्कर युग युग तक चलता है ।
"अनतानुबधीकषाय" मे मानव मन जलता है ।।
जन्म-मृत्यु के अन्तराल मे केवल दौड लगी है ।
रोज रोज नूतन अभिलाषा की ही प्यास लगी है ।।४।।
'राग' नही तो सदा 'द्वेष' की ही 'अति' पर मन डोला ।
'वीतराग' पर रुक करके मन कभी नही 'जय बोला' ।।
'शुभ से अशुभ', 'अशुभ से शुभ' मे हर पल 'वृत्ति' बही है ।
'शुद्धभाव' की कथा जनम भर मन ने नही कही है ।।५।।
सच तो यह है मन ही बाधक 'परम-लक्ष्य' पाने में ।
रोडा बन कर अड जाता मन मजिल तक जाने मे ।।
मन स्मृतियो का सग्रह है चचल वालक जैसा ।
मन हर पल वाधा बनता है खोटे दामो जैसा ।।६।।
सन्त हृदय से मन हारा है, जीता है भोगी मे ।
दास बना लेता भोगी को, डरता है योगी से ।।

मन तो है वीते की गाथा, ज्ञात हुए की छाया ।
मन से ही पैदा होती है कल्पनाओ की काया ।। ७।।
इसीलिए मन-आगन पर जो है अलिप्त वन देखो ।
'वन्ध' और 'सवर' की घटना दृष्टा बनकर लेखो ।।
इतना सहज हो सके जीवन तभी 'निर्जरा' होगी ।
इतनी जागृत रहे चेतना तव न बनेगी रोगी ।। ८।।

आचार्य श्री धरसेन जो.....

आचार्य श्री धरसेन जो, न ग्रन्थ लिखाते ।
हम जैसे बुद्धि हीन, तत्त्व कैसे लहाते ।।टेक।।
अपने अलौकिक ज्ञान से, सब भेद जानकर ।
बुलवाये दो मुनिराज, की महिमा नगर खवर ।।
गर वे नहिं मुनिराज, युगल ऐसे वुलाते ।।१।।
आने से पहले स्वप्न मे, ही योग्य जानकर ।
दो मन्त्र सिद्धि द्वारा फिर, परखा प्रधान कर ।।
उत्तीर्ण होकर योग्यता, गर वे न दिखाते ।।२।।
पश्चात् पढाया उन्हे, निज शिष्य मानकर ।
उनने भी ग्रन्थ लिखा, गुरु उपकार मानकर ।।
करुणा निधान मुनि नही, गर ग्रन्थ रचाते ।।३।।
श्री पुष्पदन्त सूरि, प्रथम खण्ड वनाया ।
अभिप्राय जानने को, भूतवलि पे पढाया ।।
यदि वे नहिं उस ग्रन्थ का, प्रारम्भ कराते ।।४।।
उनने प्रसन्न होय शेष ग्रन्थ रचाया ।
श्री ज्येष्ठ शुक्ल पचमी को, पूर्ण कराया ।।
गर वे नहिं इस ग्रन्थ को, सम्पूर्ण कराते ।।५।।
ग्रन्थाधिराज की हुई थी आज ही पूजा ।
इस काल में इनसे बड़ा, उपकार न दूजा ।।
करुणा निधान गुरु अगर ऐसा न करते ।।६।।

संसारी जीवनां भावमरणो.....

संसारी जीवना भावमरणो टालवा करुणा करी, ।
सरिता बहावी सुधा तणी प्रभु वीर ! ते सजीवनी ।।
शोषाती देखी सरितने करुणाभीना हृदये करी ।
मुनिकुन्द सजीवनी समयप्राभृत तणे भाजन भरी ।।१।।
कुन्दकुन्द रच्यु शास्त्र, साथिया अमृते पूर्या ।
ग्रथाधिराज! तारामा भावो ब्रह्माडना भर्या ।।२।।
अहो! वाणी तारी प्रशमरस-भावे नितरती, ।
मुमुक्षुने पाती अमृतरस अजलि भरी भरी ।।
अनादिनी मूर्छा विष तणी त्वराथी उतरती ।
विभावेथी थभी स्वरूप भणी दौडे परिणती ।।३।।
तू छे निश्चयग्रन्थ भग सघला व्यवहारना भेदवा ।
तू प्रज्ञाछीणी ज्ञान ने उदयनी सधि सहु छेदवा ।।
साथी साधकनो तू भानु जगनो सदेश महावीरनो ।
विसामो भवक्लातना हृदयनो, तू पंथ मुक्ति तणो ।।४।।
सूण्ये तणे रसनिबाध शिथिल थाय, ।
जाण्ये तने हृदय ज्ञानी तणा जणाग ।।
तूं रूचाता जगतनी रुचि आलसे सौ, ।
तू रीझता सकलज्ञायकदेव रीझे ।।५।।
बनावु पुत्र कुन्दनना, रत्नोना अक्षरो लखी ।
तथापि कुन्दसूत्रोना अकाये मूल्य ना कदी ।।६।।

✓आनंद मंगल आज हमारे..... राग - भैरवी

आनद मंगल आज हमारे, आनंद मगल आज ।।टेक।।
श्री जिन-चरण-कमल परसत ही, विघन गये सब भाज ।।१।।
सफल भई सब मेरी कामना, सम्यक् हिये विराज ।।२।।
'नैन' वयन मन शुद्ध करन को, भेटे श्री जिनराज ।।३।।

सर्वांगी 'सन्मति' श्रुतधारा.....

सर्वांगी 'सन्मति' श्रुतधारा, गुरु गौतम ने मुख धारी ।
थी करुणा हो भाव-मरण बिन, तृषित तप्त भवि ससारी ।।
हृदय शुद्ध मुनि कुन्दकुन्द ने, वह सजीवन दया विचार ।
घट 'प्रवचन' 'पचास्ति' 'समय' मे, ली लख शोषित अमृत धार ।।१।।
कुन्द रचित पद सार्थक कर, मुनि 'अमृत' ने अमृत सीचा ।
ग्रन्थराज त्रय तुमने अद्भुत, मृदुरस ब्रह्म-भाव सीचा ।।२।।
वीर वाक्य यह अहो, नितारे साम्य सुधारस ।
भर हृदयान्जलि पिये, मुमुक्षु वमे विषय-विष ।।
गहरी-मूर्छा प्रबल-मोह, दुस्तर-मल उतरे ।
तज विभाव हो स्वमुख परिणति ले निज लहरे ।।३।।
यह है निश्चय ग्रन्थ, भग सयोगी भेदे ।
अरु है प्रज्ञा-शस्त्र उदय मति सधी छेदे ।।
साधक साथी जगत सूर्य, सदेश वीर का ।
क्लान्त जगत विश्राम-स्थान, सतपथ सुधीर का ।।४।।
सुने, समझ ले, रुचे, जगत रुचि से अलसावे ।
पडे बधरस शिथिल हृदय ज्ञानी का पावे ।।५।।
कुन्दन पत्र बना लिखे, अक्षर रत्न तथापि ।
कुन्द सूत्र के मूल्य का, अकन हो न कदापि ।।६।।

चेतन अनुभव घट प्रतिभास्यौ.....

चेतन अनुभव घट प्रतिभास्यौ ।।टेक।
अनय पक्ष कौ मोह अंधियारौ, जारौ सारौ नास्यौ ।।१।।
अनेकात किरना छवि राजि, विराजत भान विकास्यौ ।
सत्तारूप अनूपम अद्भुत, ज्ञेयाकार विकास्यौ ।।२।।
आनद कद अमद अमूरति, सूरति मै मन वास्यो ।
चतुर 'रूप' के दरसत जो सुख, जनै वाकू वास्यो ।।३।।

पर्व पर्यूषण आया आनंद स्वरूपी जान.....

पर्व पर्यूषण आया आनद स्वरूपी जान ।।टेक।

पर्व कहे सब उत्तम दिन को, उत्तम वह जिनसे निजहित हो ।
यह सदेश सुनाया श्री वीतराग भगवान ।।१।।

सबकी परिणति न्यारी-न्यारी, आप रहे ज्ञायक अविकारी ।
शत्रु मित्र समझाया, यह धर्म क्षमा गुणखान ।।२।।

बडापना जो पर से माने, अपनी निधि को न पहचाने ।
मानकषाय हटाया, यह धर्म मार्दव जान ।।३।।

जाने भले ही न अज्ञानी, किन्तु जानते केवलज्ञानी ।
इस भॉति समझ मे आया, अब तजहुँ कपट कृपान ।।४।।

मै पवित्र चैतन्यस्वरूपी, भाव आस्रव अशुचि विरूपी ।
चाहदाह विनसाया, धारूँ सतोष महान ।।५।।

वस्तुस्वरूप धरै जो जैसो, सम्यक ज्ञानी जाने तैसो ।
राग-द्वेष मिटाया, बोले हित मित प्रिय बान ।।६।।

पचेन्द्रिय मन भोग तजे जा, निज मे निज उपयोग सजै जो ।
षट्काय न जीव नशाया, यह सयम धर्म प्रधान ।।७।।

निस्तरग निजरूप रमे जो, सकल विभाव समूह वमे जो ।
द्वादश विधि बतलाया, यह तप दाता निर्वाण ।।८।।

राग-द्वेष की परिणति छीजे, चारो दान विधि से दीजे ।
उत्तम त्याग बताया, हितकारी स्व-पर सुजान ।।९।।

त्याग करे जो पर की ममता, अपने उर मे धारे समता ।
आकिचन धर्म सुहाया सब सग तजो दुख खान ।।१०।।

विषय बेल विष नारी तजकर, पुद्गलरूप लखो नारी नर ।
ब्रह्मचर्य मन भाया, आनंद दायिकी जान ।।११।।

दशलक्षण अरु सोलह कारण, रत्नत्रय हिसा निरवारन ।
वस्तु स्वभाव बताया 'निर्मल' आतम पहचान ।।१२।।

निरखो अंग-अंग जिनवर के.....

निरखो अग-अग जिनवर के, जिनसे झलके शान्ति अपार।।टेक।।
चरणकमल जिनवर कहे, घूमा सब ससार।
पर क्षणभगुर जगत मे, निज आत्म तत्व ही सार।।
याते पद्मासन विराजे जिनवर, झलके शान्ति अपार।।१।।
हस्तयुगल जिनवर कहे, पर का करता होय।
ऐसी मिथ्याबुद्धि ते ही भ्रमण चतुगर्ति होय।।
याते पद्मासन विराजे जिनवर, झलके शान्ति अपार।।२।।
लोचन द्वय जिनवर कहे, देखा सब ससार।
पर दुखमय गति चार मे, ध्रुव आत्म तत्त्व ही सार।।
याते नाशा दृष्टि विराजे जिनवर, झलके शान्ति अपार।।३।।
अन्तर्मुख मुद्रा अहो, आत्म तत्त्व दरशाय।
जिनदर्शन कर निजदर्शन पा, सद्‌गुरु वचन सुहाय।।
यातै अन्तर्दृष्टि विराजे जिनवर, झलके शान्ति अपार।।४।।

तुम्ही हो ज्ञाता, दृष्टा तुम्ही हो.....

तुम्ही ज्ञाता, दृष्टा तुम्ही हो, तुम्ही जगोत्तम, शरण तुम्ही हो।।
तुम्ही हो त्यागी, तुम्ही वैरागी, तुम्ही हो धर्मी, सर्वज्ञ स्वामी।
हो कर्म जेता, तीरथ प्रणेता, तुम्ही जगोत्तम, शरण तुम्ही हो।।
तुम्ही हो निश्छल, निष्काम भगवन, निर्दोष तुम हो, हे विश्वभूषण।
तुम्हे त्रिविध है वन्दन हमारी, तुम्ही जगोत्तम, शरण तुम्ही हो।।
तुम्ही सकल हो, तुम्ही निकल हो, तुम्ही हजारो हो नाम धारी।
कोई न तुमसा हितोपकारी, तुम्ही जगोत्तम, शरण तुम्ही हो।।
जो तिर सके ना भव सिन्धु माही, किया क्षणो मे है पार तुमने।
बैरी है पावन मुक्तिरमा को, तुम्ही जगोत्तम, शरण तुम्ही हो।।
जो ज्ञान निर्मल है नाथ तुममे, वही प्रगट हो वीरत्व हममे।
मिले परमपद 'सौभाग्य' हमको, तुम्ही जगोत्तम, शरण तुम्ही हो।।

आज हम जिनराज तुम्हारे द्वारे.....

आज हम जिनराज तुम्हारे द्वारे आये हॉ जी हॉ हम आये आये ।।टेक।।
देखे देव जगत के सारे, एक नही मन भाये।
पुण्य उदय से आज तिहारे, दर्शन कर सुख पाये।।१।।
जन्म-मरण नित करते-करते, काल अनन्त गमाये।
अब तो स्वामी जन्म मरण का, दुखडा सहा न जाये।।२।।
भव सागर मे नाव हमारी, कब से गोता खाये।
तुम ही स्वामी हाथ बढाकर, तारो तो तिर जाये।।३।।
अनुकम्पा हो जाय आपकी, आकुलता मिट जाये।
'पकज' की प्रभु यही वीनती, चरण शरण मिल जाये।।४।।

लिया प्रभु अवतार.....

लिया प्रभु अवतार जय जयकार जय जयकार जय जयकार।
त्रिशला नन्दकुमार जय जयकार जय जयकार जय जयकार।।टेक।।
आज खुशी है आज खुशी है, हमे खुशी है तुम्हे खुशी है।
खुशिया अपरम्पार जय जयकार जय जयकार जय जयकार।।१।।
पुष्प और रत्नो की वर्षा, सुरपति करते हरषा हरषा।
बजे दुन्दभीसार जय जयकार जय जयकार जय जयकार।।२।।
उमग उमग नरनारी आते नृत्य भजन सगीत सुनाते।
इन्द्र शची ले सार जय जयकार जय जयकार जय जयकार।।३।।
प्रभु का रूप अनूप सुहाया, निरख निरख छबि हरि ललचाया।
कीने नेत्र हजार जय जयकार जय जयकार जय जयकार।।४।।
जन्मोत्सव की शोभा भारी, देखो प्रभु की लगी सवारी।
जूड रही भीड अपार जय जयकार जय जयकार जय जयकार।।५।।
आवो हम सब प्रभु गुण गावे, सत्य अहिसा ध्वज लहरावे।
जो जग मगलकार जय जयकार जय जयकार जय जयकार।।६।।
पुण्य योग्य सौभाग्य हमारा, सफल हुवा है जीवन सारा।
मिले मोक्ष दातार जय जयकार जय जयकार जय जयकार।।७।।

आओ जिनवर मंदिर में आओ.....

आओ जिनवर मदिर मे आओ, श्री जिनवर के दर्शन पाओ।
जिनशासन की महिमा गाओ, आया आया रे अवसर आनन्द का।।टेक।।
हे जिनवर तब शरण मे, सेवक आया आज।
शिवपुर पथ दरशाय के, दीजे निजपद राज।।
प्रभु अब शुद्धातम बतलाओ, चहुँगति दु:ख से शीघ्र छुडाओ।
दिव्यध्वनि अमृत बरषाओ, आया प्यासा मै सेवक आनन्द का।।१।।
जिनवर दर्शन कीजिए, आतम दर्शन होय।
मोह महातम नाशि के, भ्रमण चतुर्गति खोय।।
शुद्धातम का लक्ष्य बनाओं, निर्मल भेदज्ञान प्रगटाओ।
इन विषयो से चित्त हटाओ, पाओ पाओ रे मारग निर्वाण का।।२।।
चिदानन्द चैतन्य मय, शुद्धातम को जान।
निज स्वरूप मे लीन हो, पाओ केवलज्ञान।।
नव केवललब्धि प्रगटाओ, फिर योगो को नष्ट कराओ।
अविनाशी सिद्धपद पाओ, आया आया रे अवसर आनन्द का।।३।।

श्री अरिहंत छवि लखि हिरदै.....

श्री अरिहत छवि लखि हिरदै, आनन्द अनुपम छाया है।।टेक।।
वीतराग मुद्रा हितकारी, आसन पद्म लगाया है।
दृष्टि नासिका अग्र धार मनु, ध्यान महान बढाया है।।१।।
रूप सुधाकर अजुलि भर-भर, पीवत अतिसुख पाया है।
तारन-तरन जगत हितकारी, विरद शचीपति गाया है।।२।।
तुम मुख-चन्द्र-नयन के मारग, हिरदै मॉहि समाया है।
भ्रमतम दु ख आताप नस्यो सब, सुखसागर बढि आया है।।३।।
प्रगटी उर सन्तोष-चन्द्रिका, निज स्वरूप दरशाया है।
धन्य धन्य तुम छवि 'जिनेश्वर', देखत ही सुख पाया है।।४।।

वीरा प्रभु के ये बोल.....

वीरा प्रभु के ये बोल, तेरा प्रभु तुझ ही मे डोले।
तुझ ही मे डोले, हॉ, तुझ ही मे डोले।।
मन की तो गुडी को खोल खोल खोल खोल।।टेक।।
क्यो जाता गिरनार क्यो जाता काशी।
घट ही मे है तेरे घट घट का वासी।।
अन्तर का कोना टटोल टोल टोल टोल।।१।।
चारो को ही है तूने बढाया।
आतम प्रभु को जो करती है काला।।
इनकी तो सगति तो छोड छोड छोड छोड।।२।।
पर मे जो ढूँढा न भगवान पाया,।
ससार कषायो को तूने है पाला,।।
देखो निजातम की ओर ओर ओर ओर।।३।।
मस्तो की दुनियॉ मे तू मस्त हो जा,।
आतम के रग मे ऐसा तू रग जा।।
आतम को आतम मे घोल घोल घोल घोल।।४।।
भगवान बनने को ताकत है तुझ मे।
तू मान बैठा पुजारी हूँ बस मै।।
ऐसी तू मान्यता को छोड छोड छोड छोड।।५।।

दरबार तुम्हारा मनहर है.....

दरबार तुम्हारा मनहर है, प्रभु दर्शन कर हरषाये है।।टेक।।
भक्ति करेगे चित्त से तुम्हारी, तृप्त भी होगी चाह हमारी।
भाव रहे नित उत्तम ऐसे, घट के पट मे लाये है।।१।।
जिसने चितन किया तुम्हारा, मिला उसे सन्तोष सहारा।
शरणा जो भी आये है, वो निज आतम लख पाये है।।२।।
विनय यही है प्रभु हमारी, आतम की महके फुलवारी।
अनुरागी हो तुम पद पावन, 'बुद्धि' चरण सिर नाये है।।३।।

निज उठ ध्याऊँ गुण गाऊँ.....

निज उठ ध्याऊँ गुण गाऊँ, परम दिगम्बर साधु।
महाव्रत धारी ... धारी ..... महाव्रत धारी।।टेक।।
राग-द्वेष नहिं लेश जिन्हों के, मन में है.... मन में है।
कनक कामिनी मोह-काम नहीं, तन में है. . . तन में है।।
परिग्रह रहित निरारम्भी, ज्ञानी वा ध्यानी तपसी।
नमो हितकारी. .. कारी. .. नमो हितकारी।।१।।
शीतकाल सरिता के तट पर, जो रहते . जो रहते।
ग्रीष्मऋतु गिरिराज शिखर चढ़, अघ दहते . अघ दहते।।
तरुतल रहकर वर्षा में, विचलित, न होते लख भय।
वन अंधियारी,.. भारी वन अंधियारी।।२।।
कंचन कांच मसान महल सम, जिनके है . जिनके है।
अरि अपमान मान मित्र, सम, जिनके है . जिनके हैं।।
समदर्शी समता धारी, नग्न दिगम्बर मुनिवर।
भव जलतारी.. तारी भव जल तारी।।३।।
ऐसे परम तपोनिधि जहाँ जहाँ, जाते है.. . जाते है।
परम शान्ति सुख लाभ जीव सब, पाते है.. पाते है।।
भव-भव में 'सौभाग्य' मिले, गुरुपद पूजूँ ध्याऊं।
वरूँ शिवनारी. . नारी वरूँ शिवनारी।।४।।

धर्म मेरा धर्म मेरा, धर्म मेरा रे.....

धर्म मेरा धर्म मेरा धर्म मेरा रे, प्यारा प्यारा लागे जैनधर्म मेरा रे।।
ऋषभहुए वीरहुए धर्म मेरे रे, बलवानबाहुबली सेवे धर्म मेरा रे।
भरत हुए राम हुए धर्म मेरे रे, कुन्द कुन्द सन्त हुए धर्म मेरा रे।।
चंदना सीता हुई धर्म मेरे रे, ब्राह्मी राजुल मात सेवे धर्म मेरा रे।
सिंह सेवे बाघ सेवे धर्म मेरा रे, हाथी वानर सर्प सेवे धर्म मेरा रे।।
आत्माका ज्ञान देता धर्म मेरा रे, रत्नत्रयका दान देता.धर्म मेरा रे।
सम्यक्त्व जिसका मूल वह धर्म मेरा रे, सुख देवे मोक्ष देवे, धर्म मेरा रे।।

गा रे भैया ..... गा रे भैया .... गा रे भैया .....

गा रे भैया, गा रे, भैया गा रे भैया गा, प्रभु गुण गा तू समय न गॅवा।।टेक।।
किसको समझे अपना प्यारे, स्वारथ के सब रिश्ते सारे।
फिर क्यो प्रीति लगाये - ओ भैयाजी गा रे भैया ।।१।।
दुनिया के सब लोग निराले, बाहर उजले अन्दर काले।
फिर क्यो मोह बढाये - ओ बाबूजी गा रे भैया ।।२।।
मिट्टी की यह नश्वर काया, जिसमे आतम राम समाया।
उसका ध्यान लगा ले - ओ लालाजी गा रे भैया ।।३।।
स्वारथ की दुनिया को तजकर, निशदिन प्रभु का नाम जपकर।
सम्यक् दर्शन पा ले - ओ काकाजी गा रे भैया ।।४।।
शुद्धातम को लक्ष्य बनाकर, निर्मल भेद-ज्ञान प्रगटकर।
मुक्तिवधू को पाले - ओ लालाजी गा रे भैया ।।५।।

मुक्तिपुरी का ऋषभ दुलारा .....

मुक्तिपुरी का ऋषभ दुलारा, सबकी आखो का तारा।
ध्यान करत मन आनन्द पावे, ऐसा प्रभु का अतिशय न्यारा।।टेक।।
सात सुरो के सरगम मे, प्रभु तेरे गुण को गावे रे,।
सुमरन करते नाम प्रभु का, भव-भव कर्म छुडावे रे।।
घर-घर मगल होवे सबके, पाकर प्रभु का अमर सहारा।।१।।
अष्ट कर्म की जजीरो को, तोड के मोक्ष सिधारे हो।
ज्ञानज्योति से सबको स्वामी, सम्यक् ज्योति देते हो।।
मन-मन्दिर मे ध्यान लगावे, लेकर तेरा नाम निराला।।२।।
अमृतमय सन्देश तुम्हारा, धर्म की ज्योति जलावेगा।
मानवता मे शान्ति करके, सद्बुद्धि फैलावेगा।।
भव-भव मे हम शरणा पावे, जो है सबका तारणहारा।।३।।

मेरे मन मन्दिर में आन.....

मेरे मन मन्दिर मे आन, पधारो महावीर भगवान ।।टेक।।
भगवन तुम आनद सरोवर, रूप तुम्हारा महा मनोहर ।
निशिदिन रहे तुम्हारा ध्यान, पधारो महावीर भगवान ।।१।।
सुन किन्नर गणधर गुण गाते, योगी तेरा ध्यान लगाते ।
गाते सब तेरा यश गान, पधारो महावीर भगवान ।।२।।
जो तेरी शरणागत आया, तूने उसको पार लगाया ।
तुम हो दयानिधि भगवान, पधारो महावीर भगवान ।।३।।
भक्त जनो के कष्ट निवारे, आप तिरे हमको भी तारे ।
कीजे हमको आप समान, पधारो महावीर भगवान ।।४।।
आये है हम शरण तिहारी, पूजा हो स्वीकार हमारी ।
तुम हो करुणा दया निधान, पधारे महावीर भगवान ।।५।।
रोम-रोम पर तेज तुम्हारा, भू-मण्डल तुमसे उजियारा ।
रवि-शशि तुम से ज्योर्तिमान, पधारो महावीर भगवान ।।६।।

सब मिलके आज जय कहो श्री वीरप्रभु की.....

सब मिलके आज जय कहो, श्री वीर प्रभु की ।
मस्तक झुका के जय कहो, श्री वीर प्रभु की ।।टेक।।
विघ्नो का नाश होता है, लेने से नाम के ।
माला सदा जपते रहो, श्री वीर प्रभु की ।।१।।
ज्ञानी बनो दानी बनो, बलवान भी बनो ।
अकलक सम बन जय कहो, श्री वीर प्रभु की ।।२।।
होकर स्वतंत्र धर्म की, रक्षा सदा करो ।
निर्भय बनो अरु जय कहो, श्री वीर प्रभु की ।।३।।
तुमको भी अगर मोक्ष की, इच्छा हुई है दास ।
उस वाणी पर श्रद्धा करो, श्री वीर प्रभु की ।।४।।

धन्य धन्य आज घड़ी कैसी सुखकार है.....

धन्य धन्य आज घडी कैसी सुखकार है।
जिन चरणो की भक्ति करके आनन्द अपार है।।टेक।।
खुशियाँ अपार आज हर दिल मे छाई है,।
दर्शन के हेतु देखो जनता अकुलाई है।।
चारो ओर देख लो भीड बेशुमार है।।१।।
भक्ति से नृत्य गान कोई है कर रहे,।
आतम सुबोध कर पापो से डर रहे।।
पल-पल पुण्य का भरे भन्डार है।।२।।
जय जय के नाद से गूँजा आकाश है,।
छूटेंगे पाप सब निश्चय ये आज है।।
देखलो "सौभाग्य" खुला आज मुक्ति द्वार है।।३।।

चिदानन्द चैतन्य प्रभु का.....

चिदानन्द चैतन्य प्रभु का, कर ले तू गुणगान।।टेक।।
कितना अवसर मिला महान।
दूर्लभतर से नरभव पाये, दुर्मतिवश तूँ इसे गमाये।।
धर्मभावना कभी न लाये, याते जग मे दुख ही पाये।।१।।
छोड राग-रुचि, घातक है अति, कर ले आतमध्यान।
निज परिणति का कर्ता तू है, कर्मरूप परिणाम है तुझम।।
नही अन्य का काम, कर ले निश्चय भेदविज्ञान।।२।।
गुण-पर्ययवत् द्रव्य सभी है, एकरूप स्थिति नही होती है।
वस्तु स्वय निज कर्म की कर्ता, यह सिद्धान्त सभी गुण दाता।।
कर अनुभव तो बन भगवान कितना अवसर मिला महान।।३।।
ग्रह भूतार्थ तो समकित पावे, आतम ज्योति सत्य दिखलावे।
सुखी निरन्तर वह बन जावे, मोह-क्षोभ की हान।।
सदा चिद्रूप बनो भगवान कितना अवसर मिला महान।।४।।

छोटासा मन्दिर बनायेंगे.....

छोटासा मदिर बनायेगे, वीर गुण गायेगे ।
वीर गुण गायेगे, महावीर गुण गायेगे ।।टेक।।
कँधो पे लेकर चॉदी की पालकी, प्रभुजी का विहार करायेगे ।
हाथो मे लेकर सोने के कलशा, प्रभुजी का नह्वन करायेगे ।।१।।
हाथो मे लेकर द्रव्य की थाली, पूजन-विधान रचायेगे ।
हाथो मे लेकर ताल-मजीरा, प्रभुजी की भक्ति रचायेगे ।।२।।
हाथो मे लेकर श्री जिनवाणी, पढेगे और सबको पढायेगे ।
वीतराग-विज्ञान पाठशालाये खोलकर तत्त्वो का ज्ञान करायेगे ।।३।।
श्रद्धा मे लेकर वस्तु स्वरूप, आतम का अनुभव करायेगे ।
चारित्र मे लेकर शुद्धोपयोग, मुक्तिपुरी को जायेगे ।।४।।

जैन धर्म के हीरे मोती.....

जैन धर्म के हीरे मोती, मै बिखराऊँ गली गली ।
ले लो रे कोई प्रभु का प्यारा, शोर मचाऊँ गली गली ।।टेक।।
दौलत के दीवानो सुन लो, एक दिन ऐसा आयेगा ।
धन-दौलत और रूप-खजाना, पडा यहीं रह जायेगा ।।
सुन्दर काया मिट्टी होगी, चर्चा होगी गली गली ।।१।।
क्यो कहता तू तेरी मेरी, तज दे उस अभिमान को ।
झूठे झगड़े छोडकर प्राणी, भज ले तू भगवान को ।।
जगत का मेला दो दिन का, अत मे होगी चला चली ।।२।।
जिन जिनने ये मोती लूटे, वे ही मालामाल हुए ।
दौलत के जो बने पुजारी, आखिर मे कगाल हुए ।।
सोने चॉदी वालो सुन लो, बात कहूँ मै भली भली ।।३।।
जीवन मे दुख है तब तक ही, जब तक सम्यग्ज्ञान नही ।
ईश्वर को जो भूल गया, वह सच्चा इन्सान नही ।।
दो दिन का ये चमन खिला है, फिर मुर्झाये कली कली ।।४।।

जय वीतराग सर्वज्ञ प्रभु तुमको मैं.....

जय वीतराग सर्वज्ञ प्रभु तुमको मै शीस झुकाता हूं।
अज्ञान तिमिर के हरण हेतु जिन चरण शरण मे आता हूं।।टेक।।
तुमने अनत सुख प्राप्त किया रागादि विकार हटाया है।
ज्ञायक स्वभाव मे तन्मय हो अनुपम निज वैभव पाया है।।१।।
मै उस वैभव को भूला था, निज पर का कुछ भी ज्ञान न था।
पर मे सुख मान भटकता था निज आतम सुख का भान न था।।२।।
निज पर को कर्ता मान जान प्रतिपल अनुकूल बनाने मे।
चिरकाल से व्यस्त रहा फिर भी असमर्थ रहा अपनाने मे।।३।।
शुभराग को धर्म समझता था जो चिद्विकार दुखकारी है।
अज्ञात था ज्ञायक भाव मुझे जो सहज सिद्ध सुखकारी है।।४।।
मन वचन काय की परणति को निज परणति मैने मानी थी।
ये भव के भाव मिटा न सका तो भव की कौन कहानी थी?।।५।।
अब शात छवि लख जिनवर की मैने यह निश्चित जाना है।
"मै ज्ञानानद स्वभावी हूँ"- जो भूला था पहचाना है।।६।।
जिसने प्रभु को पहचान लिया उसने अपने को जान लिया।
निज आतम मे परमात्मदशा का शाति सुधारस पान किया।।७।।
आत्म 'हितैषी' को मिले, जिनसे आतमज्ञान।
ऐसे जिनवर देव को, शत शत करूँ प्रणाम।।८।।

✓रे जिय कौन सयाने कीना.....

रे जिय कौन सयाने कीना, पुद्गल कै रस भीना।।टेक।।
तुम चेतन ये जड जु विचारा, काम भया अतिहीना।।१।।
तेरे गुन दरसन ग्यानादिक, मूरति रहित प्रवीना।
ये सपरस रस गध वरन मय, छिनक थूल छिन हीना।।२।।
स्व-पर विवेक विचार बिना सठ, धरि धरि जनम उगीना।
'जगतराम' प्रभु सुमरि सयानै, और जु कछू कमीना।।३।।

धन्य धन्य जिनवाणी माता.....

धन्य धन्य जिनवाणी माता, शरण तुम्हारी आए ।
परमागम का मन्थन करके, शिवपुर पथ पर धाए ।।टेक।।
माता दर्शन तेरा रे! भविक को आनन्द देता है ।
हमारी नैया खेता है ।।
वस्तु कथञ्चित् नित्य-अनित्य, अनेकान्तमय शोभे ।
परद्रव्यो से भिन्न सर्वथा, स्वचतुष्टय मय शोभे ।।
ऐसी वस्तु समझने से, चतुर्गति फेरा कटता है ।
जगत का फेरा मिटता है ।।१।।
नय निश्चय-व्यवहार निरूपण, मोक्षमार्ग का करनी ।
वीतरागता ही मुक्तिपथ, शुभ व्यवहार उचरती ।।
माता तेरी सेवा से, मुक्ति का मारग खुलता है ।
महा मिथ्यातम धुलता है ।।२।।
तेरे अचल मे चेतन की, दिव्यचेतना पाते ।
तेरी अमृत लोरी क्या है, अनुभव की बरसाते ।।
माता तेरी वर्षा से, निजानन्द झरना झरता है ।
अनुपमानन्द उछलता है ।।३।।
नव-तत्त्वो मे छिपी हुई जो, ज्योति उसे बतलाती ।
चिदानन्द ध्रुव ज्ञायक घन का, दर्शन सदा कराती ।।
माता तेरे दर्शन से, निजातम दर्शन होता है ।
सम्यग्दर्शन होता है ।।४।।

जिनवाणी मोक्ष नसैनी है.....

जिनवाणी मोक्ष नसैनी है हम जानी ।।टेक।।
जीव कर्म के जुदा करन को, यह ही पैनी छैनी है ।
जो जिनवाणी नित अभ्यासै, सो ही सच्चा जैनी है ।।१।।
जो जिनवाणी उर न धरत है, सैनी हो के भी असैनी है ।
पढो सुनो ध्यावो जिनवाणी, यदि सुख शांति लेनी है ।।२।।

जिनवाणी मोक्ष-नसैनी है.....

जिनवाणी मोक्ष-नसैनी है।।टेक।।
यह भवदधि से पार उतारे, परभव को सुख दानी।
मिथ्यातिन के मनहि न भावे, भविजन के मन मानी।।१।।
तत्त्व-कुतत्त्व की खबर पडे जब, जुदे-जुदे कर मानी।
'राजराय' भजो जिनवाणी, सुख दानी दुख हानी।।२।।

जिनवाणी है चेतन हीरा जड़ी.....

जिनवाणी है चेतन हीरा जडी, जिनवाणी है रत्नत्रय से मडी।।टेक।।
सप्त तत्त्व दरशावन हारी, जिनवाणी है अद्भुत हीरा जडी।
जिनवाणी निज-निधि को बतावै, अनुपम सुखमय गुण की भरी।।१।।
भवसागर से पार करन को, जिनवाणी हमारी नौका बडी।
जो ना सुनत है यह जिनवाणी, द्वार पै ताही के विपद खडी।।२।।
जो जो सुनत है यह जिनवाणी, झडती है ताके सुख की झडी।
जो जो सुनत है यह जिनवाणी, शान्ति मिलत ताहि वाहि घडी।।३।।
वाणी-कथित निजतत्त्व जो ध्यावे, मोक्ष मिलत वाहि ताहि घडी।
माता तोसौं अरज करत हूँ, काटो हमारी कर्मन की कडी।।४।।

जिनवाणी जग मैय्या.....

जिनवाणी जग मैय्या जनम-दुख मेट दो।।टेक।।
बहुत दिनो से भटक रहा हूँ, ज्ञान बिना हे मैय्या।
निर्मल ज्ञान प्रदान सु कर दो, तू ही सच्ची मैय्या।।१।।
गुणस्थानो का अनुभव हमको, हो जावैं जगमैय्या।
चढै उन्ही पर क्रम से फिर, हम होवे कर्म खिपैया।।२।।
मेट हमारा जन्म-मरण दुख, इतनी विनती मैय्या।
तुम को शीश 'त्रिलोकी' ननावे तू ही सच्ची मैया।।३।।
वस्तु एक अनेक रूप है, अनुभव सबका न्यारा।
हर विवाद का हल हो सकता, स्याद्वाद के द्वारा।।४।।

धन्य धन्य वीतराग वाणी.....

धन्य धन्य वीतराग वाणी, अमर तेरी जग मे कहानी।
चिदानन्द की राजधानी, अमर तेरी जग मे कहानी।।टेक।।
उत्पाद-व्यय अरु ध्रौव्य स्वरूप, वस्तु बखानी सर्वज्ञ भूप।
स्याद्वाद तेरी निशानी, अमर तेरी जग मे कहानी।।१।।
नित्य-अनित्य अरु एक-अनेक, वस्तु कथंचित् भेद-अभेद।
अनेकान्तरूपा बखानी, अमर तेरी जग मे कहानी।।२।।
भाव शुभाशुभ बधस्वरूप, शुद्ध चिदानदमय मुक्तिरूप।
मारग दिखाती है वाणी, अमर तेरी जग मे कहानी।।३।।
चिदानद चैतन्य आनद धाम, ज्ञानस्वभावी निजातम राम।
स्वाश्रय से मुक्ति बखानी, अमर तेरी जग मे कहानी।।४।।

जाने क्यों अपनी शक्ति पर.....

जाने क्यो अपनी शक्ति पर, मन तुझको विश्वास नही है।।टेक।।
अपने घर की ओर कदम रख, यह घर तेरा खास नही है।
सोच रहा तू पर मे सुख है, इसमे सुख की गध नही है।।१।।
पर पर है तू उससे पर है, पर सच्चा सबध नही है।
अग्नि जब निजधर्म न छोडे, पानी कब प्रतिकूल रहा है।।२।।
कमजोरी बस यही तुम्हारी, करता खुद से आश नही है।
एक नही दो नही सरस, हर भव मे यही कसूर हुआ है।।३।।
आवागमन अभी मिट सकता, एक बात निश्चय लाता है।
जो कुछ पाता है अपने से, पर से कभी नही पाता है।।४।।
जब तक इस पर नही चला तू, होगा उससे पास नही है।
अगर लक्ष्य निर्मल है तेरा, करो न किंचित पर का डर है।।५।।
कारण साधक या बाधक तो, अपनी परिणति पर निर्भर है।
ज्ञान भानु का उदय हुआ ज्यों, जीवन ज्योति चमक लायेगी।।६।।
दृष्टि जरा बदल कर देखो, सृष्टि स्वय बदल जायेगी।
सरस आत्मज्ञान बिना पर, होगा यह आभास नही है।।७।।

जिनवाणी माता रत्नत्रयनिधि दीजिये.....

जिनवाणी माता रत्नत्रयनिधि दीजिये।।टेक।।
मिथ्यादर्शन-ज्ञान-चरण मे, काल अनादि घूमे।
सम्यग्दर्शन भयौ न ताते, दु.ख पायो दिन दूने।।१।।
है अभिलाषा सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चरण दे माता!।
हम पावै निजस्वरूप आपनो, क्यो न बनै गुण-ज्ञाता।।२।।
जीव अनन्तानन्त पठाये, स्वर्ग-मोक्ष मे तूने।
अब बारी है हम जीवन की, होवे कर्म विदूने।।३।।
भव्य जीव है पुत्र तुम्हारे, चहुँगति दु ख से हारे।
इनको जिनवर बना शीघ्र, अब दे दे गुणगण सारे।।४।।
औगुण तो अनेक होत है, बालक मे ही माता !।
पै अब तुम-सी माता पाई, क्यो न बने गुण-ज्ञाता।।५।।
क्षमा-क्षमा हो सभी हमारे, दोष अनन्ते भव के।
शिव का मार्ग बता दो, माता! लेहु शरण मे अब के।।६।।
जयवन्तो जिनवाणी जग मे, मोक्षमार्ग प्रवर्तो!।
श्रावक है 'जयकुमार' बीनवे, पद दे अजर अमर तो।।७।।

जिनवाणी मो मन भावे.....

जिनवाणी मो मन भावे, या सशय तिमिरि मिटावे जी।।टेक।।
नव तत्वनि की समझि करावे, स्व-पर भेद दरशावे जी।
मिथ्या अलट मिटावन कारण, स्याद्वाद मय धावे जी।।१।।
चन्द्रभानु मणि नाहि पटन्तर, बाहिर तिमिर मिटावे जी।
बाहयाभ्यन्तर मैटे वाणी, तीन लोक सिर नावे जी।।२।।
तप व्रत सयम यामे गर्भित, श्री गुरु श्रुत मे गावे जी।
या बिन दूजो शिव पथ नाही, याते शुभगति पावे जी।।३।।
रत्नत्रय वाही तै मिलि है, या बिन नहि उपजावे जी।
'पारस' जोलो शिव नहि हो है, उर तिष्ठो याचावे जी।।४।।

जिनवर चरण-भक्ति वर गंगा.....

जिनवर चरण-भक्ति वर गगा, ताहि भजो भवि नित सुखदानी।
स्याद्वाद हिमगिरि तै उपजी, मोक्ष-महासागरहि समानी।।टेक।।
ज्ञान-विरागरूप दोऊ ढाये, सयम भाव मगर हित आनी।
धर्म-ध्यान जहॉ भॅवर परत है, शम-दम जामे सम-रस पानी।।१।।
जिन-सस्तवन तरग उठत है, जहॉ नही भ्रम-कीच निशानी।
मोह-महागिरि चूर करत है, रत्नत्रय शुद्ध पन्थ ढलानी।।२।।
सुर-नर-मुनि-खग आदिक पक्षी, जहॉ रमत नित सम-रस ठानी।
'मानिक' चित्त निर्मल स्थान करि, फिर नही होत मलिन भवि प्राणी।।३।।

अकेला ही हूँ मैं......

अकेला ही हूँ मै, करम सब आये सिमटिके।
लिया है मै तेरा, शरण अब माता ! सटकिके।।टेक।।
भ्रमावत है मोको, करम दुख देता जनम का।
करूँ भक्ति तेरी, हरो दुख माता ! भ्रमन का।।१।।
दुखी हुआ भारी, भ्रमत फिरता हूँ जगत मे।
सहा जाता नाही, अकल घबरानी भ्रमन मे।।२।।
करूँ क्या मॉ मोरी, चलत वश नाही मिटन का।
करूँ भक्ति तेरी, हरो दुख माता ! भ्रमन का।।३।।
सुनो माता ! मोरी, अरज करता हूँ दरद मे।
दुखी जानो मोको, डरप कर आयो शरन मे।।४।।
कृपा ऐसी कीजे, दरद मिट जावै मरन का।
करूँ भक्ति तेरी, हरो दुख माता! भ्रमन का।।५।।
पिलावै जो मोको, सुबुधि कर प्याला अमृत का।
मिटावै जो मेरा, सरव दुख सारा फिरन का।।६।।
पडूँ पॉवॉ तेरी, हरो दुख सारा फिकर का।
करूँ भक्ति तेरी, हरो दुख माता! भ्रमन का।।७।।

केवलि-कन्ये वाड्गमय गंगे.....

केवलि-कन्ये वाड्गमय गगे, जगदम्बे अघ नाश हमारे।
सत्य स्वरूपे मगल रूपे, मन-मन्दिर मे तिष्ठ हमारे।।टेक।।
जम्बूस्वामी गौतम गणधर, हुए सुधर्मा पुत्र तुम्हारे।
जग तै स्वय पार ह्वै करके, दे उपदेश बहुत जन तारे।।१।।
कुन्दकुन्द अकलकदेव अरु, विद्यानन्दि आदि मुनि सारे।
तव कुल-कुमुद चन्द्रमा ये शुभ, शिक्षामृत दे स्वर्ग सिधारे।।२।।
तूने उत्तमतत्त्व प्रकाशे, जग के भ्रम सब क्षय कर डारे।
तेरी ज्योति निरख लज्जावश, रवि-शशि छिपते नित्य बिचारे।।३।।
भव-भय पीडित व्यथित-चित्त जन, जब जो आये शरण तिहारे।
छिन भर मे उनके तब तुमने, करुणा करि सकट सब टारे।।४।।
जब तक विषय-कषाय नसै नहिं, कर्म-शत्रु नहिं जाय निवारे।
तब तक 'ज्ञानानन्द' रहै नित, सब जीवन तै समता धारे।।५।।

मिथ्यातम नाशवे को, ज्ञान के प्रकाशवे को.....

मिथ्यातम नाशवे को, ज्ञान के प्रकाशवे को।
आपा-पर भासवे को, भानु-सी बखानी है।।टेक।।
छहो द्रव्य जानवे को, बध विधि भानवे को।
स्व-पर पिछानवे को, परम प्रमानी है।।१।।
अनुभव बतायवे को, जीव के जतायवे को।
काहू न सतायवे को, भव्य उर आनी है।।२।।
जहाँ तहाँ तारवे को, पार के उतारवे को।
सुख विस्तारवे को, ये ही जिनवाणी है।।३।।
हे जिनवाणी भारती, तोहि जपो दिन रैन।
जो तेरी शरना गहे, सो पावै सुख चैन।।४।।
जा वानी के ज्ञानते, सूझै लोकालोक।
सो वानी मस्तक नवो, सदा देत हो धोक।।५।।

हे जिनवाणी माता तुमको.....

हे जिनवाणी माता, तुमको लाखो प्रणाम ।
शिवसुखदानी माता, तुमको लाखो प्रणाम ।।टेक।।
तू वस्तुस्वरूप बतावै, अरु सकल विरोध मिटावै ।
स्याद्वाद विख्याता, तुमको लाखो प्रणाम ।।१।।
तू करे ज्ञान का मण्डन, मिथ्यात्व कुमारग खण्डन
हे तीन जगत की माता,तुमको लाखो प्रणाम ।।२।।
तू लोकालोक प्रकासे, चर-अचर पदार्थ विकासे
हे विश्व-तत्त्व की ज्ञाता,तुमको लाखो प्रणाम ।।३।।
तू स्व-पर स्वरूप सुझावे, सिद्धान्त का मर्म बतावे
तू मेटे सर्व असाता, तुमको लाखो प्रणाम ।।४।।
शुद्धातम तत्त्व दिखावे, रत्नत्रय पथ प्रगटावे
निज आनन्द अमृत दाता, तुमको लाखो प्रणाम ।।५।।
हे मात ! कृपा अब कीजे, परभाव सकल हर लीजे
'शिवराम' सदा गुण गाता, तुमको लाखो प्रणाम ।।६।।

चरणों में आ पड़ा हूँ.....

चरणे मे आ पडा हूँ, हे द्वादशाग वाणी ।
मस्तक झुका रहा हूँ, हे द्वादशांग वाणी ।।टेक।।
मिथ्यात्व को नशाया, निज तत्त्व को बताया ।
आपा-पराया भासा, हो भानु के समानी ।।१।।
षड्द्रव्य को बताया, स्याद्वाद को जताया ।
भव-फन्द से छुडाया, सच्ची जिनेन्द्र वाणी ।।२।।
रिपु चार मेरे मग मे, जन्जीर डाले पग मे ।
ठाडे हैं मोक्षमग मे, तकरार मोसो ठानी ।।३।।
दे ज्ञान मुझको माता, इस जग से तोड़ूँ नाता ।
होवे 'सुदर्शन' साता, नहि जग मे तेरी सानी ।।४।।

जिनकी वानी अब मनमानी.....

जिनकी वानी अब मनमानी ।।टेक।।
जाके सुनत मिटत सब दुविधा, प्रगटत निज निधि छानी ।।१।।
तीर्थकरादि महापुरुषानि की, जामे कथा सुहानी।
प्रथम वेद यह भेद जास कौ, सुनत होय अघ हानी ।।२।।
जिनकी लोक अलोक काल जुत च्यारौ गति सहनानी।
दुतिय वेद इह भेद सुनत होय, मूरख हू सरधानी ।।३।।
मुनि श्रावक आचार बतावत, तृतीय वेद यह ठानी।
जीव अजीवादिक तत्वनि की, चतुरथ वेद कहानी ।।४।।
ग्रन्थ बध करि राखी जिन ते, धन्य धन्य गुरु ध्यानी।
जाके पढत सुनत कछु समझत, 'जगतराम' से प्रानी ।।५।।

अमृतझर झुरि-झुरि आवे.....

अमृतझर झुरि-झुरि आवे जिनवाणी ।।टेक।।
द्वादशाग बादल ह्वै उमडे, ज्ञान अमृत रसखानी।।१।।
स्याद्वाद बिजुरी अति चमके, शुभ पदार्थ प्रगटानी।
दिव्यध्वनी गभीर गरज है, श्रवण सुनत सुखदानी।।२।।
भव्यजीव-मन भूमि मनोहर, पाप कूडकर हानी।
धर्म बीज तहाँ ऊगत नीको, मुक्ति महाफल ठानी।।३।।
ऐसी अमृतझर अति शीतल, मिथ्या तपत भुजानी।
'बुधमहाचन्द' इसी झर भीतर, मग्न सफल सो ही जानी।।४।।

जिनवानी के सुनै सौं मिथ्यात मिटै.....

जिनवानी के सुनै सौ मिथ्यात मिटै मिथ्यात मिटै समकित प्रगटै।।टेक।।
जैसै प्रात होत रवि ऊगत, रैन तिमिर सब तुरत फटै।।१।।
अनादिकाल की भूलि मिटावै, अपनी निधि घट-घट मै उघटै।
त्याग विभाव सुभाव सुधारै, अनुभव करता करम कटै।।२।।
और काम तजि सेवो वाकौ, या बिन नाहि अज्ञान घटै।
'बुधजन' या भव परभव माही, बाकी हुडी तुरत पटै।।३।।

सीमंधर मुख से फुलवा खिरे.....

सीमधर मुख से फुलवा खिरे, जाकी कुन्दकुन्द गूँथे माल रे।
जिनजी की वाणी भली रे, सीमधर मुख से फुलवा खिरे।।टेक।।
वाणी प्रभू मन लागे भली, जिसमे सार समय शिरताज रे।
जिनजी की वाणी भली रे, सीमधर मुख से फुलवा खिरे।।१।।
गूँथा पाहुड अरु गूँथा पचास्ति, गूँथा जो प्रवचनसार रे।
जिनजी की वाणी भली रे, सीमधर मुख से फुलवा खिरे।।२।।
गूँथा नियमसार गूँथा रयणसार, गूँथा समय का सार रे।
जिनजी की वाणी भली रे, सीमधर मुख से फुलवा खिरे।।३।।
स्याद्वादरूपी सुगधी भरा जो, जिनजी का ओकार नाद रे।
जिनजी की वाणी भली रे,सीमधर मुख से फुलवा खिरे।।४।।
वन्दू जिनेश्वर, वन्दू मै कुन्दकुन्द, वन्दू यह ओकार नाद रे।
जिनजी की वाणी भली रे,सीमधर मुख से फुलवा खिरे।।५।।
हृदय रहो मेरे भावे रहो, मेरे ध्यान रहो, जिनबैन रे।
जिनजी की वाणी भली रे,सीमधर मुख से फुलवा खिरे।।६।।
जिनेश्वरदेव की वाणी की गूँज, मेरे गूँजती रहो दिन रात रे।
जिनजी की वाणी भली रे,सीमधर मुख से फुलवा खिरे।।७।।

वीर हिमाचल तें निकसी.....

वीर हिमाचल तै निकसी, गुरु गौतम के मुख कुण्ड ढरी है।
मोह महाचल भेद चली, जग की जडतातप दूर करी है।।टेक।।
ज्ञान पयोनिधि माँहि रली, बहु भग तरगनि सौ उछरी है।
ता शुचि शारद गग नदी प्रति, मै अजुलि कर शीश धरी है।।१।।
या जग-मन्दिर मे अनिवार, अज्ञान अधेर छयो अति भारी।
श्री जिन की धुनि दीप-शिखा सम, जो नही होत प्रकाशन हारी।।२।।
तो किस भाँति पदारथ पाँति, कहाँ लहते रहते अविचारी।
या विधि सत कहे धनि है, धनि है, जिनबैन बडे उपकारी।।३।।

जिन स्वानुभूति से खिरी.....

जिन स्वानुभूति से खिरी, मम स्वानुभूति मधि गिरी।।टेक।।
श्री विमल धारा जैन श्रुत, आनन्द अमृत से भरी।।१।।
समता प्रवाह वहावती, रागादि विकलप तोरि के।।२।।
मॉ सरस्वती प्रति भाव वन्दन, दृष्टि निज मे जोडि के।।३।।

जिनवाणी गंगा जन्म-मरण हरणी.....

जिनवाणी गगा जन्म-मरण हरणी।।टेक।।
जिन-उर पद्मकुण्ड तै निकसी, मुख ही मै गिर गिरणी।।१।।
गौतम मुख हेम कुल परबत, तल दरह बीच मे ढरणी।
स्याद्वाद दोऊ तट अति दृढ, तत्त्व नीर झरणी।।२।।
सप्त अगमय चलत तरगिनी, तिनतै फैल चलनी।
'बुधमहाचन्द' श्रवण अजुली तै, पीवो मोक्ष करणी।।३।।

वस्तु तत्व दर्शाती जग में.....

वस्तु तत्व द्रर्शाती जग मे, जय जिनवाणी माता।
ज्ञानी जन यो करे स्तुति, भक्ति भाव उमगाता।।टेक।।
मिथ्यामति को नाश किया है, जय जिनवाणी माता।
सम्यक् दीप जलाने वाली, है जिनवाणी माता।।१।।
आपा-पर का भेद कराती, है जिनवाणी माता।
शुद्धातम अनुभूति कराती, हे जिनवाणी माता।।२।।
मुक्ति मार्ग दिखावन हारी, जय जिनवाणी माता।
सोये भव्य जगाने वाली, है जिनवाणी माता।।३।।
स्वानुभूति से झरती उर मे, है जिनवाणी माता।
ज्ञानामृत का पान कराती, हे जिनवाणी माता।।४।।
निज से निज मे थिर हो जाऊँ, हे जिनवाणी माता।
निज मे ही पचमगति पाऊँ, हे जिनवाणी माता।।५।।

माँ जिनवाणी मुझ अन्तर में.....

माँ जिनवाणी मुझ अन्तर मे, होकर मुझ रूप समा जाओ।
शान्त शुद्ध ध्रुव ज्ञायक प्रभु की, महिमा प्रतिक्षण दरशाओ।।टेक।।
चैतन्य नाथ की बात सुने से, अद्भुत शाँति मिलती है।
मानो निज वैभव प्रकट हुआ, सब आधि व्याधि टलती है।।१।।
ज्ञायक महिमा सुनते सुनते, बस ज्ञायक मय जीवन होवे।
निज ज्ञायक मे ही रम जाऊँ, सुनने का भाव विलय होवे।।२।।
है माँ तेरा उपकार यही, प्रभु सम प्रभु रूप दिखाया है।
चैतन्य रूप की बोधक माँ, मै सविनय शीश नवाया है।।३।।

गावो कुन्द वचन अनमोल.....

गावो कुन्द वचन अनमोल।।टेक।।
पर घर मे क्यो करे बसेरा, वृथा कहै तू तेरा मेरा।
रागद्वेष तजकर निरवेरा सिद्धस्वरूपी अपने को लख।।
मिथ्या ग्रथि खोल गावो कुन्द वचन अनमोल।।१।।
धनी गुमानी हो मदमाता, बहिरातम हो पाप कमाता।
सिर पर काल खबर नहि लाता,अजहूँ छाँडिभज आत्मधरम को।।
है शाश्वत वे मोल गावो कुन्द वचन अनमोल।।२।।
पाप करम कर माने साता, विषय वासना मे लिपटाता।
मिथ्यादर्शन के रग माता ज्ञानानद मई हो ज्ञाता।।
सम स्वभाव रस घोल गावो कुन्द वचन अनमोल।।३।।
राग भाव लख आनन्द माने, द्वेष भाव दुख मय पहिचाने।
नरभव पा हितकर सयाने वीतराग छवि नेक निरखकर।।
घट के पट अब खोल गावो कुन्द वचन अनमोल।।४।।
चिदाकार मय ब्रह्म सुहाता, विश्व प्रकाशक गुण प्रगटाता।
स्वस्थ होय लख क्यो भटकाता या घट मे जगमगा रहा नित।।
देख 'नद' जय बोल गावो कुन्द वचन अनमोल।।५।।

भव तारण शिव-सुख कारण.....

भव तारण शिव-सुख कारण, जग मे जगती जिनवाणी।।टेक।।
स्याद्वाद की कथनीवाली सप्तभग जानी।
सप्त-तत्त्व निर्णय मे तत्पर, नव-पदार्थ दानी।।१।।
मोह-तिमिर अधन को जो, है ज्ञान शलाकानी।
मिथ्यातप तप-तन का जो, है मलियागिर खानी।।२।।
इस पचम कलिकाल माँहि, जो है केवली समानी।
धर्म-कुधर्म, कुदेव-देव, गुरु-कुगुरु बतानी।।३।।
इन्द्र धरणेन्द्र खगेन्द्रादिक, पद की है निसानी।
विषयादिक विष विध्वस कर, सेव सुख सुधा पानी।।४।।
कुमग गमन करता भविजन कूँ, सुद्ध मग जितानी।
जड-पुद्गल रत 'बुधमहाचन्द' कूँ, निज-पर समझानी।।५।।

ज्ञानी जिनवाणी आधार.....

ज्ञानी जिनवानी आधार, निज को सिद्ध कहाने वाला ।।टेक।।
ज्ञानी ज्ञान भाव करतार, जान स्याद्वाद के द्वार ।
होकर अनेकान्त से पार, विकलप दूर बहाने वाला ।।१।।
पाया रूप आपका सार, है वह चेतन ज्योति अपार ।
तीनो कर्म जाल नि सार, पुदगल कृत ही होने वाला ।।२।।
यद्यपि एक क्षेत्र आवास, रहता षट् द्रव्यो सहवास ।
तद्यपि भिन्न-भिन्न रहवास, देखे ज्ञान नेत्र ही वाला ।।३।।
आता कर्म उदय जब जान, ज्ञानी होत नटी समान ।
ल्याता रस जब उदय प्रमान, तद्यपि ज्ञान चेतना वाला ।।४।।
कर लो निज अनुभव का ज्ञान, ज्ञानी सिद्ध सहज अमलान ।
होगा भावकर्म सब हान, मुक्तिपुरी को जाने वाला ।।५।।

यदि भवसागर दुख से भय है.....

यदि भवसागर दुख से भय है, तो तज दो परभाव को।
करो चितवन शुद्धातम का, पालो सहज स्वभाव ना।।टक।।
नर पशु देव नरक गतियो मे, बीता कितना काल है।
फिर भी समझ नही पाये, यह भव- वन अति विकराल है।।१।।
न जो शुभाशुभ भाव सही, शुद्धोपयोगी ढाल है।
किया तत्व निर्णय जिसने, वो जिनवाणी का लाल है।।२।।
द्रव्य-दृष्टि से समकिती बन, करो दूर परभाव को।
पाप-पुण्य दोनो जग सृष्टा, इसमे दुख भरपूर है।।३।।
इसकी उलझन सुलझ न पाये, तो फिर सुख अति दूर है।
पर विभाव को नष्ट करे जो, वो ही सच्चा सूर है।।४।।
समकित औषधि से अच्छा, भर दो अनादि घाव को।
बीती रात प्रभात हो गया, जिनवाणी का उदय हुआ।।५।।
जिसने दिव्यध्वनि हृदयगम की, उसके उर मे सूर्य जगा।
आत्मज्ञान का देख उजाला, भाग रहे परभाव लजा।।६।।
चिदानद चैतन्य आत्मा का अदर मे नाद जगा।
समकित की सुगध महकी है, देखो ज्ञायकभाव को।।७।।

स्वाध्याय करो, स्वाध्याय करो ....

स्वाध्याय करो स्वाध्याय करो, तुम निज पर की पहिचान न करो
सम्यक्त्व करो, मिथ्यात्व हरो, तुम भक्त नही भगवान न बनो,
तुम जिनवाणी का मनन करो, सत पाठ तुम्हे सिखलाती है
तुम नरकगति से नाहि डरो, तुम स्वर्गो की मत चाह करो
तुम वीतराग परिणाम करो, निज आतम का कल्याण करो,
तुम सत्गुरू की पहिचान करो, तुम निजस्वभाव के परकासी
तुम अमल अखडित सुखराशि, ज्ञायकस्वरूप निज घरवासी
तुम स्वय सिद्ध पूरणमासी तुम मे ही है केवल राशी
सम्यक्त्व करो मिथ्यात्व हरो, तुम भक्त नही भगवान बनो

परम दिगम्बर मुनिवर देखे.....

परम दिगम्बर मुनिवर देखे, हृदय हर्षित होता है।
आनन्द उल्लासित होता है हो सम्यग्दर्शन होता है।।टेक।।
वास जिनका वन उपवन मे, गिरि शिखर के नदी तटे।
वास जिनका चित्त गुफा मे, आतम आनन्द मे रमे।।१।।
कचन कामिनी के त्यागी, महा तपस्वी ज्ञानी ध्यानी।
काया की माया के त्यागी, तीन रतन गुण भडारी।।२।।
परम पावन मुनिवरो के, पावन चरणो मे नमूँ।
शान्त मूर्ति सौख्य मुद्रा, आनन्द धारा मे रमूँ।।३।।
चाह नही है राज्य की, चाह नही रमणी तणी।
चाह उर मे एक यही है, शिव रमणी वरवा तणी।।४।।
भेद ज्ञान की ज्योति जलाकर, शुद्धातम मे रमते है।
क्षण क्षण मे अन्तर्मुम हो, सिद्धो से बाते करते है।।५।।

हे परम दिगम्बर यति, महागुण व्रती.....

हे परम दिगम्बर यति, महागुण व्रनी, करो निस्तारा।
नहि तुम बिन हितु हमारा।।टेक।।
तुम बीस आठ गुण धारी हो, जग जीव मात्र हितकारी हो।
बावीस परिषह जीत धरम रखवारा, नहि तुम बिन हितु हमारा।।१।।
तुम आतम ज्ञानी ध्यानी हो, प्रभु वीतराग वनवासी हो।
है रत्नत्रय गुण मण्डित हृदय तुम्हारा, नहिं तुम बिन हितु हमारा।।२।।
तुम क्षमा शान्ति समता सागर, हो विश्व पूज्य नर रत्नाकर।
है हित मित सत् उपदेश तुम्हारा प्यारा, नहि तुम बिन हितु हमारा।।३।।
तुम धर्ममूर्ति हो समदर्शी, हो भव्य जीव मन आकर्षी।
है निर्विकार निर्दोष स्वरूप तुम्हारा, नहि तुम बिन हितु हमारा।।४।।
है यही अवस्था एक सार, जो पहुँचाती है मोक्ष द्वार।
'सौभाग्य' आपसा बाना होय हमारा, नहिं तुम बिन हितु हमारा।।५।।

संत साधु वन के विचरू.....

सत साधु वन के विचरूँ, वह घडी कव आयेगी।
चल पडूँ मै मोक्ष पथ मे, वह घडी कव आयेगी।।
हाथ मे पीछी कमण्डल, ध्यान आतम राम का।।टेक।।
छोडकर घरवार दीक्षा, की घडी कव आयेगी।
आयेगा वैराग्य मुझको, इसी दु खी ससार से।।
त्याग दूँगा मोह ममता, वह घडी कव आयेगी।।१।।
पाच समिति तीन गुप्ति, वाइस परिषह भी महूँ।
भावना वारह जु भाऊँ, वह घडी कव आयेगी।।
वाहय उपाधि त्याग कर, निज तत्त्व का चितन करूँ।।२।।
निर्विकल्प होवे समाधि, वह घडी कव आयेगी।
भव भ्रमण का नाश होवे, इस दु खी ससार मे।।
विचरूँ मै निज आत्मा मे, वह घडी कव आयेगी।।३।।

म्हारा परम दिगम्बर मुनिवर आया.....

म्हारा परम दिगम्बर मुनिवर आया, सव मिल दर्शन कर लो।
वार-वार आना मुश्किल है भक्ति भाव उर भर लो।।टेक।।
हाँ, भक्ति भाव उर भर लो।
हाथ कमडल काठ को, पीछी पख मयूर।।१।।
विषय आशा आरम्भ सव, परिग्रह से है दूर।
श्री वीतराग-विज्ञानी का कोइ ज्ञान हिये विच धर लो।।२।।
एक वार कर पात्र मे, अतराय मल टाल।
अल्पहार ले हो खडे, नीरस सरस सम्हाल।।३।।
ऐसे मुनिमारग उत्तमधारी, तिनके चरण पकड लो।
चार गति दु ख से डरी, आत्म स्वरूप को ध्याय।।४।।
पुण्य पाप से दूर हो, ज्ञान गुफा मे आय।
'सौभाग्य' तरण-तारण मुनिवर के, तारण चरण पकड लो।।५।।

धन्य मुनीश्वर आतम हित में.....

धन्य मुनीश्वर आतम हित में छोड़ दिया परिवार ।
कि तुमने छोड़ा सब घरबार ।।टेक।।
काया की ममता को टारी, करत सहन परीषह भारी।
पञ्च महाव्रत के हो धारी, तीन रतन के बने भंडारी।।
धन छोडा वैभव सब छोडा, समझा जगत असार।।१।।
राग-द्वेष सब तुमने त्यागे, वैर विरोध हृदय से भागे।
परमातम के हो अनुरागे, बैरी कर्म पलायन भागे।।
सत सन्देश सुना भविजन का, करते बेडा पार।।२।।
होय दिगम्बर वन मे विचरते, निश्चल होय ध्यान जब करते।
निजपद के आनद मे झूलते, उपशम रस की धार बरसते।।
मुद्रा सौम्य निरख कर मस्तक, नमता बारम्बार।।३।।

ऐसे मुनिवर देखे वन में.....

ऐसे मुनिवर देखे वन मे, जाके राग-द्वेष नही तन मे।।टेक।।
ग्रीषम ऋतु शिखर के ऊपर मगन रहै ध्यानन मे।
चातरमास तरूतल ठाडे, बूंद सहै छिन छिन मे।।१।।
शीत मास दरिया के किनारे, धीरज धोर ध्यानन मे।
ऐसे गुरु को मै नित प्रति ध्याऊं देत ढोक चरणन मे।।२।।

चलना है कबतक

चलना है कबतक? ।।टेक।।
चलना है कब तक? ये तो बता दे, मानव ओ प्यारे।
नर जन्म ऐसा क्यो गँवाता? इतना बता दे।।१।।
अनादि काल से काल है चलता रुकना कहाँ है।
पल पल बदलती पर्याय चलती स्थिरता कहाँ है?।।२।।
अनादि शुद्ध द्रव्य है मेरा, यह कलक लगता है।
अस्थिर से अब दृष्टि हटाकर स्थिर मे जाना है।।३।।
देखो, दुःख कैसे आते क्षण क्षण पर मरना है।
भव चक्कर मे 'कमल' नही आना, पक्का वादा है।।४।।

जगतगुरु कब निज आतम ध्याऊँ.....

जगतगुरु कब निज आतम ध्याऊँ।।टेक।।
नग्न दिगम्बर मुद्रा धरिके, कब निज आतम ध्याऊँ।
ऐसी लब्धि होय कब मोकूँ, जो निजवाँछित पाऊँ।।१।।
कब गृहत्याग होऊँ बनवासी, परम पुरुष लौ लाऊँ।
रहूँ अडोल जोड पद्मासन, कर्म कलक खिपाऊँ।।२।।
केवलज्ञान प्रगट करि अपनो, लोकालोक लखाऊँ।
जन्म-जरा-दुख देत तिलाजलि, हो कब सिद्ध कहाऊँ।।३।।
सुख अनन्त विलसूँ तिहि थानक, काल अनन्त गमाऊँ।
'मानसिंह' महिमा निज प्रगटे, वहुरि न भव मे आऊँ।।४।।

श्रीगुरु है उपगारी ऐसे

श्रीगुरु है उपगारी ऐसे, वीतराग गुनधारी वे।।टेक।।
स्वानुभूति रमनी सग क्रीडे, ज्ञान सम्पदा भारी वे।।१।।
ध्यान पिजरा मे जिन रोकौ, चित खग चचलचारी वे।।२।।
तिनके चरन सरोरुह ध्यावै, 'भागचन्द' अघटारी वे।।३।।

अध्यात्म के शिखर पर.....

अध्यात्म के शिखर पर, सबको दिखादो चढके।
ये धर्म है निरापद, धारो हृदय से बढके।।टेक।।
जड से लगा के प्रीति, अब तक करी अनीति।
अपने को आप देखो, आतम से जोडो रीति।।
भव-भ्रमण से बचोगे, सन्मार्ग को पकड के।।१।।
भव-भोग रोग घर है, पद-पद पे इसमे डर है।
रागादि भाव तज दो, नरको के ये भवर है।।
ऊँचे तुम्हे है उठना, माया से युद्ध लडके।।२।।
ज्यो अजुली का पानी, ढलती है जिन्दगानी।
मुश्किल है हाथ लगना, ऐसी घडी सुहानी।।
'सौभाग्य' सज ले माला, रत्नत्रय की घड के।।३।।

ये शाश्वत सुख का प्याला.....

ये शाश्वत सुख का प्याला, कोई पियेगा अनुभव वाला।।टेक।।
मै अखण्ड चित् पिण्ड शुद्ध हूँ, गुण अनन्त घन पिण्ड बुद्ध हूँ।
ध्रुव की फेरो माला, कोई पियेगा अनुभव वाला।।१।।
मगलमय है मगलकारी, सत् चित् आनंद का है धारी।
ध्रुव का हो उजियारा, कोई पियेगा अनुभव वाला।।२।।
ध्रुव का रस तो ज्ञानी पावे, जन्म मरण के दु ख मिटावे।
ध्रुव का धाम निराला, कोई पियेगा अनुभव वाला।।३।।
ध्रुव की धूनि मुनि रमावें, ध्रुव के आनद मे रम जावे।
ध्रुव का स्वाद निराला, कोई पियेगा अनुभव वाला।।४।।
ध्रुव का शरणा जो कोई आवे, मोह शत्रु को मार भगावे।
ध्रुव का पथ निराला, कोई पियेगा अनुभव वाला।।५।।
ध्रुव के रस मे हम रम जावे, अपूर्व अवसर कब यह पावे।
ध्रुव का जो मतवाला, वो पियेगा अनुभव वाला।।६।।

कर लो आतमज्ञान परमातम बन जइयो.....

कर लो आतमज्ञान परमातम बन जइयो।
कर लो भेद विज्ञान ज्ञानी बन जइयो।।टेक।।
जग झूठा और रिश्ते झूठे, रिश्ते झूठे नाते झूठे।
सॉचो है आतमराम परमातम बन जइयो।।१।।
कुन्दकुन्द आचार्य देव ने, आतम तत्त्व बताया है।
शुद्धातम को जान, परमातम बन जइयो।।२।।
देह भिन्न है आत्म भिन्न है, ज्ञान भिन्न है राग भिन्न है।
ज्ञायक को पहचान, परमातम बन जइयो।।३।।
कुन्दकुन्द के ही प्रताप से, ध्रुव की धूम मची है रे।
धर लो ध्रुव का ध्यान, परमातम बन जइयो।।४।।

कंकर-पत्थर गले लगाये.....

ककर-पत्थर गले लगाये, हीरे को ठुकराए, तुझे क्या हो गया है।
पुद्गल से तू रास रचाये, आतम को विसराये तुझे क्या हो गया है।।टेक।।
कुछ तो समझ बावरे, जाना कहाँ था, कहा जा रहा।
तरसे जिसे देवता, विषयो मे तन वह गमा रहा।।
पारस मणि को हाथ मे लेकर उससे काग उडाये।।१।।
जिन दिन खुलेगा पीजडा, तेरा पखेरू उड जायगा।
ले तू चला क्या साथ, खोले ही मुट्ठी चला जायेगा।।
सोना चादी महल अटारी, कुछ भी साथ न जाये।।२।।
मकडी सरीखा बैठकर, बुनता तू रहता, अरे जालिया।
लेकिन नही है यह खवर, सपनो से छल छल, तेरी प्यालियाँ।।
मौत तेरे घर क्या जाने, कव डोली ले आये।।३।।
चचल अभी भी समय,अन्तर की अखियाँ खोल ले।
विपयो का विप छोडकर, अन्तर मे आतम रस घोल ले।।
यह मानव का दुर्लभ तन, फिर हाथ न तेरे आये।।४।।

जब चले आत्माराम, छोड़ धन-धाम,.....

जब चले आत्माराम, छोड धन-धाम, जगत से भाई।
जग मे न कोई सहायी।।टेक।।
तू क्यो करता तेरा मेरा, नही दुनिया मे कोई तेरा।
जब काल आय तब सबसे होय जुदाई, जग मे न कोई सहायी।।१।।
तू मोहजाल मे फसा हुआ, पापो के रग मे रगा हुआ।
जिन्दगानी तूने वृथा यो ही गवाई जग मे न कोई सहायी।।२।।
सम्यक्त्व सुधा का पान करो, निज आतम ही का ज्ञान करो।
यूँ टले जीव से लगी कर्म की काई, जग मे न कोई सहायी।।३।।
चेतो चेतो अब बढे चलो, सतपथ सुमार्ग पर बढे चलो।
यूँ बाज रही यमराजा की शहनाई, जग मे न कोई सहायी।।४।।

नाथ तुम्हारी पूजा में सब स्वाहा करने.....

नाथ तुम्हारी पूजा मे सब स्वाहा करने आया।
तुम जैसा बनने के कारण, शरण तुम्हारी आया।।टेक।।
पच इन्द्रिय का लक्ष्य करूँ, मै इस अग्नि मे स्वाहा।
इन्द्र नरेन्द्रो के वैभव की, चाह करूँ मै स्वाहा।।
तेरी साक्षी से अनुपम, मै यज्ञ रचाने आया।।१।।
जग की मान प्रतिष्ठा को भी, करना मुझको स्वाहा।
नही मूल्य इस मन्द भाव का, व्रत तप आदि स्वाहा।।
वीतराग के पथ पर चलने, प्रण लेकर मै आया।।२।।
अरे जगत के अपशव्दो को, करना मुझको स्वाहा।
अक्षय निरकुश पद पाने, और पुण्य लुटाने आया।।
तुम तो पूज्य पुजारी मै, वह भेद करूँगा स्वाहा।।३।।
बस अभेद मै तन्मय होना, और सभी कुछ स्वाहा।
अब पामर भगवान बने, ये भीख माँगने आया।।
नाथ तुम्हारी पूजा मे सब, स्वाहा करने आया।
तुम जैसा बनने के कारण, शरण तुम्हारी आया।।४।।

सम्यग्दर्शन प्राप्त करेंगे.....

सम्यग्दर्शन प्राप्त करेगे, सप्त भयो से नही डरेगे।।टेक।।
सप्त तत्त्व का ज्ञान करेगे, जीव-अजीव पहिचान करेगे।
स्व-पर भेद-विज्ञान करेगे, निजानन्द का पान करेगे।।१।।
पच प्रभु का ध्यान धरेगे, गुरुजन का सम्मान करेगे।
जिनवाणी का श्रवण करेगे, पठन करेगे, मनन करेगे।।२।।
रात्रि भोजन नही करेगे, बिना छना जल काम न लेगे।
निज स्वभाव को प्राप्त करेगे, मोह भाव का नाश करेगे।।३।।
राग-द्वेष का त्याग करेगे, और अधिक क्या? बोलो बालक।
भक्त नही भगवान बनेगे।।४।।

गाड़ी खड़ी रे, खड़ी रे.....

गाडी खडी रे, खडी रे तैयार, चलो रे भाई शिवपुर को ।।टेक।।
जो तू चाहे मोक्ष को, सुन रे मोही जीव।
मिथ्यामत को छोड कर, जिन वाणी रस पीव।।१।।
जो जिन पूजै भाव धर, दान सुपात्रहि देय।
सो नर पावे परम पद, मुक्ति श्री फल लेय।।२।।
जिनकी रुचि अति धर्म सो, साधर्मिन सौ प्रीत।
देव शास्त्र गुरु की सदा, उर मे परम प्रतीत।।३।।
इस भव तरु का मूल इक, जानो मिथ्या भाव।
ताको कर निर्मूल अव, करिये मोक्ष उपाय।।४।।
दानों मे वस दान है, श्रेष्ठ ज्ञान ही दान।
जौ करता इस दान को, पाता केवलज्ञान।।५।।
जो जाने अरहत गुण, द्रव्य और पर्याय।
सो जाने निज आत्मा, ताके मोह नशाय।।६।।
निज परिणति मे जो करे, जड चेतन पहिचान।
बन जाता है एक दिन, समयसार भगवान।।७।।
तीन लोक का नाथ तू, क्यो बन रहा अनाथ।
रत्नत्रय निधि साध ले, क्यो न होय जगनाथ।।८।।

जान जान अब रे, हे नर आतमज्ञानी.....

जान जान अब रे, हे नर आतमज्ञानी।।टेक।
राग द्वेष पुद्गल की परिणति, तू तो सिद्ध समानी।।१।।
चार गति पुद्गल की रचना, ताते कही विरानी।
सिद्धस्वरूपी जगतविलोकी, विरले के मन आनी।।२।।
आपरूप आपहि परमाने, गुरुशिष कथा कहानी।
जनम- मरण किसका है भाई, कीचरहित है पानी।।३।।
सार वस्तु तिहुँ काल जगत मे, नहिं क्रोधी नहि मानी।
'नन्दब्रह्म' घट माहि विलोके, सिद्धरूप शिवरानी।।४।।

हे कुन्दकुन्द आचार्य कह गये.....

हे कुन्दकुन्द आचार्य कह गये, जो निज आतम ध्यायेगा ।
पर से ममता छोडेगा, निश्चय भव से तर जावेगा ।।टेक।।
क्रियाकाण्ड मे धर्म नही है, पर से धर्म नही होगा ।
निज स्वभाव मे रमे बिना नहि कुछ भी धरम कही होगा ।।
शुद्ध अखण्ड चिदानन्द ज्ञायक, धर्म वस्तु मे पावेगा ।।१।।
निज स्वभाव के साधन से ही, सिद्ध प्रभु बन पावेगा ।
राग भाव शुभ अशुभ सभी से, जग मे गोते खावेगा ।।
मुक्ति चाहने वाला तो निज से निज गुण प्रगटावेगा ।।२।।
जीव मात्र ऐसा चाहते है, दुख मिट जावे सुख आवे ।
करते रहते है उपाय जो, अपने अपने मन भावे ।।
राग द्वेष पर भाव तजेगा, वह सच्चा सुख पावेगा ।।३।।
पर पदार्थ नहि खोटा चोखा, नहि सुख दुख देने वाला ।
इस अनिष्ट मान्यता से अज्ञानी भटके मतवाला ।।
भेद ज्ञान निज पर विवेक से शुद्ध चिदानन्द पावेगा ।
पर से ममता छोड भवर फिर शुद्धातम को पावेगा ।।४।।

आकुलता दुखदाई, तजो भवि.....

आकुलता दुखदाई, तजो भवि ।।टेक।।
अनरथ मूल पाप की जननी, मोहराय की जाई हो ।।१।।
आकुलता करि रावण प्रतिहारि, पायो नर्क अघाई हो ।
श्रेणिक भूप धारि आकुलता, दुर्गति गमन कराई हो ।।२।।
आकुलता करि पाडव नरपति, देश देश भटकाई हो ।
चक्री भरत धारि आकुलता, मान भग दुख पाई हो ।।३।।
आकुलता करि कोटीध्वज हू, दुखी होई विललाई हो ।
आकुल बिना पुरुष निर्धन हू, सुखिया प्रगट लखाई हो ।।४।।
पूजा आदि सर्व कारज मै विघन करण बुधिगाई हो ।
मानिक आकुलता बिन मुनिवर, निर आकुल बुधि पाई हो ।।५।।

आप में जब तक कि कोई.....

आप मे जब तक कि कोई आपको पाता नही '
मोक्ष के मन्दिर तलक हरगिज कदम जाता नहीं ।।टेक।।
वेद या पुराण या कुरान सब पढ लीजिये ।
आपके जाने बिना मुक्ति कभी पाता नही ।।१।।
हरिण खुशबू के लिये दौडा फिरे जगल के बीच ।
अपनी नाभी मे बसे उसको नजर आता नही ।।२।।
भाव-करुणा कीजिये ये ही धरम का मूल है ।
जो सतावे और को वह सुख कभी पाता नही ।।३।।
ज्ञान पै 'न्यामत' तेरे है मोह का परदा पडा ।
इसलिये निज आत्मा तुझको नजर आता नही ।।४।।

आचार्य कुन्द कुन्द जो भारत में.....

आचार्य कुन्द कुन्द जो भारत मे न आते ।
अध्यात्म समयसार कहो कौन सुनाते ।।टेक।।
रुचि करके कौन देता आत्मख्याति समयसार ।
ऐसे अनेक ग्रन्थ भेदज्ञान के भडार ।।
उनके बिना हृदय मे शान्ति कौन दिलाते ।।१।।
जलती कषाय अग्नि सहज भाव जलाती ।
कर्मो के महाबन्ध को आत्मा से कराती ।।
शान्ति का सहज प्याला कहो कौन पिलाते ।।२।।
सम्यक्त्व बिना मोह न भवबन मे घुमाया ।
सम्यक्त्व बिना आत्मा को उसने रुलाया ।।
सम्यक्त्व आत्मा की निधि कौन बताते ।
अध्यात्म सुधा सार कहो कौन पिलाते ।।३।।
है जगत के सम्बन्ध कोई पार न पाया ।
सब अनित्य, नित्य एक भी नही पाया ।।
होता न सगा आप जिसे अपना बनाते ।।४।।

मोहे आतम कारज करना है....

मोहे आतम कारज करना है।
सुत दारा सब स्वारथ साँचे, इनते ममत न करना है।।टेक।।
जग के रिश्ते नाते झूठे, साथी सगा न बनता है।
महल अटारी धन-दौलत, ये झूठा जग का सपना है।।१।।
देह विनश्वर मै अविनश्वर, स्वातम मे नित जमना है।
द्रव्यकर्म पुदगल की सम्पत्ति, भेदज्ञान मे लखना है।।२।।
राग-द्वेष की परिणति से, पार स्वय मे पगना है।
शुभ्र एकान्त विजन मे, शीघ्र स्वय ही चलना है।।३।।
अक्षत शाश्वत चिर उद्योतित, आतम मे नित बहना है।
ज्ञायक ज्योति से ज्योतित हो, बस ज्ञान मात्र ही करना है।।४।।
स्वातम रुचि का दीप जलाकर, केवल द्योतित रहना है।
अष्ट-कर्म की होली जलाकर, सिद्ध स्वय ही बनना है।।५।।
तन-मन-धन सब अर्पण कर, मोहे शिवरमणी को वरना है।
'चिन्मय' का चिर आश्रय पाकर, 'तन्मय' उसमे होना है।।६।।

तू तो सो जा वारे वीर.....

तू तो सो जा वारे वीर, तू तो सो जा प्यारे वीर।
वीर की बलहैया लेती, मोक्ष के प्राचीर।।टेक।।
तुझे झूलाऊँ पालने मे, तुझे खिलाऊँ गोद।
तुझे सुलाऊँ कैसे, तू तो जाग्रत आत्म विभोर।।१।।
तू तो चेतन की तस्वीर, तू तो सन्मति की तस्वीर।
काहे को है पालना, काहे की लागी डोर।।२।।
धरी-घरी जे वीरा पुलके, होके आत्म विभोर।
रत्नत्रय को पालना है, वीतराग की डोर।।३।।
सत्य अहिसा के झूले मे, हिसा की झकझोर।
जिन्हे कहे बजरग शरीरा, रग-रग मे है क्षीर।।४।।
क्षीर मे किल्लोले करता समता रस गभीर।
तू तो धरम धुरन्दर वीर सचमच नगन दिगम्बर वीर।।५।।

अवसर आया है कीजे कल्याण.....

अवसर आया है कीजे कल्याण, भवि निज आतम का ।
होगी मोह की सर्वथा हानि, विचारो रूप परमातम का ।।टेक।।
द्रव्य-गुण-पर्याय से जानो अरहत को ।
वैसा ही जानो, निज आतम महत को ।।
परिणति में स्वसन्मुखता आन, स्वागत कीजे आतम का ।।१।।
स्वभाव की स्थिरता विकल्पो का नाश है ।
समता के साथ होता आनन्द विलास है ।।
यह आतम रहा सबसे भिन्न, रहस्य अध्यातम का ।।२।।
जिनवर आगम मे अर्थो की व्यवस्था ।
जैसी कही है जानो वैसी ही सर्वथा ।।
प्रगटे स्व-पर भेद-विज्ञान, यही मर्म आगम का ।।३।।
अध्यातम को जानो अरु आगम को जानो ।
अरहत को उनके कहे अर्थो को जाना ।।
'निर्मल' यही स्वागत गान, आतम परमातम का ।।४।।

ज्ञान-स्वरूप तेरा तूँ अज्ञानी हो रहा.....

ज्ञान-स्वरूप तेरा, तूँ अज्ञानी हो रहा ।
जडकर्म के मिलाप से, विभाव को गहा ।।टेक।।
पन अक्ष के विषय अनिष्ट, इष्ट जान के ।
करके विरोध राग आग, को जला रहा ।।१।।
यह व्याधिगेह देह अस्थि, चाम से बना ।
निज ज्ञान के सिंगार, ठान मूढ हो रहा ।।२।।
सुख तात मातु मित्र आदि मान आपके ।
करके अकृत पाप आत्म-बोध खो रहा ।।३।।
कर भेदज्ञान राग आदि, दोष जान के ।
चिद्रूप-ज्ञान-चन्द्रिका, निहार 'जिन' कहा ।।४।।